हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में

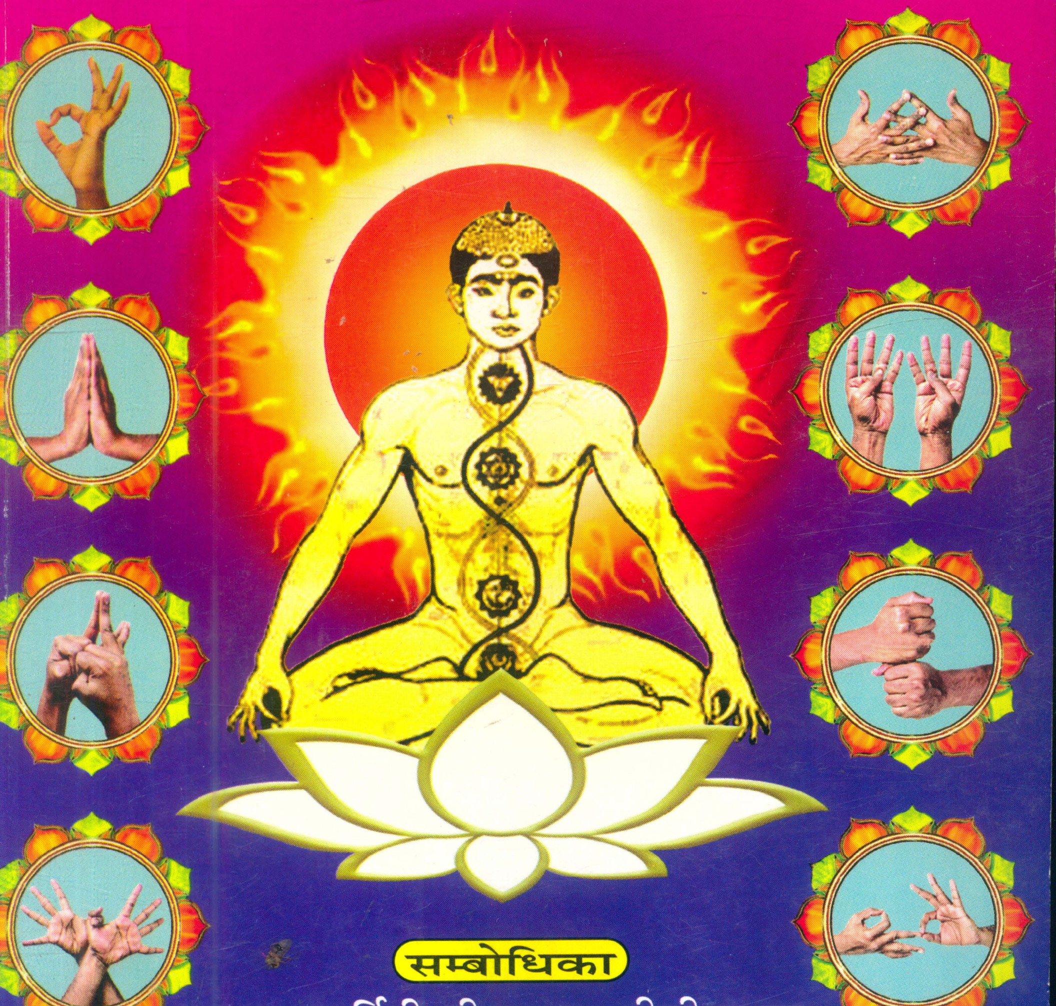

सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.
परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

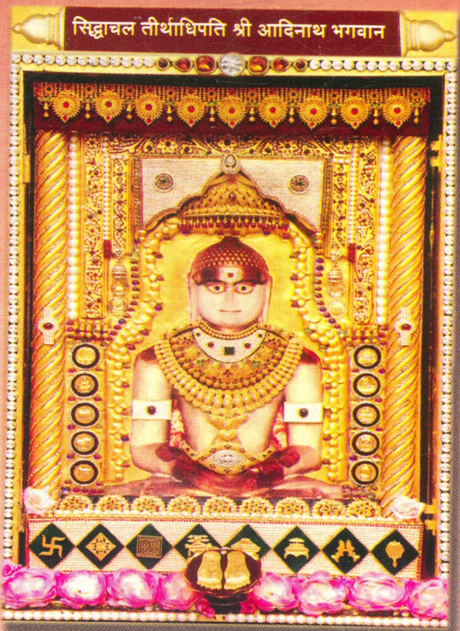

श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी

श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)

श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)

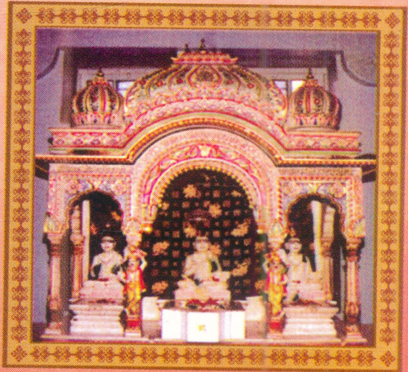

श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाडा दादाबाड़ी (जोधपुर)

हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-18

2012-13

R.J. 241 / 2007

णाणस्स सारमायारो

शोधार्थी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक

डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय

लाडनूं-341306 (राज.)

हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-18

णाणस्स सारमायारो

स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता
चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में

कृपा वृष्टि : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.

मंगल वृष्टि : पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.

आनन्द वृष्टि : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.

प्रेरणा वृष्टि : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

वात्सल्य वृष्टि: गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.

स्नेह वृष्टि : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य मुदितप्रज्ञाश्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणाश्रीजी म.सा., सुयोग्या कनकप्रभाजी, सुयोग्या श्रुतदर्शनाजी सुयोग्या संयमप्रज्ञाजी आदि भगिनी मण्डल

शोधकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)

ज्ञान वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन

प्रकाशक :
- प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
  email : sagarmal.jain@gmail.com
- सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
  बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-364270

प्रथम संस्करण : सन् 2014

प्रतियाँ : 1000

सहयोग राशि : ₹ 100.00
(पुनः प्रकाशनार्थ)

कम्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी

कॅवर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता

मुद्रक : Antartica Press, Kolkata

ISBN : 978-81-910801-6-2 (XVIII)

© All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

प्राप्ति स्थान

1. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848-253701

2. श्री कान्तिलालजी मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/A, पो. कोलकाता-7
मो. 98300-14736

3. श्री भाईसा साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPI
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)
मो. 98255-09596

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी वाराणसी-5 (यू.पी.)
मो. 09450546617

5. डॉ. सागरमलजी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
पो. शाजापुर-465001 (म.प्र.)
मो. 94248-76545
फोन : 07364-222218

6. श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, कैवल्यधाम
पो. कुम्हारी-490042
जिला– दुर्ग (छ.ग.)
मो. 98271-44296
फोन : 07821-247225

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, पो. चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936,
044-25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड
पो. मालेगाँव
जिला- नासिक (महा.)
मो. 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पो. रायपुर (छ.ग.)
फोन : 94252-06183

10. श्री पदमचन्दजी चौधरी
शिवजीराम भवन, M.S.B. का रास्ता,
जौहरी बाजार
पो. जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

11. श्री विजयराजजी डोसी
जिनकुशल सूरि दादाबाड़ी
89/90 गोविंदप्पा रोड
बसवनगुडी, पो. बैंगलोर (कर्ना.)
मो. 093437-31869

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत
9331032777
श्री रिखबचन्दजी झाड़चूर
9820022641
श्री नवीनजी झाड़चूर
9323105863
श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख
8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद
9835564040
श्री पन्नाचन्दजी दूगड़
9831105908

शब्दार्पण

जिस परम्परा में

श्रीराम ने मर्यादा पालन का पाठ सिखाया।

श्रीकृष्ण ने निरपेक्ष कर्त्तव्य परायणता का मार्ग दिखाया।

'नारी तूं नारायणी' सूत्र से महिला का सम्मान बढ़ाया।

मात-पिता सेवाव्रत से श्रवण मुक्ति फल पाया।।

ऐसी वसुधैव कुटुम्बकम्

एवं

सर्वे भवन्तु सुखिनः की प्रेरक

विश्व आदर्श, सनातन परम्परा को

सादर समर्पित

सज्जन मन की बात

त्याग के अनुराग से करते आतम मंथन
जिन शासन की बगिया के जो हैं महकता चंदन।
अष्टप्रवचन माता से करते चित्त का रंजन
सुर नर किन्नर छत्रपति मिल करते उनको वंदन ।।

जिसकी ऊँचाईयों को नापना और गहराई को भापना दुःसाध्य है
जिसकी महिमा को तोलना और शब्दों में बोलना दुष्कर है।
जिसका असिधारा पथ मुक्ति वरण का Green signal है
जिसकी कठिन साधना महापापी को करती निर्मल है।

ऐसे संयम धर्म के प्रति,
जगे रोम-रोम में बहुमान
सम्पूर्ण विश्व को हो
कठिन श्रमणाचार की पहचान
संयम पालन में सहयोगी
बन करे आत्म कल्याण
विस्फोटक युग में हो
संयम युग का निर्माण
इसी निर्मल भावना के साथ...

हार्दिक अनुमोदन

अजमेर हॉल जयपुर निवासी

पिता श्री फतेहचन्दजी - मातु श्री रतनदेवी लोढ़ा

के मंगल स्मरणार्थ

पुत्ररत्न

शासन समर्पित श्री प्रकाशचंदजी-विमला देवी

पौत्र

विजय-मीनाक्षी

पौत्री

अंजली

पौत्र

हिमांशु, आयुषी लोढ़ा परिवार...

श्रुत अर्जन के अविस्मृत सहभागी
श्री प्रकाशचन्दजी लोढ़ा, जयपुर

सम्पूर्ण भारत वर्ष में अपनी कलात्मकता, सांस्कृतिक संपदा एवं रत्नों के लिए प्रसिद्ध गुलाबी नगरी जयपुर का विविध क्षेत्रों में अपना विशिष्ट योगदान है। राजस्थान की यह राजधानी जहाँ विदेशी यात्रियों के लिए आकर्षण का केन्द्र है वहीं महिलाओं के लिए नाना-विध खरीदारियों का परंतु अध्यात्म जिज्ञासुओं के लिए तो यह भूमि तीर्थ रूप ही है। इस पुण्यभूमि के निवासी हैं उन्नत व्यक्तित्व के धनी श्रीमान प्रकाशचंदजी लोढ़ा।

अपने नाम के अनुरूप आंतरिक प्रभा से प्रकाशित लोढ़ाजी जयपुर के सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी हैं। आपका जन्म अपने ननिहाल किशनगढ़ में हुआ। माता-पिता ने आपके जीवन को सत्संस्कारों से प्रकाशित करने में कोई कमी नहीं रखी। धर्मनिष्ठा मातुश्री रतन देवी ने आपको धर्म की घूंटी पिलाई तो पिताश्री फतेहचंदजी ने कर्मक्षेत्र में उच्च शिखर पर पहुँचाने के सपने ही नहीं संजोए अपितु वैसी शिक्षा-दीक्षा भी दी और आपके प्रेरणा सूत्र भी बने।

आपने अपने दम पर जयपुर में जवाहरात का व्यापार प्रारंभ किया और आज उस क्षेत्र में उच्च स्थान पर हैं। एक माँ पुत्र जन्म के पश्चात अपने आपको कब धन्यतम मानती है? इसका वर्णन करते हुए किसी कवि ने कहा है–

जननी जनिए भक्तजन, के दाता के शूर ।

नहीं तो रहीजे बांझणी, मत गंवाईजे नूर ।।

इस दोहे में वर्णित एक गुण से युक्त पुत्र की माता भी धन्य हो जाती है जबकि आप में तीनों ही गुण परिलक्षित होते हैं। जिन शासन के प्रति अगाध अहोभाव एवं समर्पण, गुरुजनों के प्रति आंतरिक भक्ति एवं सेवाभाव तथा साधर्मिक वर्ग के प्रति सम्मान एवं समुत्थान की इच्छा ने

आपको जनप्रिय बनाया है। मानव सेवा एवं शासन प्रभावना में आपकी विशेष रुचि है। चारों दादा गुरुदेव एवं उनके पुण्य प्रभावी तीर्थ स्थलों के प्रति आपका विशेष भक्ति भाव है। प्रतिवर्ष शरद पूर्णिमा के अवसर पर आपके द्वारा किसी न किसी दादाधाम में रात्रि जागरण एवं भक्ति संध्या का भव्यातिभव्य आयोजन किया जाता है। इस कार्यक्रम में आपकी भावना अच्छे से अच्छे कलाकारों को बुलाने की रहती है। इस भक्ति आयोजन को देखने के लिए देश के अनेक स्थानों से हजारों लोग विशेष रूप से उपस्थित होते हैं। इस अवसर पर आप जयपुर से संघ लेकर भी जाते हैं। आपकी वैचारिक पारदर्शिता, दूरदृष्टि एवं समन्वय वृत्ति के कारण विविध सामाजिक संस्थानों एवं धर्मस्थानों के द्वारा आपको सर्वोच्च पद संभालने का आग्रह सदा ही किया जाता है परंतु आप प्रायः इन सभी से दूर रहते हुए निःस्वार्थ भाव से श्री संघ को अपनी अमूल्य सेवाएँ प्रदान करने की भावना रखते हैं। आप वर्तमान विकसित संसाधनों के साथ धर्म साधनों का समन्वय कर आज के युवा वर्ग अर्थात भावी भविष्य को अंतरमन पूर्वक धर्म से जोड़ने की भी भावना रखते हैं। श्राविका रत्ना श्रीमती विमलाजी अपने नाम के अनुसार अत्यन्त निर्मल हृदयी एवं तद्रूप स्वभाव वाली है। उन्हीं के विमल स्वभाव ने सुपुत्र विजय एवं सुपुत्री अंजली को आज अपने समान बनाया है।

पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा. के प्रति आपकी प्रगाढ़ श्रद्धा है। उनसे आपको मातृवत स्नेह की प्राप्ति हुई और आपने भी उन्हें हृदय पूर्वक गुरु स्थान दिया। पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. सन् 2007 के जयपुर प्रवास एवं चातुर्मास के दौरान आपका पूज्या श्री से विशेष परिचय हुआ। चातुर्मासिक आयोजनों के समय विदुषी साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी से आपकी गहरी निकटता हुई और तभी से आप सतत उनके सम्पर्क में रहते हैं। साध्वी सौम्याजी को अध्ययन आदि के क्षेत्र में उन्हें आगे बढ़ने हेतु सदैव प्रोत्साहित करते रहते हैं।

सज्जनमणि ग्रन्थमाला आपके जीवन की हार्दिक-हार्दिक अनुमोदना करता है तथा आप इसी प्रकार निरपेक्ष भाव से आत्मोत्थान के मार्ग पर अग्रसर रहें और जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करें, यही शुभाशंसा...

●

सम्पादकीय

मुद्रा विज्ञान पंच महाभूतों पर आश्रित सबसे प्राचीन एवं त्रिकाल प्रासंगिक महाविज्ञान है। भारतीय ऋषि-महर्षियों की वैज्ञानिकता एवं विलक्षणता का ज्वलंत प्रमाण है। ध्यान, आसन, प्राणायाम आदि प्राकृतिक योग साधनाएँ सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति की ही देन है। मुद्रा भी इन्हीं योग साधनाओं का एक प्रकार है।

मुद्रा अर्थात Actin या अंग संचालन की एक विशेष क्रिया जिसके द्वारा हाव-भाव प्रदर्शित किए जाते हैं। जब से इस सृष्टि में जीव हैं तभी से मुद्रा विज्ञान का भी अस्तित्व है। वाणी से पहले भाव अभिव्यक्ति का साधन मुद्रा ही बनती है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसके अन्त:करण में जैसे भाव होते हैं वैसी ही अभिव्यक्ति उसके मन, वचन, काया से होने लगती है। उदा. जब हमें किसी पर स्नेह आ रहा हो तो सहजतया मस्तक पर हाथ चला जाता है। क्रोध आ रहा हो तो आँखे लाल हो जाती है एवं शरीर तन जाता है। अभिमान का भाव आने पर कन्धे तन जाते हैं। पूर्व काल में चित्र एवं सांकेतिक भाषा का प्रयोग एक प्रकार से मुद्रा योग का ही रूप था। उबासी आने पर चुटकी बजाने के पीछे मुद्रा प्रयोग का एक बहुत बड़ा रहस्य छुपा हुआ था। जब भी उबासी आदि लेते हुए जबड़ा फँस जाए तो अंगूठे और मध्यमा अंगुली द्वारा मुख के आगे चुटकी बजाने से जबड़ा शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

मुद्रा मानव के शरीर रूपी यन्त्र की नियन्त्रक तालिकाएँ (Switch) हैं। इन तालिकाओं के द्वारा मनुष्य के शरीर में महत्त्वपूर्ण तात्विक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यत्मिक एवं शारीरिक परिवर्तन बिना किसी सहायता के सरलता से लाए जा सकते हैं। मुद्रा प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसी भी वर्ग, आयु, लिंग के लोगों द्वारा सहजता पूर्वक सीखी जा सकती है। इसके लिए किसी विशिष्ट सामग्री, सुविधा या वातावरण की आवश्यकता नहीं, व्यक्ति जब चाहे इनका तत्काल प्रयोग कर सकता है। आज रोगों की बढ़ती संख्या तथा Doctor एवं दवाइयों का खर्च आम आदमी के लिए बहुत बड़ी समस्या है। इन परिस्थितियों में मुद्रा प्रयोग एक ब्रह्मास्त्र है।

मुद्रा निर्माण में मुख्य सहयोगी अंग है हाथ। प्रकृति ने जल, अग्नि, वायु आदि पाँचों तत्त्वों को हमारे हाथ में समाहित किया है। मुद्रा प्रयोग के द्वारा इन तत्त्वों का संतुलन किया जाता है।

आध्यात्मिक जगत के उत्थान में भी मुद्रा प्रयोग एक सम्यक मार्ग है। आन्तरिक भावजगत एवं चक्र जागरण में मुद्रा प्रयोग संजीवनी औषधि के रूप में कार्य करता है।

दैविक साधना अथवा देवताओं को आमंत्रित करते हुए उन्हें प्रसन्न करने आदि में भी मुद्रा प्रयोग प्राचीनकाल से देखा जाता है। प्राय: जितने भी धर्म सम्प्रदाय हैं उनमें कुछ मुद्राओं का प्रयोग उनके उत्पत्ति काल से ही प्रचलित है। प्रार्थना आदि के लिए सभी के द्वारा कुछ विशिष्ट मुद्राएँ धारण की जाती है। इस्लाम धर्म में नमाज अदा करते हुए ईसाई लोगों के द्वारा प्रार्थना करते हुए कुछ विशिष्ट मुद्राएँ प्रयोग में ली जाती है। वैदिक परम्परा में देवोपासना से सम्बन्धित एवं बौद्ध परम्परा में भगवान बुद्ध से सम्बन्धित मुद्राएँ विश्व प्रसिद्ध है।

यदि जन साहित्य का अवलोकन करें तो आगम साहित्य में कहीं-कहीं पर कुछ विशिष्ट मुद्राओं का आलेख प्राप्त होता है जैसे प्रतिक्रमण सम्बन्धी मुद्राओं का उल्लेख आवश्यक सूत्र में तो गोदुहासन, खड्गासन आदि का वर्णन भगवान महावीर की साधना कर आचारांग सूत्र में प्राप्त होता है। मध्यकालीन साहित्य की अपेक्षा विविध प्रतिष्ठाकल्प, विधिमार्गप्रपा, आचारदिनकर आदि ग्रन्थ इस विषय में द्रष्टव्य हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विविध-विधानों में मुद्राओं के महत्व को देखते हुए आद्योपरान्त उपलब्ध मुद्राओं का सचित्र वर्णन करते हुए उनके लाभ आदि की प्रामाणिक चर्चा की है। जैन मुद्राओं के साथ नाट्य, बौद्ध, हिन्दू, यौगिक एवं आधुनिक चिकित्सा सम्बन्धी मुद्राओं का वर्णन करके इस कृति को विश्व उपयोगी बनाया है। मुद्राओं का सचित्र वर्णन उसकी प्रयोग विधि को और सहज एवं सरल बनाएगा। सहस्राधिक मुद्राओं का विशद एवं प्रामाणिक यह संकलन विश्व वंदनीय है। प्रथम बार इतनी मुद्राओं को एक साथ प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

साध्वी के इस विश्वस्तरीय योगदान के लिए सदियों तक उन्हें याद किया जाएगा। यह कार्य जिन धर्म को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाएगा। मैं सौम्यगुणाश्रीजी के इस कार्य की अंतरमन से सराहना करता हूँ। वे इसी निष्ठा एवं लगन के साथ श्रुत उपासना में संलग्न रहें एवं जिनशासन के श्रुत भण्डार का वर्धन करें यही हार्दिक अभ्यर्थना है।

डॉ. सागरमल जैन
प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

आशीर्वचन

भारतीय वांगमय ऋषि-महर्षियों द्वारा रचित लक्षाधिक ग्रन्थों से शोभायमान है। प्रत्येक ग्रन्थ अपने आप में अनेक नवीन विषय एवं नव्य उन्मेष लिए हुए हैं। हर ग्रन्थ अनेकशः प्राकृतिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक रहस्यों से परिपूर्ण है। इन शास्त्रीय विषयों में एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है विधि-विधान। हमारे आचार-पक्ष को सुदृढ़ बनाने एवं उसे एक सम्यक दिशा देने का कार्य विधि-विधान ही करते हैं। विधि-विधान सांसारिक क्रिया-अनुष्ठानों को सम्पन्न करने का मार्ग दिग्दर्शित करते हैं।

जैन धर्म यद्यपि निवृत्तिमार्गी है जबकि विधि-विधान या क्रिया-अनुष्ठान प्रवृत्ति के सूचक हैं परंतु यथार्थतः जैन धर्म में विधि-विधानों का गुंफन निवृत्ति मार्ग पर अग्रसर होने के लिए ही हुआ है। आगम युग से ही इस विषयक चर्चा अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होती है। जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा वर्तमान विधि-विधानों का पृष्ठाधार है। साध्वी सौम्यगुणाजी ने इस ग्रंथ के अनेक रहस्यों को उद्घाटित किया है।

साध्वी सौम्याजी जैन संघ का जाज्वल्यमान सितारा है। उनकी ज्ञान आभा से मात्र जिनशासन ही नहीं अपितु समस्त आर्य परम्पराएँ शोभित हो रही हैं। सम्पूर्ण विश्व उनके द्वारा प्रकट किए गए ज्ञान दीप से प्रकाशित हो रहा है। इन्हें देखकर प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की सहज स्मृति आ जाती है। सौम्याजी उन्हीं के नक्शे कदम पर चलकर अनेक नए आयाम श्रुत संवर्धन हेतु प्रस्तुत कर रही है।

साध्वीजी ने विधि-विधानों पर बहुपक्षीय शोध करके उसके विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। इस शोध कार्य को 23 पुस्तकों के रूप में प्रस्तुत कर उन्होंने जैन विधि-विधानों के समग्र पक्षों को जन सामान्य के लिए सहज ज्ञातव्य बनाया है।

जिज्ञासु वर्ग इसके माध्यम से मन में उद्वेलित विविध शंकाओं का समाधान कर पाएगा।

साध्वीजी इसी प्रकार श्रुत रत्नाकर के अमूल्य मोतियों की खोज कर ज्ञान राशि को समृद्ध करती रहे एवं अपने ज्ञानालोक से सकल संघ को रोशन करें यही शुभाशंसा...

आचार्य कैलास सागर सूरि
नाकोडा तीर्थ

विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाश्रीजी ने विधि विधान सम्बन्धी विषयों पर शोध-प्रबन्ध लिख कर डी.लिट् उपाधि प्राप्त करके एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

सौम्याजी ने पूर्व में विधिमार्गप्रपा का हिन्दी अनुवाद करके एक गुरुत्तर कार्य संपादित किया था। उस क्षेत्र में हुए अपने विशिष्ट अनुभवों को आगे बढ़ाते हुए उसी विषय को अपने शोध कार्य हेतु स्वीकृत किया तथा दत्त-चित्त से पुरुषार्थ कर विधि-विषयक गहनता से परिपूर्ण ग्रन्थराज का जो आलेखन किया है, वह प्रशंसनीय है।

हर गच्छ की अपनी एक अनूठी विधि-प्रक्रिया है, जो मूलतः आगम, टीका और क्रमशः परम्परा से संचालित होती है। खरतरगच्छ के अपने विशिष्ट विधि विधान हैं... मर्यादाएँ हैं... क्रियाएँ हैं...। हर काल में जैनाचार्यों ने साध्वाचार की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने का भगीरथ प्रयास किया है। विधिमार्गप्रपा, आचार दिनकर, समाचारी शतक, प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत शतक, साधु विधि प्रकाश, जिनवल्लभसूरि समाचारी, जिनपतिसूरि समाचारी, षडावश्यक बालावबोध आदि अनेक ग्रन्थ उनके पुरुषार्थ को प्रकट कर रहे हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विधि विधान संबंधी बृहद् इतिहास की दिव्य झांकी के दर्शन कराते हुए गृहस्थ-श्रावक के सोलह संस्कार, व्रतग्रहण विधि, दीक्षा विधि, मुनि की दिनचर्या, आहार संहिता, योगोद्वहन विधि, पदारोहण विधि, आगम अध्ययन विधि, तप साधना विधि, प्रायश्चित्त विधि, पूजा विधि, प्रतिक्रमण विधि, प्रतिष्ठा विधि, मुद्रायोग आदि विभिन्न विषयों पर अपना चिंतन-विश्लेषण प्रस्तुत कर इन सभी विधि विधानों की मौलिकता और सार्थकता को

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उजागर करने का अनूठा प्रयास किया है।

विशेष रूप से मुद्रायोग की चिकित्सा के क्षेत्र में जैन, बौद्ध और हिन्दु परम्पराओं का विश्लेषण करके मुद्राओं की विशिष्टता को उजागर किया है।

निश्चित ही इनका यह अनूठा पुरुषार्थ अभिनंदनीय है। मैं कामना करता हूँ कि संशोधन-विश्लेषण के क्षेत्र में वे खूब आगे बढ़ें और अपने गच्छ एवं गुरु के नाम को रोशन करते हुए ऊँचाईयों के नये सोपानों का आरोहण करें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि विदुषी साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी ने डॉ. श्री सागरमलजी जैन के निर्देशन में 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' इस विषय पर 23 खण्डों में बृहदस्तरीय शोध कार्य (डी.लिट्) किया है। इस शोध प्रबन्ध में परंपरागत आचार आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक परिचय देने का सुंदर प्रयास किया गया है।

जैन परम्परा में क्रिया-विधि आदि धार्मिक अनुष्ठान कर्म क्षय के हेतु से मोक्ष को लक्ष्य में रखकर किए जाते हैं।

साध्वीश्री ने योग मुद्राओं का मानसिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या लाभ होता है? इसका उल्लेख भी बहुत अच्छी तरह से किया है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने निःसंदेह चिंतन की गहराई में जाकर इस शोध प्रबन्ध की रचना की है, जो अभिनंदन के योग्य है।

मुझे आशा है कि विद्वद गण इस शोध प्रबन्ध का सुंदर लाभ उठायेंगे।

मेरी साध्वीजी के प्रति शुभकामना है कि श्रुत साधना में और अभिवृद्धि प्राप्त करें।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगे। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पर्यार्थ के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी
योग अनुवंदना!

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार
अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway)

है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती। कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और मोड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है– 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं– 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान– जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान– नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान– अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए

जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा 'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. **धार्मिक विधि-विधान**– इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में ''आणाए धम्मो'' कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों की नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन, अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों) में वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म

पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों को परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए

भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचार निष्ठ बन सकेगी।

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर
1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दूगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।
इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु

तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।
साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य
का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।
शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

मंगल नाद

मुद्रा नाम सुनते ही हमारे सामने प्रतिष्ठा आदि में अथवा साधना आदि में प्रयुक्त कुछ मुद्राएँ उभरने लगती है, परन्तु यह शब्द मात्र वहाँ तक सीमित नहीं है। हमारी दैनिक क्रियाओं में भी मुद्रा का प्रमुख स्थान है क्योंकि जन-जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति मुद्रा के माध्यम से होती है। यदि विधि-विधान के सन्दर्भ में मुद्रा प्रयोग पर विचार करें तो अब तक प्रचलित मुद्राओं के विषय में ही जानकारी एवं पुस्तकें आदि संप्राप्त है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने मुद्रा विषयक कार्य अत्यन्त बृहद् स्तर पर कई नूतन रहस्यों की उद्घाटित करते हुए किया है। इन्होंने जैन परम्परा से सम्बन्धित लगभग 200 मुद्राएँ, 400 बौद्ध मुद्राएँ, हिन्दू और नाट्य परम्परा से सम्बन्धित करीब 400 ऐसे लगभग हजार मुद्राओं पर ऐतिहासिक कार्य किया है। जो विश्व स्तर पर अपना प्रथम स्थान रखता है। यह कार्य समस्त धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी भी बनेगा, क्योंकि इसे साम्प्रदायिक सीमाओं से परे किया गया है। यद्यपि बौद्ध एवं वैदिक परम्परा में इस विषय पर कार्य हुआ है किन्तु वह स्वरूप एवं विवरण तक ही सीमित है, उनकी उपादेयता एवं उपयोगिता आदि के सम्बन्ध में यह प्रथम कार्य है। इसी के साथ साध्वीजी ने सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक आदि के परिप्रेक्ष्य में भी इस विषय पर गहन अध्ययन किया है।

इन मुद्राओं में से भी अभ्यास साध्य, अनभ्यास साध्य मुद्राओं का वर्णन भिन्न-भिन्न साहित्य में प्राप्त मुद्राओं के आधार पर किया गया है। इसकी वर्तमान उपयोगिता दर्शाने हेतु साध्वीजी ने एक्युप्रेशर, चक्र जागरण, तत्त्व संतुलन एवं विभिन्न रोगों पर इनका प्रभाव आदि को परिप्रेक्ष्यों में भी यह कार्य किया है। मुद्राओं का ज्ञान सुगमता से किया जा सके एतदर्थ प्रत्येक मुद्रा का रेखाचित्र दीर्घ परिश्रम एवं अत्यन्त सजगता पूर्वक बनाया गया है।

इस दुरुह कार्य को साध्वीजी ने जिस निष्ठा एवं उदार हृदयता के साथ सम्पन्न किया है। इसके लिए वे सदैव अनुशंसनीय एवं अनुमोदनीय हैं। इनकी बौद्धिक क्षमता का ही परिणाम है कि दो वर्ष जितने लम्बे कार्य को इन्होंने एक वर्ष के भीतर पूर्ण किया है। यद्यपि कई बार हम लोगों ने समय की अल्पता, करते हुए यह कार्य की विराटता एवं दुरुहता को देख जैन परम्परा तक सीमित करने का सुझाव भी दिया परंतु यदि सामग्री एवं जानकारी होते हुए कार्य को आधा अधूरा छोड़ना यह अन्वेषक का लक्षण नहीं है। इसलिए अत्यल्प समय में कठोर श्रम के साथ इस कार्य को सात खण्डों में सम्पन्न किया है। आज मैं सौम्याजी के इस कार्य से स्वयं को ही नहीं अपितु संपूर्ण जैन समाज को गौरवान्वित अनुभव कर रही हूँ।

मैं अन्तर्मन से सौम्याजी की एकाग्रता, कार्य मग्नता, आज्ञाकारिता एवं अप्रमत्तता के लिए इन्हें साधुवाद एवं भविष्य के लिए शुभाशीष प्रदान करती हूँ।

आर्य्या शशिप्रभा श्री

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.
एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है– पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे– जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदुःखकातरता आदि गुण तो आप में जन्मतः परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्ततः 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर

छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे–

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परम वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के

प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क, अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्त्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है–

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

शिक्षा गुरु पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्‌भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकश: वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो नि:सन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णत: सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति आप सदैव सचेष्ट

रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मन:स्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे ।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकश: जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो ।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

साध्वी सौम्याजी की शोध यात्रा के अमिट पल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकश: बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को जानने

का यह एक स्वर्णिम अवसर था अतः सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में असमर्थ थे अतः पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु पुनः कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुनः कलकत्ता नगरी

में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अत: उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अत: सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्राय: अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़ और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुन: साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.) जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी थी अत: चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास

के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुँचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अतः उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अतः गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले– "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वतः मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा।

मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुनः गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अतः कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7 महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था।

साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अत: न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु "जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी" अत: एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अत: उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे। चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुन: कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना

पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अत: दो माह तक अध्ययन की गति पर पुन: ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि–

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अत: वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुन: कोलकाता की ओर पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्राय: शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु

अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अतः अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुनः एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अतः उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुनः Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुनः चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता

का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खडगपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है-

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें ।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें ।
अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है ।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है ।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णतः निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अतः त्वरा गति से कार्य चला।

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वत: ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुन: वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिन लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर–शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे।

यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंतत: उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी–

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है ।।

●

हार्दिक अभिव्यंजना

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है–

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य, कर्मग्रन्थ, प्रातःकालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ

की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती– 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री

पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा– देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली– मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रात:कालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्शे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ–

गुरु भगिनी मण्डल

प्राक्कथन

मुद्रा योग विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, अध्यात्म साधना का आवश्यक चरण है तथा शास्त्रीय विद्याओं में विशिष्टतम विद्या है। मानव मात्र के समग्र विकास के लिए मुद्रा योग अत्यन्त ही उपयोगी है। भारतीय ऋषि-महर्षियों ने मन, बुद्धि एवं शरीर को शान्त रखने के लिए विभिन्न मुद्राओं का प्रयोग किया था। इस विज्ञान के द्वारा हम आज भी आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति प्राप्त करके भव-भवान्तर को सफल बना सकते हैं।

मानव मात्र की अन्तः शक्तियाँ असीम हैं किन्तु वे हमारी असीमित कल्पना के विस्तृत क्षेत्र से भी परे हैं। भौतिक स्तर पर जीवन यात्रा का निर्वहन करने वाला व्यक्ति उन अन्तः शक्तियों को न पहचान सकता है और न ही उनका सार्थक उपयोग कर पाता है। वह सामान्यतः अज्ञानजनित बुद्धि एवं मोहादि के वशीभूत हुआ बाह्य उपलब्धियों को ही वास्तविक मानता है। मुद्रा एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से हम जड़-चेतन का भेद ज्ञान करते हुए यथार्थता के निकट पहुँच सकते हैं, पौद्‌गलिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का मूल्यांकन कर सकते हैं और अन्तरंग शक्तियों को जागृत करने हेतु प्रयत्नशील हो सकते हैं। प्रत्येक मानव का अन्तिम लक्ष्य यही होना चाहिए कि उसे अपनी निजी शक्तियों का बोध हो और अपने स्वरूप की पहचान हो। एक बार चेतना के उच्च स्तरों की झलक दिख जाये तो मायाजाल के सभी झूठे प्रपंच एवं समस्याएँ समाप्त हो सकती है।

इस उच्च भूमिका पर आरोहण करने के लिए चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है। अधिकांश पद्धतियों में एकाग्रता के महत्त्व पर जोर दिया गया है। एकाग्रता द्वारा हम बहिरंग जीवन की ओर प्रवाहित होती हुई चेतना को अन्तरंग क्षेत्रों की ओर मोड़ सकते हैं। यदि प्रश्न उठता है कि एकाग्रता क्या है? साधारणतः एकाग्रता का मतलब है अपनी चेतन-धारा को सभी बाह्य विषयों एवं विचारों से हटाकर किसी विशेष विचार-बिन्दु पर केन्द्रित करना। यह कार्य सरल नहीं है। हमारी चेतना को विविधता प्रिय है। एक

से दूसरे और दूसरे से तीसरे विषय पर मंडराने की आदत बहुत पुरानी है इसे एक विषय पर केन्द्रित करना संकल्प साध्य है।

मुद्राएँ शरीर एवं चित्त स्थिरीकरण के लिए ब्रह्मास्त्र का कार्य करती हैं। जैसे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कभी निष्फल नहीं जाता वैसे ही सुविधि युक्त किया गया मुद्राभ्यास स्थिरता गुण को विकसित करता है। घेरण्ड संहिता में सुस्पष्ट कहा गया है कि स्थिरता के लिए मुद्रायोग को साधना चाहिए।

स्थैर्य गुण बहिरंग व अन्तरंग समग्र पक्षों से अत्यन्त लाभदायी है। हम अनुभव करें तो नि:सन्देह महसूस हो सकेगा कि स्थिरता के पलों में व्यक्ति की चेतना अबाध रूप से प्रवाहित होने लगती है। इस अवस्था में अवचेतन मन में छिपे मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप चेतन मन के स्तर तक ऊपर उठ आते हैं तथा अनावृत्त होने लगते हैं।

सामान्य तौर पर मानसिक विक्षेपों के कारण हम अपनी आंतरिक शक्तियों से संबंध स्थापित नहीं कर पाते अथवा उन्हें अभिव्यक्त नहीं कर पाते। जबकि एकाग्रता के क्षणों में ही हम अपने व्यक्तित्व के आंतरिक पक्षों को समझना प्रारंभ करते हैं। इस प्रकार एकाग्र चित्त के परिणाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्रा विज्ञान से इन परिणामों को अवश्यंभावी प्राप्त किया जाता है।

मुद्राएँ शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन बनाए रखती है। हठयोग संबंधी मुद्राभ्यास में बन्ध का प्रयोग भी किया जाता है स्वभावत: मुद्रा और बन्ध हमारे शरीर के स्नायु जालकों तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थियों को उत्तेजित करते हैं और शरीर की जैव-ऊर्जाओं को सक्रिय करते हैं। कभी-कभी मुद्राएँ आंतरिक, मानसिक या अतीन्द्रिय भावनाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में भी कार्य करती हैं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है।

हमारे शरीर में अतीन्द्रिय शक्तियों से युक्त एक यौगिक पथ है जिसे मेरूदण्ड कहते हैं। इस मार्ग पर तथा इसके ऊपरी और निचले हिस्से में अनेक शक्तियाँ मौजूद हैं। साथ ही इस मार्गस्थित शक्तियों के इर्द-गिर्द विभिन्न स्नायु जाल बिछे हुए हैं। ये जाल मस्तिष्क केन्द्रों और अंत:स्रावी ग्रंथियों से सीधे जुड़े होते हैं। यौगिक मुद्राओं से स्नायु मंडल जागृत होकर शरीर में अनेक मनोवैज्ञानिक और जीव-रासायनिक परिवर्तन करते हैं। इन स्थितियों में अदृश्य शक्ति सम्पन्न षट्चक्रों का भेदन होता है और चेतन धारा ऊर्ध्वगामी बनती है।

मुद्रा तत्त्व परिवर्तन की अपूर्व क्रिया है। हमारा शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित माना जाता है। इन तत्त्वों की विकृति के कारण ही प्रकृति में असंतुलन और शरीर में रोग पैदा होते हैं। हस्त मुद्राएँ पंच तत्त्वों को संतुलित करने का सशक्त माध्यम है क्योंकि शरीर की पाँचों अंगुलियाँ पंच तत्त्व की प्रतिनिधि है, जिन्हें इन अंगुलियों की मदद से घटा-बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है। शरीर विज्ञान के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के अग्रभाग से जोड़ा जाए तो उससे सम्बन्धित तत्त्व स्थिर हो जाता है, जैसे अंगूठा अग्नि तत्त्व का स्थान है, तर्जनी वायु तत्त्व का, मध्यमा आकाश तत्त्व का, अनामिका पृथ्वी तत्त्व का और कनिष्ठिका जल तत्त्व का प्रतीक है। इस प्रकार अंगूठे के स्पर्श से संबंधित अंगुलियों के तत्त्व जो शरीर में व्याप्त हैं, प्रभावित होते हैं।

अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के निचले हिस्से अर्थात् मूल पर्व पर लगाने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व की शरीर में वृद्धि होती है। यदि अंगुली को मोड़कर अंगूठे की जड़ में अर्थात उसके आधार पर रखने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व का शरीर में ह्रास होता है। इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से पंच तत्त्वों को घटा-बढ़ाकर सन्तुलित किया जा सकता है। इससे शरीर को स्वास्थ्य-लाभ मिलता है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि अधिकांश मुद्राएँ हाथों से ही क्यों की जाती है? यदि गहराई से अवलोकन करें तो परिज्ञात होता है कि शरीर के सक्रिय अंगों में हाथ प्रमुख है। हथेली में एक विशेष प्रकार की प्राण ऊर्जा अथवा शक्ति का प्रवाह निरन्तर होता रहता है। इसी कारण शरीर के किसी भी भाग में दुःख, दर्द, पीड़ा होने पर सहज की हाथ वहाँ चला जाता हैं। अंगुलियों में अपेक्षाकृत संवेदनशीलता अधिक होती है इसी कारण अंगुलियों से ही नाड़ी को देखा जाता है। जिससे मस्तिष्क में नब्ज की कार्यविधि का संदेश शीघ्र पहुंच जाता है। रेकी चिकित्सा में हथेली का ही उपयोग होता है। रत्न चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के नगीने अंगूठी के माध्यम से हाथ की अंगुलियों में ही पहने जाते हैं जिनकी तरंगों के प्रभाव से शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा में हथेली में सारे शरीर के संवदेन बिन्दु होते हैं। सुजोक बायल मेरेडियन के सिद्धान्तानुसार अंगुलियों से ही शरीर के विभिन्न

अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित और संतुलित किया जा सकता है। हस्त रेखा विशेषज्ञ हथेली देखकर व्यक्ति के वर्तमान, भूत और भविष्य की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को बतला सकते हैं। कहने का आशय यही है कि हाथ, हथेली और अंगुलियों का मनुष्य की जीवन शैली से सीधा सम्बन्ध होता है। ये मुद्राएँ शरीरस्थ चेतना के शक्ति केन्द्रों में रिमोट कन्ट्रोल के समान कार्य करती हैं फलतः स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण होता है।

मुद्रा यह किसी एक धर्म या सम्प्रदाय से अथवा हिन्दु या बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित नहीं है। ईसाई धर्म में भी हस्त मुद्राएँ देवता एवं संतों के अभिप्राय तथा अभिव्यक्ति के माध्यम रहे हैं। ईसा मसीह द्वारा ऊपर किए गए दाएँ हाथ की मध्यमा एवं तर्जनी ऊर्ध्व की ओर, अनामिका एवं कनिष्ठका हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठा उन दोनों को आवेष्टित करते हुए ऐसी जो मुद्रा दर्शायी जाती है वह कृपा, क्षमा एवं देवी आशीष की सूचक है। इसी प्रकार मरियम की मूर्ति में जो मुद्रा दिखाई देती है वह मातृत्व एवं ममत्त्व भाव की सूचक है। यह भगवान के इच्छाओं के स्वीकार की भी द्योतक है।

हिन्दु और बौद्ध धर्म में प्रयुक्त कई मुद्राएँ विशिष्ट देवी-देवताओं आदि की सूचक है। मुख्यतया तांत्रिक मुद्राएँ विशेष प्रसंगों में पादरी तथा लामाओं द्वारा धारण की जाती है। इस प्रकार मुद्रा विज्ञान समस्त धर्मपरम्परा सम्मत है।

मुद्रा योग से संबन्धित यह शोध कार्य सात खण्डों में किया गया है।

प्रथम खण्ड में मुद्रा का स्वरूप विश्लेषण करते हुए तत्संबंधी कई मूल्यवान् तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुद्रा योग का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पक्ष भी प्रस्तुत किया है जिससे शोधार्थी एवं आत्मार्थी आवश्यक जानकारी एक साथ प्राप्त कर सकते हैं। इस खण्ड का अध्ययन करने पर परवर्ती खण्डों की विषय वस्तु भी स्पष्ट हो जाती है इस प्रकार यह मुख्य आधारभूत होने से इस खण्ड को प्रथम क्रम पर रखा गया है।

तदनन्तर सर्व प्रकार की मुद्राओं का उद्भव नृत्य व नाट्य कला से माना जाता है। विश्व की भौगोलिक गतिविधियों के अनुसार आज से लगभग **बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास न्यून एक कोटाकोटि सागरोपम पूर्व** भगवान ऋषभदेव हुए, जिन्हें वैदिक परम्परा में भी युग के आदि कर्त्ता माना गया है। जैन आगमकार कहते हैं कि उस समय मनुष्यों का जीवन

निर्वाह कल्पवृक्ष से होता था। धीर-धीरे काल का सुप्रभाव निस्तेज होने लगा, उससे भोजन आदि की कई समस्याएं उपस्थित हुई। तब ऋषभदेव ने पिता प्रदत्त राज्य पद का संचालन करते हुए लोगों को भोजन पकाने, अन्न उत्पादन करने, वस्त्र बुनने आदि का ज्ञान दिया। वे पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन आमोद-प्रमोद तथा नीति नियम पूर्वक जी सकें, एतदर्थ पुरुषों को 72 एवं स्त्रियों को 64 प्रकार की विशिष्ट कलाएँ सिखाई। उनमें नृत्य-नाट्य और मुद्रा कला का भी प्रशिक्षण दिया। इससे सिद्ध होता है कि मुद्रा विज्ञान की परम्परा आदिकालीन एवं प्राचीनतम है। इसलिए नाट्य मुद्राओं को द्वितीय खण्ड में स्थान दिया गया है।

प्रश्न हो सकता है कि नाट्य मुद्राओं पर किया गया यह कार्य कितना उपयोगी एवं प्रासंगिक है? इस सम्बन्ध में इतना स्पष्ट है कि जीवन में स्वाभाविक मुद्रा का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। 1. नृत्य में प्राय: सभी मुद्राएँ सहज होती है।

2. जो लोग नृत्य-नाट्यादि में रूचि रखते हैं वे इस कला के मर्म को समझ सकेंगे तथा उसकी उपयोगिता के बारे में अन्यों को ज्ञापित कर इस कला का गौरव बढ़ा सकते हैं।

3. जो नृत्यादि कला सीखने में उत्साही एवं उद्यमशील हैं वे मुद्राओं से होते फायदों के बारे में यदि जाने तो इस कला के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो एक स्वस्थ जीवन की उपलब्धि करते हुए दर्शकों के चित्त को पूरी तरह आनन्दित कर सकते हैं। साथ ही दर्शकों का शरीर व मन प्रभावित होने से वे भी निरोग तथा चिन्तामुक्त जीवन से परिवार एवं समाज विकास में ठोस कार्य कर सकते हैं।

4. नृत्य कला में प्रयुक्त मुद्राओं से होने वाले सुप्रभावों की प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हो तो इसके प्रति उपेक्षित जनता भी अनायास जुड़ सकती है और हाथ-पैरों के सहज संचालन से कई अनूठी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकती हैं।

5. यदि नाट्याभिनय में दक्षता हासिल हो जाये तो प्रतिष्ठा-दीक्षादि महोत्सव, गुरू भगवन्तों के नगर प्रवेश, प्रभु भक्ति आदि प्रसंगों में उपस्थित जन समूह को भक्ति मग्न कर सकते हैं। साथ ही शुभ परिणामों की भावधारा का वेग बढ़ जाने से पूर्वबद्ध अशुभ कर्मों को क्षीणकर परम पद को प्राप्त किया जा सकता है।

6. कुछ लोगों में नृत्य कला का अभाव होता है ऐसे व्यक्तियों को इसका मूल्य समझ में आ जाये तो वे भक्ति माहौल में स्वयं को एकाकार कर सकते हैं। उस समय हाथ आदि अंगों का स्वाभाविक संचालन होने से षट्चक्र आदि कई शक्ति केन्द्र प्रभावित होते हैं और उससे एक आरोग्य वर्धक जीवन प्राप्त होता है तथा अंतरंग की दूषित वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

7. हमारे दैनिक जीवन व्यवहार में हर्ष-शोक, राग-द्वेष, आनन्द-विषाद आदि परिस्थितियों के आधार पर जो शारीरिक आकृतियाँ बनती है इन समस्त भावों को नाट्य में भी दर्शाया जाता है इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ समस्त देहधारियों (मानवों) की जीवनचर्या का अभिन्न अंग है।

नाट्य मुद्राओं पर शोध करने का एक ध्येय यह भी है कि किसी संत पुरुष या अलौकिक पुरुष द्वारा सिखाया गया ज्ञान कभी निरर्थक नहीं हो सकता। इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ अनेक दृष्टियों से मूल्यवान् हैं।

तदनन्तर जैन शास्त्रों में वर्णित मुद्राओं को महत्त्व देते हुए उन्हें तीसरे खण्ड में गुम्फित किया गया है। क्योंकि जैन धर्म अनादिनिधन होने के साथ-साथ इस मुद्रा विज्ञान के आरम्भ कर्ता एवं युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान है। इन्हें जैन धर्म के आद्य संस्थापक भी माना जाता है।

मुद्रा सम्बन्धी चौथे खण्ड में हिन्दू परम्परा की मुद्राओं का आधुनिक परिशीलन किया गया है। हिन्दू धर्म में प्रचलित कई मुद्राओं का प्रभाव जैन आचार्यों पर पड़ा तथा देवपूजन आदि से संबंधित कतिपय मुद्राएँ यथावत् स्वीकार भी कर ली गई ऐसा माना जाता है। वर्तमान में विवाह आदि कई संस्कार प्राय: हिन्दू पण्डितों के द्वारा ही करवाये जा रहे हैं इसलिए इसे चौथे क्रम पर रखा गया है। दूसरे, हिन्दू धर्म में सर्वाधिक क्रियाकाण्ड होता है और उनमें मुद्रा प्रयोग होता ही है।

मुद्रा सम्बन्धी पाँचवें खण्ड में बौद्ध परम्परावर्ती मुद्राओं को सम्बद्ध किया गया है। यद्यपि भगवान महावीर और भगवान बुद्ध समकालीन थे फिर भी हिन्दू धर्म जैनों के निकट माना जाता है। यही कारण है कि अनेक कर्मकाण्डों का प्रभाव जैन अनुयायियों पर पड़ा। आज भी जैन परम्परा के लोग हिन्दू मन्दिरों में बिना किसी भेद-भाव के चले जाते हैं जबकि बौद्ध धर्म के प्रति ऐसा झुकाव नहीं देखा जाता।

I...हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में

हिन्दू धर्म भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में फैला हुआ है जबकि बौद्ध धर्म श्रमण परम्परा का संवाहक होने पर भी कुछ प्रान्तों में ही सिमट गया है। इन्हीं पहलूओं को ध्यान में रखते हुए बौद्ध मुद्राओं को पांचवाँ स्थान दिया गया है।

प्रस्तुत शोध के छठवें खण्ड में यौगिक मुद्राओं एवं सातवें खण्ड में आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का विवेचन किया गया है। वर्तमान में बढ़ रही समस्याओं एवं अनावश्यक तनावों से छुटकारा पाने के लिए योगाभ्यास परमावश्यक है। इसलिए यौगिक एवं प्रचलित मुद्राओं को पृथक् स्थान देते हुए जन साधारण के लिए उपयोगी बनाया है। साथ ही ये मुद्राएँ किसी परम्परा विशेष से भी सम्बन्धित नहीं है।

इस तरह उपरोक्त सातों खण्ड में मुद्राओं का जो क्रम रखा गया है वह पाठकों के सुगम बोध के लिए है। इससे मुद्राओं की श्रेष्ठता या लघुता का निर्णय नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वरूपतः प्रत्येक मुद्रा अपने आप में सर्वोत्तम है। किन्तु प्रयोक्ता के अनुसार जो जिसके लिए विशेष फायदा करती है वह श्रेष्ठ हो जाती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह शोध कार्य केवल विधि स्वरूप तक ही सीमित नहीं है इसमें प्रत्येक मुद्रा का शब्दार्थ, उद्देश्य, उनके सुप्रभाव, प्रतीकात्मक अर्थ, कौन सी मुद्रा किस प्रसंग में की जाये आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी उजागर किया गया है जिससे यह शोध समग्र पाठकों के लिए हमेशा उपादेय सिद्ध हो सकेगा।

प्रसंगानुसार मुद्रा चित्रों के सम्बन्ध में यह कहना चाहूंगी कि यद्यपि चित्रों को बनाने में पूर्ण सावधानी रखी गयी है फिर भी उसमें गलतियाँ रहना संभव है। क्योंकि हाथ से मुद्रा बनाकर दिखाने एवं उसके चित्र को बनाने वाले की दृष्टि और समझ में अन्तर हो सकता है।

चित्र के माध्यम से प्रत्येक पहलु को स्पष्टतः दर्शाना संभव नहीं होता, क्योंकि परिभाषानुसार हाथ का झुकाव, मोड़ना आदि अभ्यास पूर्वक ही आ सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त मुद्राओं के वर्णन को समझने में और ग्रन्थ कर्त्ता के अभिप्राय में अन्तर होने से कोई मुद्रा गलत बन गई हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ।

यहाँ निम्न बिन्दुओं पर भी ध्यान दें–

1. हमारे द्वारा दर्शाए गए मुद्रा चित्रों के अंतर्गत कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ दर्शक के देखने के हिसाब से माना गया है तथा कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ प्रयोक्ता के अनुसार दर्शाया गया है।
2. कुछ मुद्राएँ बाहर की तरफ दिखाने की है उनमें चित्रकार ने मुद्रा बनाते समय वह Pose अपने मुख की तरफ दिखा दिया है।
3. कुछ मुद्राओं में एक हाथ को पार्श्व में दिखाना है उस हाथ को स्पष्ट दर्शाने के लिए उसे पार्श्व में न दिखाकर थोड़ा सामने की तरफ दिखाया है।
4. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार दिखाई नहीं जा सकती है अतः उनकी यथावत् आकृति नहीं बन पाई हैं।
5. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार बनने के बावजूद भी चित्र में स्पष्टता नहीं उभर पाई हैं।
6. कुछ मुद्राओं के चित्र अत्यन्त कठिन होने से नहीं बन पाए हैं।

मुद्रा योग का यह चतुर्थ खण्ड निम्न सात अध्यायों में वर्गीकृत है और इसमें हिन्दू परम्परागत मुद्राओं की उपयोगिता चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में बताई गई है।

प्रथम अध्याय में मुद्रा प्रयोग से सूक्ष्म शरीर के शक्ति स्थानों पर होने वाले प्रभावों की चर्चा की गई हैं।

द्वितीय अध्याय में हिन्दू परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का सटीक वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय में हिन्दू धर्म के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित मुद्राओं का सचित्र विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में गायत्री जाप साधना में उपयोगी मुद्राओं का प्रभावपूर्ण निरूपण किया गया है।

पंचम अध्याय में हिन्दू एवं बौद्ध दोनों परम्परा में समान रूप से मान्य मुद्राओं पर विचार किया गया है।

षष्ठम अध्याय में देवार्चन, नित्य उपासना, होम आदि के समय प्रयोग की जाने वाली मुद्राओं का प्रतिपादन है।

सप्तम अध्याय में रोगोपचार में सहयोगी हिन्दू मुद्राओं का चार्ट दिया गया है जिसे उपसंहार कहा जा सकता है।

●

वन्दना की सरगम

आज से सत्रह वर्ष पूर्व एक छोटे से लक्ष्य को लेकर लघु यात्रा प्रारंभ हुई थी। उस समय यह अनुमान कदापि नहीं था कि वह यात्रा विविध मोड़ों से गुजरते हुए इतना विशाल स्वरूप धारण कर लेगी। आज इस दुरुह मार्ग के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचने में मेरे लिए परम आधारभूत बने जगत के सार्थवाह, तीन लोक के सिरताज, अखिल विश्व में जिन धर्म की ज्योत को प्रदीप्त करने वाले, मार्ग दिवाकर, अरिहंत परमात्मा के पाद प्रसूनों में अनेकश: श्रद्धा दीप प्रज्वलित करती हूँ। उन्हीं की श्रेयस्कारी वाणी इस सम्यक ज्ञान की आराधना में मुख्य आलंबन बनी है।

रत्नत्रयी एवं तत्त्वत्रयी के धारक, समस्त विघ्नों के निवारक, सकारात्मक ऊर्जा के संवाहक, सिद्धचक्र महायंत्र को अन्तर्हृदय से वंदना करती हूँ। इस श्रुतयात्रा के क्रम में परम हेतुभूत, भाव विशुद्धि के अधिष्ठाता, अनंत लब्धि निधान गौतम स्वामी के चरणों में भी हृदयावनत हो वंदना करती हूँ।

धर्म-स्थापना करके जग को, सत्य का मार्ग बताया है।
दिवाकर बनकर अखिल विश्व में, ज्ञान प्रकाश फैलाया है।
सर्वज्ञ अरिहंत प्रभु ने, पतवार बन पार लगाया है।
सिद्धचक्र और गुरु गौतम ने, विषमता में साहस बढ़ाया है।।

जिनशासन के समुद्धारक, कलिकाल में महान प्रभावक, जन मानस में धर्म संस्कारों के उन्नायक, चारों दादा गुरुदेव के चरणों में सश्रद्धा समर्पित हूँ। इन्हीं की कृपा से मैं रत्नत्रयात्मक साधना पथ पर अग्रसर हो पाई हूँ। इसी श्रृंखला में मैं आस्था प्रणत हूँ उन सभी आचार्य एवं मुनि भगवंतों की, जिनका आगम आलोडन एवं शस्त्र गुंफन इस कार्य के संपादन में अनन्य सहायक बना।

दत्त-मणिधर-कुशल-चन्द्र गुरु, जैन गगनांगण के ध्रुव सितारे हैं।
लक्षाधिक को जैन बनाकर, लहरायी धर्म ध्वजा हर द्वारे हैं।
श्रुत आलोडक सूरिजन मुनिजन, आगम रहस्यों को प्रकटाते हैं।
अध्यात्म योगियों के शुभ परमाणु, हर बिगड़े काज संवारे हैं।।

जिनके मन, वचन और कर्म में सत्य का तेज आप्लावित है। जिनके

आचार, विचार और व्यवहार में जिनवाणी का सार समाहित है ऐसे शासन के सरताज, खरतरगच्छाचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागरसूरीश्वरजी म.सा. के चरणारविन्द में भाव प्रणत वंदना। उन्हीं की अन्तर प्रेरणा से यह कार्य ऊँचाईयों पर पहुँच पाया है।

श्रद्धा समर्पण के इन क्षणों में प्रतिपल स्मरणीय, पुण्य प्रभावी, ज्योतिर्विद, प्रौढ़ अनुभवी , इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों पर शासन प्रभावना की यशोगाथाएँ अंकित कर रहे पूज्य उपाध्याय भगवन्त श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के पाद पद्मों में श्रद्धायुक्त नमन करती हूँ। आपश्री द्वारा प्रदत्त प्रेरणा एवं अनुभवी ज्ञान इस यात्रा की पूर्णता में अनन्य सहायक रहा है।

इसी श्रृंखला में असीम उपकारों का स्मरण करते हुए श्रद्धानत हूँ अनुभव के श्वेत नवनीत, उच्च संकल्पनाओं के स्वामी, राष्ट्रसंत पूज्य पद्मसागरसूरीश्वर जी म.सा. के पादारविन्द में। आपश्री द्वारा प्रदत्त सहज मार्गदर्शन एवं कोबा लाइब्रेरी से पुस्तकों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। आपश्री के निश्रारत सहजमना पूज्य गणिवर्य प्रशांतसागरजी म.सा. एवं सरस्वती उपासक, भ्राता मुनि श्री विमलसागरजी म.सा. ने भी इस ज्ञान यात्रा में हर तरह का सहयोग देते हुए कार्य को गति प्रदान की।

मैं हृदयावनत हूँ प्रभुत्वशील एवं स्नेहशील व्यक्तित्व के नायक, छत्तीस गुणों के धारक, युग प्रभावक पूज्य कीर्तियशसूरीश्वरजी म.सा. के चरण कमलों में, जिनकी असीम कृपा से इस शोध कार्य में नवीन दिशा प्राप्त हुई। आप श्री के विद्वद् शिष्य पूज्य रत्नयश विजयजी म.सा. द्वारा प्राप्त दिशानिर्देश कार्य पूर्णता में विशिष्ट आलम्बनभूत रहे।

कृतज्ञता ज्ञापन की इस कड़ी में विनयावनत हूँ शासन प्रभावक पूज्य राजयश सूरीश्वरजी म.सा. एवं मृदु व्यवहारी पूज्य वाचंयमा श्रीजी म.सा. (बहन महाराज) के चरणों में, जिन्होंने अहमदाबाद प्रवास के दौरान हृदयगत शंकाओं का सम्यक समाधान किया।

मैं भावप्रणत हूँ संयम अनुपालक, जग वल्लभ, नव्य अन्वेषक पूज्य आचार्य श्री गुणरत्नसागर सूरीश्वरजी म.सा. के चरणों में, जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से जिज्ञासाओं को उपशांत किया एवं अचलगच्छ परम्परा सम्बन्धी सूक्ष्म विधानों के रहस्यों से अवगत करवाया।

मैं आस्था प्रणत हूँ लाडनूं विश्व भारती के स्वर्ण पुरुष, श्रुत सागर के गूढ़

अन्वेषक, कुशल अनुशास्ता, आचार्य श्री महाप्रज्ञजी एवं आचार्य श्री महाश्रमण जी के पद पंकजों में, आप श्री की सृजनात्मक संरचनाओं के माध्यम से यह कार्य अथ से इति तक पहुँच पाया है।

इसी क्रम में मैं नतमस्तक हूँ शासन उन्नायक, संघ प्रभावक, त्रिस्तुतिक गच्छाधिपति पूज्य आचार्यप्रवर श्री जयंतसेन सूरीश्वरजी म.सा. के चरण पुंज में, जिन्होंने यथायोग्य सहायता देकर कार्य पूर्णाहुति में सहयोग दिया।

मैं श्रद्धाप्रणत हूँ शासक प्रभावक, क्रान्तिकारी संत श्री तरुणसागरजी म.सा. के चरण सरोज में, जिन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रमों में भी मुझे अपना अमूल्य समय देकर यथायोग्य समाधान दिए।

मैं अंत:करण पूर्वक आभारी हूँ शासन प्रभावक, मधुर गायक प.पू. पीयूषसागरजी म.सा. एवं प्रखर वक्ता प.पू. सम्यकरत्न सागरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने हर समय समुचित समस्याओं का समाधान देने में रुचि एवं तत्परता दिखाई। सच कहूं तो

जिनके सफल अनुशासन में, वृद्धिंगत होता जिनशासन।
माली बनकर जो करते हैं, संघ शासन का अनुपालन॥
कैलास गिरी सम जो करते रक्षा, भौतिकता के आंधी तूफानों से।
अमृत पीयूष बरसाते हरदम, मणि अपने शांत विचारों से॥
कर संशोधन किया कार्य प्रमाणित, दिया सद्ग्रन्थों का ज्ञान।
कीर्तियश है रत्न सम जग में, पद्म कृपा से किया ज्ञानामृत पान॥
सकल विश्व में गूंज रहा है, राजयश जयंतसेन का नाम।
गुणरत्न की तरुण स्फूर्ति से, महाप्रज्ञ बने श्रमण वीर समान॥

इस श्रुत गंगा में चेतन मन को सदा आप्लावित करते रहने की परोक्ष प्रेरणा देने वाली, जीवन निर्मात्री, अध्यात्म गंगोत्री, आशु कवयित्री, चौथे कालखण्ड में जन्म लेने वाली भव्य आत्माओं के समान प्राज्ञ एवं ऋजुस्वभावधारिणी, प्रवर्त्तिनी महोदया, गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. के पाद-प्रसूनों में अनन्तानन्त वंदन करती हूँ, क्योंकि यह जो कुछ भी लिखा गया है वह सब उन्हीं के कृपाशीष की फलश्रुति है अत: उनके पवित्र चरणों में पुनश्च श्रद्धा के पुष्प अर्पित करती हूँ।

उपकार स्मरण की इस कड़ी में मैं आस्था प्रणत हूँ वात्सल्य वारिधि, महतरा पद विभूषिता पूज्या विनिता श्रीजी म.सा., पूज्या प्रवर्त्तिनी चन्द्रप्रभा

श्रीजी म.सा., स्नेह पुंज पूज्य कीर्तिप्रभा श्रीजी म.सा., ज्ञान प्रौढ़ा पूज्य दिव्यप्रभा श्रीजी म.सा., सरलमना पूज्य चन्द्रकलाश्रीजी म.सा., मरुधर ज्योति पूज्य मणिप्रभा श्रीजी म.सा., स्नेह गंगोत्री पूज्य मनोहर श्रीजी म.सा., मंजुल स्वभावी पूज्य सुलोचना श्रीजी म.सा., विद्या वारिधि पूज्य विद्युतप्रभा श्रीजी म.सा. आदि सभी पूज्यवर्य्याओं के चरणों में, जिनकी मंगल कामनाओं ने मेरे मार्ग को निष्कंटक बनाने एवं लक्ष्य प्राप्ति में सेतु का कार्य किया।

गुरु उपकारों को स्मृत करने की इस वेला में अथाह श्रद्धा के साथ कृतज्ञ हूँ त्याग-तप-संयम की साकार मूर्ति, श्रेष्ठ मनोबली, पूज्या सज्जनमणि श्री शशिप्रभा श्रीजी म.सा. के प्रति, जिनकी अन्तर प्रेरणा ने ही मुझे इस महत् कार्य के लिए कटिबद्ध किया और विषम बाधाओं में भी साहस जुटाने का आत्मबल प्रदान किया। चन्द शब्दों में कहूँ तो

आगम ज्योति गुरुवर्य्या ने, ज्ञान पिपासा का दिया वरदान।
अनायास कृपा वृष्टि ने जगाया, साहस और अंतर में लक्ष्य का भान।।
शशि चरणों में रहकर पाया, आगम-ग्रन्थों का सुदृढ़ ज्ञान।
स्नेह आशीष पूज्यवर्य्याओं का, सफलता पाने में बना सौपान।।

कृतज्ञता ज्ञापन के इस अवसर पर मैं अपनी समस्त गुरु बहिनों का भी स्मरण करना चाहती हूँ, जिन्होंने मेरे लिए सदभावनाएँ ही संप्रेषित नहीं की, अपितु मेरे कार्य में यथायोग्य सहयोग भी दिया।

मेरी निकटतम सहयोगिनी ज्येष्ठ गुरुबहिना पू. प्रियदर्शना श्रीजी म.सा., संयमनिष्ठा पू. जयप्रभा श्रीजी म.सा., सेवामूर्ति पू. दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा. जाप परायणी पू. तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., प्रवचनपटु पू. सम्यकदर्शना श्रीजी म.सा., सरलहृदयी पू. शुभदर्शना श्रीजी म.सा., प्रसन्नमना पू. मुदितप्रज्ञा श्रीजी म.सा., व्यवहार निपुणा शीलगुणा जी, मधुरभाषी कनकप्रभा श्रीजी, हंसमुख स्वभावी संयमप्रज्ञा श्रीजी, संवेदनहृदयी श्रुतदर्शना जी आदि सर्व के अवदान को भी विस्मृत नहीं कर सकती हूँ।

साध्वीद्वया सरलमना **स्थितप्रज्ञाजी** एवं मौन साधिका **संवेगप्रज्ञाजी** के प्रति विशेष आभार अभिव्यक्त करती हूँ क्योंकि इन्होंने प्रस्तुत शोध कार्य के दौरान व्यावहारिक औपचारिकताओं से मुक्त रखने, प्रूफ संशोधन करने एवं हर तरह की सेवाएँ प्रदान करने में अद्वितीय भूमिका अदा की। साथ ही गुर्वाज्ञा को शिरोधार्य कर ज्ञानोपासना के पलों में निरन्तर मेरी सहचरी बनी रही।

इसी के साथ अल्प भाषिणी सुश्री मोनिका बैराठी (जयपुर) एवं शान्त स्वभावी सुश्री सीमा छाजेड़ (मालेगाँव) को साधुवाद देती हुई उनके उज्ज्वल भविष्य की तहेदिल से कामना करती हूँ क्योंकि शोध कार्य के दौरान दोनों मुमुक्षु बहिनों ने हर तरह की सेवाएँ प्रदान की।

अन्तर्विश्वास भगिनी मंडल का, देती दुआएँ सदा मुझको।
प्रिय का निर्देशन और सम्यक बुद्धि, मुदित करे अन्तर मन को।
स्थित संवेग की श्रुत सेवाएँ, याद रहेगी नित मुझको।
इस कार्य में नाम है मेरा, श्रेय जाता सज्जन मण्डल को।।

इस शोध प्रबन्ध के प्रणयन काल में जिनका मार्गदर्शन अहम् स्थान रखता है ऐसे जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन के निष्णात विद्वान, प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर के संस्थापक, पितृ वात्सल्य से समन्वित, आदरणीय डॉ. सागरमलजी जैन के प्रति अन्तर्भावों से हार्दिक कृतज्ञता अभिव्यक्त करती हूँ। आप श्री मेरे सही अर्थों में ज्ञान गुरु हैं। यही कारण है कि आपकी निष्काम करुणा मेरे शोध पथ को आद्यंत आलोकित करती रही है। आपकी असीम प्रेरणा, नि:स्वार्थ सौजन्य, सफल मार्गदर्शन और सुयोग्य निर्माण की गहरी चेष्टा को देखकर हर कोई भावविह्वल हो उठता है। आपके बारे में अधिक कुछ कह पाना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है।

दिवाकर सम ज्ञान प्रकाश से, जागृत करते संघ समाज
सागर सम श्रुत रत्नों के दाता, दिया मुझे भी लक्ष्य विराट।
मार्गदर्शक बनकर मुझ पथ का, सदा बढ़ाया कार्योल्लास।।

इस दीर्घ शोधावधि में संघीय कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए अनेक स्थानों पर अध्ययनार्थ प्रवास हुआ। इन दिनों में हर प्रकार की छोटी-बड़ी सेवाएँ देकर सर्व प्रकारेण चिन्ता मुक्त रखने के लिए शासन समर्पित सुनीलजी मंजुजी बोथरा (रायपुर) के भक्ति भाव की अनुशंसा करती हूँ।

अपने सद्भावों की ऊर्जा से जिन्होंने मुझे सदा स्फुर्तिमान रखा एवं दूरस्थ रहकर यथोचित सेवाएँ प्रदान की ऐसी स्वाध्याय निष्ठा, श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख (जगदलपुर) भी साधुवाद के पात्र हैं।

सेवा स्मृति की इस कड़ी में परमात्म भक्ति रसिक, सेवाभावी श्रीमती शकुंतलाजी चन्द्रकुमारजी (लाला बाबू) मुणोत (कोलकाता) की अनन्य सेवा भक्ति एवं आत्मीय स्नेहभाव की स्मृति सदा मानस पटल पर बनी रहेगी।

इसी कड़ी में श्रीमति किरणजी खेमचंदजी बांठिया (कोलकाता) तथा श्रीमती नीलमजी जिनेन्द्रजी बैद (टाटा नगर) की निस्वार्थ सेवा भावना एवं मुद्राओं के चित्र निर्माण में उनके अथक प्रयासों के लिए मैं उनकी सदा ऋणी रहूँगी।

बनारस अध्ययन के दौरान वहाँ के भेलुपुर श्री संघ, रामघाट श्री संघ तथा निर्मलचन्दजी गांधी,कीर्तिभाई ध्रुव, अश्विन भाई शाह, ललितजी भंसाली, धर्मेन्द्रजी गांधी, दिव्येशजी शाह आदि परिवारों ने अमूल्य सेवाएँ दी, एतदर्थ उन सभी को सहृदय साधुवाद है।

इसी प्रवास के दरम्यान कलकत्ता, जयपुर, मुम्बई, जगदलपुर, मद्रास, बेंगलोर, मालेगाँव, टाटानगर, वाराणसी आदि के संघों एवं तत् स्थानवर्ती कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दुसाज, विमलचन्दजी महमवाल, महेन्द्रजी नाहटा, अजयजी बोथरा, पन्नालाल दुगड़, नवरतनमलजी श्रीमाल, मयूर भाई शाह, जीतेशमलजी, नवीनजी झाड़चूर, अश्विनभाई शाह, संजयजी मालू, धर्मचन्दजी बैद आदि ने मुझे अन्तप्रेरित करते हुए अपनी सेवाएँ देकर इस कार्य की सफलता का श्रेय प्राप्त किया है अतएव सभी गुरु भक्तों की अनुमोदना करती हुई उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

इस श्रेष्ठतम शोध कार्य को पूर्णता देने और उसे प्रामाणिक सिद्ध करने में L.D. Institute अहमदाबाद श्री कैलाशसागरसूरि ज्ञानमंदिर-कोबा, प्राच्य विद्यापीठ-शाजापुर, खरतरगच्छ संघ लायब्रेरी-जयपुर, पार्श्वनाथ विद्यापीठ- वाराणसी के पुस्तकालयों का अनन्य सहयोग प्राप्त हुआ, एतदर्थ कोबा संस्थान के केतन भाई, मनोज भाई, अरूणजी आदि एवं पार्श्वनाथ विद्यापीठ के ओमप्रकाश सिंह को बहुत-बहुत धन्यवाद और शुभ भावनाएँ प्रेषित करती हूँ।

प्रस्तुत शोध कार्य को जनग्राह्य बनाने में जिनकी पुण्य लक्ष्मी सहयोगी बनी है उन सभी श्रुत संवर्धक लाभार्थियों का मैं अनन्य हृदय से आभार अभिव्यक्त करती हूँ।

इस बृहद शोध खण्ड को कम्प्यूटराईज्ड करने एवं उसे जन उपयोगी बनाने हेतु मैं अंतर हृदय से आभारी हूँ मितभाषी श्री विमलचन्द्रजी मिश्रा (वाराणसी) की, जिन्होंने इस कार्य को अपना समझकर कुशलता पूर्वक संशोधन किया। उनकी कार्य निष्ठा का ही परिणाम है कि यह कार्य आज साफल्य के शिखर पर पहुँच पाया है।

इसी क्रम में ज्ञान रसिक, मृदुस्वभावी श्रीरंजनजी कोठारी, सुपुत्र रोहितजी कोठारी एवं पुत्रवधु ज्योतिजी कोठारी का भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ कि उन्होंने जिम्मेदारी पूर्वक सम्पूर्ण साहित्य के प्रकाशन एवं कंवर डिजाईनिंग में सजगता दिखाई तथा उसे लोक रंजनीय बनाने का प्रयास किया। शोध प्रबन्ध की समस्त कॉपियों के निर्माण में अपनी पुण्य लक्ष्मी का सदुपयोग कर श्रुत उन्नयन में निमित्तभूत बने हैं।

Last but not the least के रूप में उस स्थान का उल्लेख भी अवश्य करना चाहूँगी जो मेरे इस शोध यात्रा के प्रारंभ एवं समापन की प्रत्यक्ष स्थली बनी। सन् 1996 के कोलकाता चातुर्मास में जिस अध्ययन की नींव डाली गई उसकी बहुमंजिल इमारत सत्रह वर्ष बाद उसी नगर में आकर पूर्ण हुई। इस पूर्णाहुति का मुख्य श्रेय जाता है श्री जिनरंगसूरि पौशाल के ट्रस्टी श्री विमलचंदजी महमवाल, कान्तिलालजी मुकीम, कमलचंदजी धांधिया, मणिलालजी दुसाज आदि को जिन्होंने अध्ययन के लिए यथायोग्य स्थान एवं सुविधाएँ प्रदान की तथा संघ समाज के कार्यभार से मुक्त रखने का भी प्रयास किया।

इस शोध कार्य के अन्तर्गत जाने-अनजाने में किसी भी प्रकार की त्रुटि रह गई हो अथवा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में सहयोगी बने हुए लोगों के प्रति कृतज्ञ भाव अभिव्यक्त न किया हो तो सहृदय मिच्छामि दुक्कडम् की प्रार्थी हूँ।

प्रतिबिम्ब इन्दू का देख जल में, आनंद पाता है बाल ज्यों।
आप्त वाणी मनन कर, आज प्रसन्नचित्त मैं हूँ।
सत्गुरु जनों के मार्ग का, यदि सत्प्ररूपण ना किया।
क्षमत्व हूँ मैं सुज्ञ जनों से, हो क्षमा मुझ गल्तियाँ।।

●

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्त्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरूवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी-

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरू बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुभूति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्वक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

●

अनुक्रमणिका

अध्याय-1 : मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्र आदि के विशिष्ट प्रभाव 1-29

1. सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव 2. ग्रन्थि तन्त्रों पर मुद्रा के प्रभाव 3. चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा के प्रभाव 4. पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव।

अध्याय-2 : हिन्दू परम्परा सम्बन्धी विविध कार्यों हेतु प्रयुक्त मुद्राओं का प्रासंगिक स्वरूप 30-72

1. अंचित मुद्रा 2. अराल मुद्रा 3. अर्चित मुद्रा 4. आवाहन मुद्रा 5. चन्द्रकला मुद्रा 6. चतुरहस्त मुद्रा 7. चतुर मुद्रा 8. चिन् मुद्रा 9. दंड मुद्रा 10. धेनु मुद्रा 11. गदा मुद्रा 12. गजहस्त मुद्रा 13. हंस मुद्रा 14. हरिण मुद्रा 15. हस्त स्वस्तिक मुद्रा 16. कपित्थ मुद्रा 17. कश्यप मुद्रा 18. कटि मुद्रा 19. कटिग मुद्रा 20. कट्यावलम्बित मुद्रा 21. कूर्पर मुद्रा 22. मुकुल मुद्रा 23. निद्रातहस्त मुद्रा 24. पद्म मुद्रा 25. पताका मुद्रा 26. प्रवर्तित हस्त मुद्रा 27. पुष्पाञ्जलि मुद्रा 28. पुष्पपुट मुद्रा 29. सर्पकार मुद्रा 30. सिंहकर्ण मुद्रा 31. तत्त्व मुद्रा 32. वज्रपताका मुद्रा 33. वन्दना मुद्रा 34. विस्मय मुद्रा 35. विस्मय वितर्क मुद्रा।

अध्याय-3 : शारदातिलक, प्रपंचसार आदि पूर्ववर्ती ग्रन्थों में उल्लिखित मुद्राओं का सोद्देश्य स्वरूप 73-131

मतंग पारमेश्वर में निर्दिष्ट मुद्राएँ– 1. शक्ति मुद्रा 2. बीज मुद्रा 3. प्रशांत मुद्रा 4. आवाहन मुद्रा 5. संहार मुद्रा।

शारदातिलक तंत्र में वर्णित मुद्राएँ– 1. आवाहनी मुद्रा 2. स्थापनी मुद्रा 3. सन्निधापनी मुद्रा 4. सन्निरोधनी मुद्रा 5. सम्मुखीकरणी मुद्रा 6. सकलीकृति मुद्रा 7. अवगुण्ठनी मुद्रा 8. धेनु मुद्रा 9. महामुद्रा।

शारदातिलक तन्त्र पर रचित राघव भट्टीय टीका की मुद्राएँ– 1. मूसल मुद्रा 2. योनि मुद्रा 3. चक्र मुद्रा 4. गालिनी मुद्रा 5. गरुड़ मुद्रा 6. गन्ध मुद्रा 7. ज्वालिनी मुद्रा 8. ज्ञान मुद्रा 9. पुस्तक मुद्रा 10. व्याख्यान मुद्रा

11. लक्ष्मी मुद्रा 12. पाश मुद्रा 13. दुर्गा मुद्रा 14. गणपति मुद्रा 15. विघ्न मुद्रा 16. अब्ज मुद्रा 17. बिम्ब मुद्रा 18. सप्त जिह्वा मुद्रा 19. मृग मुद्रा 20. गदा मुद्रा 21. श्रीवत्स मुद्रा 22. कौस्तुभ मुद्रा 23. वनमाला मुद्रा 24. हयग्रीवा मुद्रा 25. नारसिंही मुद्रा 26. नृसिंह मुद्रा 27. अन्त्र मुद्रा 28. वस्त्र मुद्रा 29. दंष्ट्रा मुद्रा 30. दारण मुद्रा 31. विष्वक्सेन मुद्रा 32. वेणु मुद्रा 33. बिल्व मुद्रा 34. काम मुद्रा 35. त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा 36. परशु मुद्रा 37. मृग मुद्रा 38. अभय मुद्रा 39. वर मुद्रा 40. लिंग मुद्रा 41. डमरूक मुद्रा।

प्रपंचसार-सारसंग्रह कथित मुद्राएँ– 1. आवाहनी मुद्रा 2. स्थापिनी मुद्रा 3. सन्निधापनी मुद्रा 4. संरोधिनी मुद्रा 5. सम्मुखी मुद्रा 6. प्रार्थना मुद्रा 7. वासुदेव मुद्रा 8. लिंग मुद्रा 9. विघ्न मुद्रा 10. योनि मुद्रा 11. जानु मुद्रा 12. नारसिंही मुद्रा 13. नृसिंही मुद्रा 14. वाराह मुद्रा (प्रथम प्रकार) 15. वाराह मुद्रा (द्वितीय प्रकार) 16. नृहरि मुद्रा 17. हयग्रीव मुद्रा 18. वेणु मुद्रा 19. लक्ष्मी मुद्रा 20. कुन्त मुद्रा 21. काम मुद्रा 22. त्रैलोक्य मोहिनी मुद्रा 23. दुर्गा मुद्रा 24. गरुड़ मुद्रा 25. शंख मुद्रा 26. गदा मुद्रा 27. अब्ज मुद्रा 28. मुख मुद्रा 29. चर्म मुद्रा 30. मूसल मुद्रा 31. अस्त्र मुद्रा 32. चक्र मुद्रा 33. दंष्ट्रा मुद्रा 34. श्रीवत्स मुद्रा 35. कौस्तुभ मुद्रा 36. वनमाला मुद्रा 37. त्रिशूल मुद्रा 38. डमरूक मुद्रा 39. परशु मुद्रा 40. मृग मुद्रा 41. खट्वांग मुद्रा 42. कापाली मुद्रा 43. धेनु मुद्रा 44. बाण मुद्रा 45. नाराच मुद्रा 46. धेनु मुद्रा 47. इक्षुचाप मुद्रा 48. पंचपुष्पबाण मुद्रा 49. वर मुद्रा 50. अभय मुद्रा 51. अक्षमाला मुद्रा 52. पुस्तक मुद्रा 53. संहार मुद्रा।

अध्याय-4 : गायत्री जाप साधना एवं सन्ध्या कर्म आदि में उपयोगी मुद्राओं की रहस्यमयी विधियाँ 132-181

1. सम्मुखी मुद्रा 2. सम्पुटी मुद्रा 3. वितत मुद्रा 4. विस्तृत मुद्रा 5. द्विमुखी मुद्रा 6. त्रिमुखी मुद्रा 7. चतुर्मुखी मुद्रा 8. पंचमुखी मुद्रा 9. षण्मुखी मुद्रा 10. अधोमुखी मुद्रा 11. व्यापकांजलि मुद्रा 12. शकट मुद्रा 13. यमपाश मुद्रा 14. ग्रथित मुद्रा 15. सन्मुखोन्मुख मुद्रा 16. प्रलम्ब मुद्रा 17. मुष्टिक मुद्रा 18. मत्स्य मुद्रा 19. कूर्म मुद्रा 20. वाराह मुद्रा 21. सिंहक्रान्त मुद्रा 22. महाक्रान्त मुद्रा 23. मुद्गर मुद्रा 24. पल्लव मुद्रा 25. सुरभि मुद्रा

26. ज्ञान मुद्रा 27. वैराग्य मुद्रा 28. योनि मुद्रा 29. शंख मुद्रा 30. पंकज मुद्रा 31. लिंग मुद्रा 32. निर्वाण मुद्रा।

अध्याय-5 : पूजोपासना आदि में प्रचलित मुद्राओं की प्रयोग विधियाँ 182-266

षडंगन्यास सम्बन्धी मुद्राएँ– 1. हृदयाय मुद्रा 2. कवचाय मुद्रा 3. नेत्रत्रयाय मुद्रा 4. फट् मुद्रा 5. शिखायै मुद्रा 6. शिरसी मुद्रा।

जीवन्यास सम्बन्धी मुद्राएँ– 1. बीज मुद्रा 2. लेलिहा मुद्रा 3. त्रिखण्डा मुद्रा 4. नाद मुद्रा 5. बिन्दु मुद्रा 6. सौभाग्यदायिनी मुद्रा।

करन्यास सम्बन्धी छह मुद्राएँ– 1. प्रथमा मुद्रा 2. द्वितीया मुद्रा 3. तृतीया मुद्रा 4. चतुर्थ मुद्रा 5. पंचम मुद्रा 6. सम्पूर्ण करन्यास मुद्रा।

मातृकान्यास सम्बन्धी पन्द्रह मुद्राएँ– 1. पहली 2. दूसरी 3. तीसरी 4. चौथी 5. पाँचवीं 6. छठवीं 7. सातवीं 8. आठवीं 9. नौवीं 10. दसवीं 11. ग्यारहवीं 12. बारहवीं 13. तेरहवीं 14. चौदहवीं 15. पन्द्रहवीं।

नित्य पूजा सम्बन्धी मुद्राएँ– 1. प्रार्थना मुद्रा 2. अंकुश मुद्रा 3. कुन्त मुद्रा 4. कुम्भ मुद्रा 5. तत्त्व मुद्रा।

पूजोपचार सम्बन्धी मुद्राएँ– 1. गन्ध मुद्रा 2. पुष्प मुद्रा 3. धूप मुद्रा 4. दीप मुद्रा 5. नैवेद्य मुद्रा 6. आचमन मुद्रा 7. ताम्बूल मुद्रा 8. प्राण मुद्रा 9. अपान मुद्रा 10. व्यान मुद्रा 11. उदान मुद्रा 12. समान मुद्रा 13. ग्रास मुद्रा।

ध्यानावेश प्रार्थना सम्बन्धी मुद्राएँ– 1. विघ्नघ्नी मुद्रा 2. विस्मय मुद्रा 3. प्रार्थना मुद्रा 4. अर्घ्य मुद्रा 5. सूर्य प्रदर्शनी मुद्रा।

होम सम्बन्धी मुद्राएँ– 1. अवगुण्ठिनी मुद्रा 2. सप्तजिह्वा मुद्रा 3. ज्वालिनी मुद्रा 4. मृगी मुद्रा 5. हंसी मुद्रा 6. शूकरी मुद्रा 7. आहूति मुद्रा 8. आवशिष्टिका मुद्रा।

सरस्वती देवी सम्बन्धी मुद्राएँ– 1. अक्षमाला मुद्रा 2. वीणा मुद्रा 3. व्याख्यान मुद्रा 4. पुस्तक मुद्रा 5. वर मुद्रा।

विष्णु के पूजन में प्रयुक्त 19 मुद्राएँ– 1. शंख मुद्रा 2. चक्र मुद्रा 3. गदा मुद्रा 4. पद्म मुद्रा 5. वेणु मुद्रा 6. श्रीवत्स मुद्रा 7. कौस्तुभ मुद्रा

8. वनमाला मुद्रा 9. ज्ञान मुद्रा 10. बिल्व मुद्रा 11. गरुड़ मुद्रा 12. नारसिंही मुद्रा-1, नारसिंही मुद्रा-2, 13. वाराह मुद्रा-1, वाराह मुद्रा-2 14. हयग्रीव मुद्रा 15. धनु मुद्रा 16. वाण मुद्रा 17. परशु मुद्रा 18. त्रैलोक्य मोहिनी मुद्रा 19. काम मुद्रा।

शिव के पूजन में प्रयुक्त 10 मुद्राएँ– 1. लिंग मुद्रा 2. योनि मुद्रा 3. त्रिशूल मुद्रा 4. अक्षमाला मुद्रा 5. वर मुद्रा 6. अभय मुद्रा 7. मृगी मुद्रा 8. खट्वांग 9. कापालिकी मुद्रा 10. डमरू मुद्रा।

विविध मुद्राएँ– 1. सर्वोन्मादिनी मुद्रा 2. महांकुशा मुद्रा 3. विद्राविणी मुद्रा 4. सर्वविक्षोभ मुद्रा 5. सर्वाकर्षिणी मुद्रा 6. छोटिका मुद्रा 7. प्रबोध मुद्रा 8. मुण्ड मुद्रा 9. जप मुद्रा 10. पंचक मुद्रा 11. पल्लव मुद्रा 12. प्रलम्ब मुद्रा।

अध्याय-6 : हिन्दू एवं बौद्ध परम्पराओं में प्रचलित मुद्राओं का विशिष्ट स्वरूप **267-308**

1. अभिषेक मुद्रा 2. अहायवरद मुद्रा 3. अंजलि मुद्रा 4. अर्धान्जली मुद्रा 5. बुद्धाश्रमण मुद्रा 6. चपेटदान मुद्रा 7. डमरूहस्त मुद्रा 8. करतरी हस्त मुद्रा 9. करन मुद्रा 10 कटक मुद्रा-1 11. कटक मुद्रा-2 12. मयूर मुद्रा 13. नमस्कार मुद्रा-1 14. नमस्कार मुद्रा-2 15. नेत्र मुद्रा-1 16. नेत्र मुद्रा-2 17. पद्महस्त मुद्रा 18. सूची मुद्रा-1 19. सूची मुद्रा-2 20. सूची मुद्रा-3 21. सूची मुद्रा-4 22. लोलहस्त मुद्रा 23. साजंलि मुद्रा 24. स्वकुचग्रह मुद्रा 25. स्वस्तिक मुद्रा-1 26. स्वस्तिक मुद्रा-2 27. स्वस्तिक मुद्रा-3 28. तर्जनी मुद्रा-2 29. त्रिपिटक मुद्रा-1 30. त्रिपिटक मुद्रा-2 31. उरूसंस्थित मुद्रा 32. उत्तराबोधि मुद्रा 33. वंदन मुद्रा 34. वरद मुद्रा 35. कूर्म मुद्रा।

अध्याय-7 : उपसंहार **309-320**

भौतिक एवं आध्यात्मिक चिकित्सा में उपयोगी मुद्राएँ

1. शारीरिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ 2. भावनात्मक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ 3. आध्यात्मिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ।

सहायक ग्रन्थ सूची **321-324**

●

अध्याय-1

मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्रादि के विशिष्ट प्रभाव

मुद्रा एक ऐसी योग पद्धति है जिसके माध्यम से प्राचीन साधकों एवं दार्शनिकों के अनुभव, ज्ञान एवं साधना पद्धति को आधुनिक वैज्ञानिक संदर्भों में प्रतिपादित किया जा सकता है। यह प्राच्य विद्या वर्तमान युग को एक नई दिशा देने में सक्षम है। इसके द्वारा आज व्यक्तिगत स्तर पर उभर रही समस्याओं का ही नहीं अपितु सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय आदि अनेक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है। मुद्रा दैनिक क्रियाओं में उपयोगी एक महत्त्वपूर्ण विधि है और इसका विधिवत नियमित प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है।

हमारी शारीरिक संरचना एक जटिल मशीन के समान है। इसके विभिन्न पुर्जे (Parts) विविध कार्य करते हैं। मुद्रा प्रयोग के द्वारा उन सभी को एक साथ प्रभावित किया जा सकता है। इस योग के द्वारा शरीरस्थ मूलाधार आदि सप्त चक्रों को जागृत कर मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक विकृतियों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। इसी के साथ मुद्रा योग अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ, चैतन्य केन्द्र एवं पंच तत्त्व आदि को संतुलित एवं नियंत्रित रखते हुए स्वस्थ, सुसंस्कृत एवं सुदृढ़ समाज के निर्माण में सहयोगी बनता है।

सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव

किसी भी मुद्रा का प्रयोग एवं उसकी साधना जागरण का अभूतपूर्व माध्यम होता है। ये सात चक्र आध्यात्मिक जगत एवं भौतिक जगत को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। सात चक्रों के नाम इस प्रकार हैं–

1. मूलाधार चक्र 2. स्वाधिष्ठान चक्र 3. मणिपुर चक्र 4. अनाहत चक्र 5. विशुद्धि चक्र 6. आज्ञा चक्र और 7. सहस्रार चक्र।

1. मूलाधार चक्र

प्रथम मूलाधार चक्र गुप्तांग एवं गुदा के बीच पेरिनियम में स्थित है। इसे मूलाधार, मूल आधार अथवा प्रथम चक्र के रूप में जाना जाता है। मूलाधार चक्र प्रभावित होने से साधक पर निम्न प्रभाव देखे जा सकते हैं–

इस चक्र का मूल कार्य ऊर्जा का उत्पादन है। यही बलशाली आन्तरिक ऊर्जा व्यक्तित्व विकास करते हुए भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करती है, आत्मविश्वास को सुदृढ़ बनाती है। यह ऊर्जा जागृत न हो तो व्यक्ति Over confident अथवा Low confident हो जाता है।

इस चक्र में रूकावट होने पर अथवा इसके सक्रिय न होने पर समस्त चक्रों पर दुष्प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यह प्रथम चक्र होने से सभी का आधार चक्र है। इसके असंतुलन से व्यक्ति सुनता कम और बोलता ज्यादा है। वह परिस्थितियों को भी सहज स्वीकार नहीं कर पाता।

इस चक्र के जागृत होने से क्रोध, पागलपन, घृणा, वस्तु के प्रति अत्यधिक लगाव, अनियंत्रण, अवसाद, अहंकार, वैचारिक एवं भावनात्मक अस्थिरता, ईर्ष्या, आलस्य, अपेक्षा वृत्ति, बड़बड़ाना, (Depression) आत्महत्या के प्रयास आदि कई भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं तथा दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने में सहयोग मिलता है।

सुसंस्कारों के निर्माण में यह चक्र विशेष सहायक बनता है। घटती संवेदनाओं एवं पारिवारिक मूल्यों के पुनर्जागरण में इस चक्र का सक्रिय रहना आवश्यक है। यह चक्र कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करते हुए मृत्यु भय को दूर करता है। इससे साधक आत्मज्ञाता बनकर स्वस्वरूप को प्राप्त करते हुए अन्य कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करता है।

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध प्रजनन तंत्र, गुर्दे एवं गुप्तांग से है। इसलिए तत्सम्बन्धी रोगों जैसे– पुरुष एवं स्त्री प्रजनन अंगों की समस्या, हस्त दोष, स्वप्न दोष, मासिक धर्म सम्बन्धी विकारों आदि का उपशमन होता है। इसी के साथ कैन्सर, कोष्ठबद्धता, फोड़े, सिरदर्द, हड्डी-जोड़ों आदि की समस्या, शारीरिक कमजोरी, बवासीर, गुर्दे, मांसपेशी आदि रोगों का भी निवारण होता है।

यह चक्र शक्ति केन्द्र एवं गोनाड्स ग्रन्थि के कार्य को प्रभावित करता

है अत: इसका संतुलन अथवा असंतुलन शरीर की समस्त गतिविधियों को प्रभावित करता है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र

दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र मूलाधार एवं नाभि के मध्य स्थित है। इसे सकराल, यौन, स्वाधिष्ठान एवं द्वितीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र में उत्पन्न ऊर्जा काम वासना एवं यौन उत्तेजना को नियंत्रित रखती है। दूसरों से प्रीतिपूर्ण व्यवहार रखने में यह चक्र सहायक बनता है।

स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होने पर व्यक्ति के जीवन में निम्न प्रभाव देखें जा सकते हैं–

इस चक्र का मूल कार्य प्रजनन तंत्र एवं यौन इच्छाओं को नियंत्रित करना है। इससे सम्बन्धों में मधुरता एवं विश्वास की वृद्धि होती है। इसका असंतुलन या निष्क्रियता कामेच्छाओं को असंतुलित और सम्बन्धों में पारस्परिक अविश्वास की वृद्धि करता है।

प्रथम मूलाधार चक्र यदि सम्यक प्रकार से जागृत हो और साधक को व्यक्तित्त्व बोध अच्छे से हुआ हो तो ही व्यक्ति दूसरे चक्र की ऊर्जा का उपयोग सत्कार्यों में कर सकता है। अत: दूसरा चक्र मुख्य रूप से व्यावहारिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को प्रेम एवं सौहार्द पूर्ण बनाने में सहायक बनता है।

इस चक्र की सक्रियता से भावनात्मक समस्याएँ जैसे– भय, लालसा, असृजनशीलता, अविश्वास, निष्क्रियता, अनाकर्षक व्यवहार, अत्यधिक कामवृत्ति, अकेलापन, नशे की आदत, मानसिक अशांति एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि का निवारण होता है।

यह चक्र आत्मा की आन्तरिक शक्तियों एवं गुणों को जागृत करते हुए जीव को निर्भय बनाता है। क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि दुष्वृत्तियों का क्षय करता है। व्यक्तित्व हिमालय की भाँति धवल एवं वाणी प्रभावशाली बनती है। अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। साधक को आध्यात्मिक उच्चता प्राप्त होती है।

शारीरिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से प्रजनन अंग, दोनों पैर एवं गुर्दे आदि को विशेष प्रभावित करता है। इन अंगों से सम्बन्धित रोग जैसे कि

पैरों में दर्द, सुजन, गुर्दे के रोग, प्रजनन समस्याएँ, अंडाशय, गर्भाशय की समस्या, यौनी विकार, यौन रोग आदि का शमन होता है। इसी के साथ यह खून की कमी, सूखी त्वचा, खसरा, हर्निया, दाद-खाज आदि चर्म समस्याएँ, नपुंसकता, मासिक धर्म सम्बन्धी विकार, रक्त कैन्सर आदि का भी शमन करता है।

इस चक्र के जागृत होने से स्वास्थ्य केन्द्र एवं प्रजनन ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। जिसके द्वारा काम विकार एवं भावनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

3. मणिपुर चक्र

तीसरा मणिपुर चक्र नाभि में स्थित है। इसे नाभि चक्र या तृतीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। मणिपुर एक ऊर्जा चक्र है। यह साधक को सक्रिय, गतिशील एवं उत्साही बनाता है। इससे साधक आत्मविश्वासी एवं दृढ़ संकल्पी बनता है।

इस चक्र के जागृत होने पर साधक के मनोबल, संकल्पबल एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होती है तथा इस चक्र के विकार युक्त होने पर व्यक्ति असक्षम एवं असृजनशील बन जाता है और उसके मनोविकार बढ़ने लगते हैं।

यह तृतीय चक्र व्यक्ति को सामाजिक कर्तव्यों एवं दायित्वों के विषय में जागृत करता है। प्रथम चक्र स्वयं को स्वयं से, द्वितीय चक्र दो व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार से और तृतीय चक्र समूह से जोड़ता है। यह उर्ध्वगमन में भी सहायक बनता है।

इस चक्र के जागरण से क्रोध, भय, अनैकाग्रता, अविश्वास, शंकालु वृत्ति, अखुशहाल जीवन, अविषाद, लालच, अत्यधिक कामवृत्ति आदि भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं।

इस चक्र के ध्यान से कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं जैसे कि व्यक्ति अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा आदि को स्वीकार कर उत्तरोत्तर प्रगति करता है। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ और नैसर्प आदि नौ निधियों की शक्ति प्राप्त होती है तथा परोपकार एवं परमार्थ आदि की रूचि में वृद्धि होती है।

मणिपुर चक्र का मुख्य प्रभाव उदर भाग स्थित पाचनतंत्र, यकृत (लीवर), पित्ताशय तिल्ली आदि पर पड़ता है। जब यह चक्र प्रभावित होता है तब पाचन संबंधी समस्याएँ मधुमेह, अल्सर, पित्ताशय, लीवर, उदर आदि के रोगों

में निश्चित रूप से फायदा होता है। इसी प्रकार यह चक्र रक्त विकार, हृदय विकार, मानसिक विकार, शरीर एवं श्वास की दुर्गंध, वायु विकार, आँखों की समस्या आदि अनेक रोगों का निवारण करता है।

इस चक्र के प्रभावित होने से एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थियाँ विकार मुक्त होती है तथा तैजस् केन्द्र सक्रिय बनता है। ऐसी स्थिति में उदर प्रदेश एवं पाचन तंत्र सम्बन्धी कार्य सुचारू रूप से होते हैं।

4. अनाहत चक्र

अनाहत सप्त चक्रों में चौथा चक्र है। इसका स्थान हृदय प्रदेश माना गया है। इसे अनहत, हृदय अथवा चतुर्थ चक्र के नाम से भी जाना जाता है। अनाहत चक्र की शक्ति प्रेम, परोपकार, दयालुता, उदारता, सहकारिता, कर्तव्यपरायणता, विश्वमैत्री की भावना को उत्पन्न करती हैं। अनाहत चक्र के प्रभावित होने पर व्यक्ति में निम्न प्रभाव परिलक्षित होते हैं।

यह चक्र मुख्य रूप से वक्ष:स्थल, हृदय, रक्तवाहिनियों एवं श्वसन संस्थान सम्बन्धी कार्यों को प्रभावित करता है। इसे भाव संस्थान भी माना गया है। कलात्मक उमंगे, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं के उत्पादन का स्रोत यही चक्र है।

अनाहत चक्र के जागृत होने पर व्यक्ति हृदयगत भावों को सम्यक् रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम बनता है। कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्य जैसे चित्रकला, नृत्य, संगीत, कविता आदि की अभिरूचि में वृद्धि होती है।

भावनात्मक विकार जैसे कि उत्तेजना, चिल्लाना, गाली देना, अनुत्साह, असन्तुष्टि, दुखीपन, धुम्रपान, निर्ममता, कौटुम्बिक समस्या, आत्मसम्मान की कमी आदि अनेक नकारात्मक शक्तियों का निर्गमन इस चक्र की साधना से हो सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से करूणा, क्षमा, विवेक, आत्मिक आनंद, उदारता, प्रेम, सौहार्द, वसुधैव कुटुम्बकम् आदि के भाव विकसित होते हैं तथा सभी के प्रति मैत्री एवं समत्त्व वृत्ति का विकास होता है।

जब किसी मुद्रा का प्रभाव अनाहत चक्र पर पड़ता है तो दैहिक स्तर पर हृदय, रक्त संचरण एवं श्वसन क्रिया प्रभावित होती है। जिससे हृदय रोग, दमा, छाती में दर्द, रक्तवाहिनियों में रूकावट या Blotting आ जाना आदि

रोगों में विशेष रूप से लाभ प्राप्त होता है। इससे एलर्जी, Anxiety disorder सुस्ती, फेफड़ों के रोग, प्रतिरोधात्मक तंत्र के विकार आदि शारीरिक समस्याएँ भी दूर होती हैं।

थायमस ग्रन्थि एवं आनंद केन्द्र के सम्यक संचालन हेतु इस केन्द्र का सक्रिय होना बहुत आवश्यक है। भावना शुद्धि, सौहार्द एवं सामंजस्य की स्थापना में यह चक्र विशेष सहयोगी है।

5. विशुद्धि चक्र

सात चक्रों में पांचवाँ विशुद्धि चक्र कण्ठ प्रदेश में स्थित है। इसे विशुद्ध, कण्ठ अथवा पंचम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। पंचम चक्र की ऊर्जा के प्रभाव से साधक अपने आत्म भावों को वाणी के द्वारा अच्छी प्रकार से अभिव्यक्त कर पाता है। इस चक्र के प्रभाव से साधक के वैयक्तिक, व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक जीवन में निम्न लाभ देखे जा सकते हैं–

यह विशुद्धि चक्र संचार केन्द्र है और स्वयं को व्यक्त करने में मुख्य रूप से सहायक बनता है। विपरित परिस्थितियों में समत्व स्थिति एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार में भी विशेष उपयोगी बनता है। अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित करते हुए दायें मस्तिष्क के Silent area को जगाने में भी यह चक्र प्राथमिक भूमिका निभाता है।

इस चक्र के सक्रिय न होने पर भावनाओं की अभिव्यक्ति एवं अन्य संचरण कार्यों में रूकावट आ जाती है। इसी के साथ स्मरण शक्ति का ह्रास, कई प्रकार की मानसिक विकृतियाँ एवं कंठ विकार उत्पन्न होते हैं।

चक्र के सक्रिय होने पर भावनात्मक समस्याएँ जैसे अनियंत्रित व्यवहार, भावनाओं में रूकावट, आंतरिक चिंता, अनुशासन की कमी, स्मृति खोना, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, अहंकार आदि अवरोधों के निवारण में विशेष सहायता प्राप्त होती है।

पाँचवें चक्र का ध्यान करने पर साधक भूख प्यास को नियंत्रित कर सकता है। इससे अतिन्द्रिय क्षमता के प्रसुप्त बीजांकुर फुट पड़ते हैं। आंतरिक शक्ति का जागरण होता है। शारीरिक, मानसिक, वैचारिक एवं भावनात्मक स्थिरता एवं दृढ़ता बढ़ती है। साधक चिंतन शक्ति का विकास करते हुए दार्शनिक या आत्मचिंतक बनता है। कंठ प्रदेश में स्रावित होने वाले अमृत रस के पान

से साधक कांतिवान एवं तेजस्वी बनता है तथा अन्य भी कई आध्यात्मिक लाभों को प्राप्त करता है।

शारीरिक स्तर पर विशुद्धि चक्र के जागरण एवं संतुलन से स्वर तंत्र, कंठ एवं कर्ण प्रदेश पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इससे तत्सम्बन्धी रोगों थायरॉइड, बहरापन, कम सुनना, Vocal cord एवं स्वर तंत्र के विकार आदि से राहत मिलती है।

विशुद्धि चक्र के रोग मुक्त होने से विशुद्धि केन्द्र, थायरॉइड और पेराथायरॉईड ग्रंथियाँ प्रभावित होती हैं। इससे वाणी प्रखर एवं प्रभावशाली बनती है।

6. आज्ञा चक्र

इस चक्र का स्थान दोनों भौहों के बीच है। इसे तीसरी आँख या षष्टम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र से प्राप्त ऊर्जा अन्तर्ज्ञान, एकाग्रता एवं अतिन्द्रिय शक्तियों में वृद्धि करती है। आध्यात्मिक उत्थान में यह चक्र विशेष सहायक माना गया है। इसके गतिशील होने पर साधक के जीवन में निम्न लाभ देखे जाते हैं–

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध हमारे अन्तर्ज्ञान एवं अवचेतन मन में घटित घटनाओं से है। यह ईडा, पिंगला एवं सुषुम्ना का संगम स्थल है। इस चक्र की साधना से व्यष्टि सत्ता समष्टि चेतना से सम्बन्ध जोड़ने में सक्षम हो जाती है।

आज्ञा चक्र के जागरण से साधक दिव्य ज्ञानी, दार्शनिक, दूसरों के मनोभावों को समझने वाला बनता है। भूत एवं भविष्य का ज्ञान और विचार संप्रेषण में दक्षता प्राप्त कर लेता है। मन, बुद्धि एवं विचारों की एकाग्रता सधती है जिससे आत्मनियंत्रण की विशिष्ट शक्ति का जागरण होता है।

इस चक्र के प्रभावित होने पर उन्मत्तता, अवषाद, ज्ञान की कमी, चालाकी, स्मृति समस्याएँ, मानसिक विकार, अनिश्चिय, पागलपन, चंचलता, वैचारिक अस्थिरता आदि भावनात्मक समस्याओं का समाधान होता है।

आत्मनियंत्रण में यह चक्र विशेष सहायक है। बौद्धिक सूक्ष्मता एवं प्रखरता में वृद्धि करते हुए यह आन्तरिक ज्ञान चेतना को भी जागृत करता है। इस चक्र को आत्मा का उत्थान द्वार माना गया है। इससे साधक काम वासना आदि पर विजय प्राप्त कर आत्मानंद की प्राप्ति करता है तथा मस्तिष्किय रहस्यों

एवं आत्मज्ञान को उपलब्ध करता है।

छठे आज्ञा चक्र के जागृत होने पर शरीरस्थ पीयूष ग्रन्थि एवं छोटा मस्तिष्क विशेष प्रभावित होता है। इनके स्वस्थ रहने से अनिद्रा, सिरदर्द, ब्रेनट्युमर, मिरगी एवं मस्तिष्क संबंधी रोगों का निवारण होता है। इसी के साथ पुरानी थकान, पागलपन, पीयुष ग्रन्थि की समस्या, बौद्धिक दुर्बलता आदि भी दूर होती हैं।

बौद्धिक स्तर पर यह चक्र एकाग्रता को बढ़ाता है। विचारों को स्थिर करता है। बौद्धिक दुर्बलता एवं अस्थिरता को दूर करता है। सूक्ष्म बुद्धि विकसित होने से समझ शक्ति तथा स्मृति बल में अभिवृद्धि होती है।

आज्ञा चक्र आन्तरिक दिव्य ज्ञान को जागृत करने एवं आत्मनियंत्रण में विशेष लाभदायी है। इस चक्र के संतुलित रहने से दर्शन केन्द्र एवं पीयूष ग्रन्थि नियन्त्रित रहती हैं।

7. सहस्रार चक्र

सहस्रार चक्र सिर के ऊपरी भाग में अवस्थित उच्चतम चेतना का केन्द्र है। इसे ताज या सप्तम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र का सम्बन्ध सम्पूर्णतया आध्यात्मिक जगत से है। इस चक्र में प्रवाहित ऊर्जा आत्मा और परमात्मा के बीच तादात्म्य स्थापित कर शाश्वत सत्य का अनुभव करवाती है।

यह चक्र अमरत्व का प्रतीक है। इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध ऊपरी मस्तिष्क से है। यह साधक के ज्ञानार्जन में सहायक बनता है और उसे निर्विकल्प एवं निर्विकारी बनाता है।

सहस्रार चक्र के जागृत होने पर साधक की मनोदशा संसार के भौतिक प्रपंचों से मुक्त होकर आध्यात्मिक जगत में स्थिर होती है। इससे असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। यह चक्र साधना के उच्चतम प्रतिफल की अनुभूति करवाता है।

भावनात्मक समस्याएँ जैसे कि उन्मत्तता, अवषाद, मृत्यु भय, निराशा, नादानी, पागलपन, अनुत्साह , अन्तरप्रेरणा की कमी, खुश नहीं रहना, निर्णय आदि लेने में कठिनाई होना, मानसिक एवं वैचारिक अस्थिरता आदि के निवारण में विशेष भूमिका निभाता है।

इस चक्र की साधना से साधक को दिव्य ज्ञान की अनुभूति होती है तथा परमोच्च सिद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है।

दैहिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से ऊपरी मस्तिष्क को संतुलित रखता है। मस्तिष्क कैन्सर, मानसिक एवं बौद्धिक समस्याएँ , कामासक्ति, सिरदर्द, मिरगी आदि में इस चक्र की सक्रियता फायदा करती है। इससे पार्किंसंस रोग, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की समस्या, ऊर्जा की कमी, पुरानी बिमारी, कामेच्छाओं के असंतुलन आदि दूर होते हैं।

पिनियल ग्रन्थि एवं ज्योति केन्द्र सम्बन्धी असंतुलन के नियंत्रण में यह चक्र सहायक बनता है। इस चक्र के विकार ग्रस्त होने पर व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक अवस्था का ज्ञान नहीं रहता।

ग्रन्थि तंत्रों पर मुद्रा के प्रभाव

आधुनिक विज्ञान के अनुसार व्यक्ति की विविध शारीरिक क्रियाओं के संचालन हेतु अनेक ग्रन्थियाँ एक टीम के रूप में कार्य करती हैं, जिसे तन्त्र कहा जाता है। शरीर के नियंत्रक एवं संयोजक के रूप में मुख्य दो तन्त्र हैं– नाड़ी तन्त्र एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थि तन्त्र।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की रचना हमारे शरीर के नियामक एवं रक्षक तंत्र के रूप में की गई है। यह अपने प्रभावों का निष्पादन रासायनिक स्रावों के माध्यम से करता है जिसे हार्मोन (Harmone) कहते हैं, यह हार्मोन्स रक्त में घुल-मिलकर शरीर के गठन एवं उसके स्वस्थ रहने में सहयोगी बनते हैं तथा मुनष्य की मानसिक दशा, स्वभाव, व्यवहार आदि पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। मुनष्य के भीतर रहे हुए आवेग, वासना, घृणा, कामना आदि को नियंत्रित करने में यह एक प्रमुख स्रोत है। योगाचार्यों के अनुसार ग्रन्थियाँ मन और चारित्र का निर्माण करती हैं।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा पेडु के ईद-गिर्द और नीचे स्थित विद्युत एवं ऊर्जा का उर्ध्वारोहण किया जा सकता है। इससे अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की शक्ति को कई गुणा बढ़ाकर उत्तम चारित्रिक विकास भी संभव है। इन स्रावों के असंतुलन से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। भारतीय योगी साधकों ने हजारों वर्ष पूर्व इन ग्रन्थियों का वर्णन चक्र अथवा कमल के रूप में किया है। ग्रन्थियों एवं चक्रों की तुलना करने पर उनमें कोई विशेष अंतर

परिलक्षित नहीं होता।

जिस प्रकार मधुमक्खी सिंचित फलों के रस में अपना स्राव मिलाकर मधु बनाती है उसी प्रकार ग्रन्थियाँ शरीर में से आवश्यक तत्त्व ग्रहण करके उनमें अपना रस मिलाकर रासायनिक कारखानों की भाँति शक्तिशाली हार्मोन्स का निर्माण करती हैं। ये हार्मोन्स हमारे शरीर में प्रतिक्षण मृतप्राय: कोशिकाओं (Cells) को पुनर्जीवित कर क्रियाशील बनाने का कार्य करते हैं। इससे शारीरिक क्रियाएँ व्यवस्थित रूप से चलती रहती है। कई बार जब ग्रन्थियों में विकृति आ जाती है तो उन्हें संतुलित करना अत्यावश्यक हो जाता है, अन्यथा कई असाध्य रोग उत्पन्न हो सकते हैं। समस्त शारीरिक एवं मानसिक रोगों का मूल कारण अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का असंतुलन ही है।

पंच महाभूतों का नियमन कर शरीर के संगठन (Melabolism of the body) को मजबूत रखना ग्रन्थियों का मुख्य कार्य है। मस्तिष्क और शरीर के प्रत्येक अवयव का संतुलन एवं रोगों से सुरक्षित रखने का कार्य ग्रन्थियाँ ही करती हैं। इस तरह ग्रन्थियाँ हमारे शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं वैयक्तिक निर्माण एवं विकास में सहायक बनती हैं। इन ग्रन्थियों के असंतुलन का प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव एवं व्यवहार पर परिलक्षित होता है जैसे कि यदि एंड्रिनल ग्रन्थि सही रूप से कार्यरत न हो तो लीवर बराबर काम नहीं करता तथा व्यक्ति डरा हुआ एवं चिडचिड़ा बन जाता है। यौन ग्रन्थियों के अधिक सक्रिय होने पर वासना बढ़ती है और व्यक्ति स्वार्थी बनता है। यदि थायमस ग्रन्थि अंसतुलित हो तो स्वभाव में छिछोरापन और दुष्टता आती है। पिच्युटरी ग्रन्थि के बराबर काम नहीं करने पर व्यक्ति निर्दयी और कठोर बन जाता है तथा अपराध कार्यों में उसकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इसलिए अंत:स्रावी ग्रन्थियों को संतुलित रखना परम आवश्यक है। ये समस्त ग्रन्थियाँ परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि एक ग्रंथि में उत्पन्न विकार समस्त ग्रन्थियों को प्रभावित करता है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से अंत:स्रावी ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित किया जा सकता है। हमारे शरीर में मुख्यतया निम्न आठ ग्रन्थियाँ हैं–

1. पिनीयल ग्रन्थि (Pineal Gland)

पिनीयल ग्रन्थि मस्तिष्क के मध्य पिछले हिस्से में स्थित है। इसका आकार गेहूं के दाने से भी छोटा होता है। यह ग्रन्थि मुख्य सचिव की भाँति शरीर

की व्यवस्था एवं गतिविधियों का संचालन करती है। इसे तीसरी आंख भी कहते हैं।

पिनीयल ग्रन्थि सभी ग्रन्थियों का विधिवत विकास एवं संचालन करती है, शैशव अवस्था में कामवृत्तियों को नियंत्रित रखती है तथा संकट के समय में शारीरिक तन्त्रों को आवश्यक निर्देश देने एवं उन्हें क्रियान्वित करने का कार्य करती है। इससे नियंत्रण एवं नेतृत्व शक्ति का विकास होता है। अत: इस ग्रन्थि का सक्रिय एवं संतुलित रहना अनिवार्य है।

शारीरिक स्तर पर इस ग्रन्थि के विधिवत् कार्य न करने पर उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) एवं समय से पूर्व काम वासना जागृत हो जाती है। शरीरस्थ सोडियम, पोटैशियम और जल की मात्रा का संतुलन यही ग्रन्थि करती है। जिन लोगों की यह ग्रन्थि ठीक से काम नहीं करती उनके शरीर में पानी का जमाव होने से शरीर फुग्गे की तरह फूल जाता है और किडनी के रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

यदि यह ग्रन्थि जागृत होकर सम्यक रूप से कार्य करे तो मनुष्य में अनेक दिव्य गुणों का उद्भव हो सकता है। इससे साधक में सज्जनता, साधुता, समझदारी आती है तथा हृदय की सुकुमारता एवं मनोबल दृढ़ होता है।

2. पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)

पीयूष ग्रन्थि का स्थान मस्तिष्क के निचले छोर तथा नाक के मूल भाग के पीछे की ओर है। इस ग्रन्थि का आकार मटर के दाने के जितना है। यह ग्रन्थि सब ग्रन्थियों की रानी है तथा अन्य ग्रन्थियों को काम का आदेश देती है। इसे ग्रन्थियों को नेता (Master Gland) भी कहा जाता है।

यह ग्रन्थि कम से कम नौ प्रकार के विभिन्न हार्मोनों का स्राव करती है जिससे जीवन के कई महत्त्वपूर्ण क्रियाकलापों पर प्रभाव पड़ता है। यह हमारे मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति एवं देखने-सुनने की शक्ति का नियमन करती है। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से व्यक्ति बुद्धिशाली, प्रसिद्ध लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञानी और मानव जाति का प्रेमी बनता है।

इस ग्रन्थि का स्राव शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, स्फुर्ति, हृदय की धड़कन, शरीर तापक्रम, रक्त शर्करा आदि को नियंत्रित रखता है। यह ग्रन्थि व्यक्ति की लम्बाई, सिर के बाल एवं हड्डियों के विकास को भी संचालित करती है।

इस ग्रन्थि के असंतुलित होने पर से शरीर दुर्बल अथवा अत्यधिक मोटा हो जाता है। यह मस्तिष्क का भी नियंत्रण करती है। अत्यधिक डरने, चोट लगने अथवा गर्भावस्था में अधिक चिंता करने से गर्भस्थ शिशु की पीयूष ग्रन्थि प्रभावित होती है जिसके परिणामस्वरूप अल्प विकसित मस्तिष्क वाले बच्चे (Retarded child) का जन्म होता है। ऐसे बच्चे हीन वृत्तिवाले, भावनाशून्य, शरारती एवं स्वच्छंदी होते हैं। पीयूष ग्रन्थि को मुद्रा प्रयोग द्वारा प्रभावित करने से इन सब समस्याओं में विस्मयकारी समाधान देखा जा सकता है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायता प्राप्त हो सकती है। यह ग्रन्थि तनावमुक्त, प्रसन्नता, सहिष्णुता, मैत्री भावना आदि गुणों से युक्त जीवन जीने में सहयोग करती है तथा वाचालता, अस्थिरता, अत्यधिक संवेदनशीलता, शारीरिक उष्णता आदि को न्यून करती है।

3. थाइरॉइड-पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ (Thyroid and Para thyroid Gland)

थाइरॉइड एवं पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ स्वर यंत्र के समीप श्वासनली के ऊपरी छोर पर स्थित हैं। इन्हें अवटु एवं परावटु ग्रन्थि भी कहा जाता है। यह ग्रन्थि विपुल मात्रा में रक्त की आपूर्ति करती है और बालकों के विकास में विशेष सहायक बनती है।

थाइरॉइड ग्रन्थि शरीर में ऊर्जा उत्पादन का मुख्य अवयव है। चयापचय की मात्रा और व्यक्ति की जल्दबाजी को निर्धारित करने का मुख्य कार्य यही ग्रन्थि करती है। इस ग्रन्थि की सक्रियता से सद्भाव, उच्च विचारशक्ति, एकाग्रता, आत्मसंयम, संतुलित स्वभाव, पवित्रता, परोपकार आदि गुणों का जन्म होता है।

शारीरिक स्तर पर यह ग्रन्थि शरीरस्थ चूने एवं गंधक तत्त्व (Calcium and Phosphorus) का पाचन करती है। शरीर में रहे विजातिय तत्त्वों को दूर करती है। गर्मी को संतुलित रखती है। पाचन एवं प्रजनन अंगों से सीधा सम्बन्ध होने के कारण यह भोजन को रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी एवं वीर्य में परिवर्तित करने में सहायक बनती है। कामेच्छा को गति देने, प्रजनन अंगों को स्वच्छ रखने एवं मासिक धर्म को नियंत्रित रखने में भी इस ग्रन्थि की मुख्य भूमिका है।

इस ग्रन्थि के असंतुलित रहने पर शरीर में थकान महसूस होती है। शरीर का सूखना (Rickets), हिचकी (Convulsion), स्नायुओं का ऐंठन आदि रोग होते हैं। बालकों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। पथरी, मोटापा, रियुमेटिजम, आर्थराईटिस, कोलेस्ट्रॉल आदि की समस्या बढ़ जाती है तथा अस्वस्थता, वाचालता, मुखरता, कृतघ्नता आदि दुर्गुणों की वृद्धि होती है।

इस ग्रन्थि की संतुलित अवस्था में वायु तत्त्व, केलशियम, आयोडिन और कोलेस्ट्रॉल नियन्त्रित रखते हैं। मस्तिष्क को संतुलित रखते हुए यह शरीर में होने वाले वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट की चयापचय क्रिया को भी नियंत्रित रखती है।

इस ग्रन्थि के जागृत रहने पर सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, कामेच्छा नियंत्रित रहती है और बालकों में सुसंस्कारों एवं सद्‌गुणों का विकास होता है।

4. **थायमस ग्रन्थि** (Thymus Gland)

थायमस ग्रन्थि गर्दन के नीचे एवं हृदय के कुछ ऊपर सीने के मध्य स्थित है। इसे धायमाता कहा जाता है। इसका प्रमुख कार्य बालकों की रोग से रक्षा करना है। शैशव अवस्था में इस ग्रन्थि की वृद्धि बहुत तेजी से होती है और बीस वर्ष की आयु के बाद यह सिकुड़ जाती है।

इस ग्रन्थि से शैशव अवस्था में शारीरिक विकास का नियमन होता है। विशेष रूप से गोनाड्स (काम ग्रन्थियों) को सक्रिय नहीं होने देती। यौवन अवस्था में उन्मादों का निरोध करती है। मस्तिष्क का सम्यक नियोजन करते हुए लसिका-कोशिकाओं के विकास में अपने स्राव (T-cells) द्वारा सहयोग कर रोग निरोधक कार्यवाही में योगदान करती है। इस प्रकार बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास में यह विशेष सहयोगी बनती है।

5. **एड्रीनल ग्रन्थि** (Adrenal Gland)

एड्रीनल ग्रन्थि गुर्दे के ऊपरी भाग में युगल रूप में रहती है। यह टोपी जैसी त्रिकोणाकार होती है। इस ग्रन्थि के द्वारा ग्रन्थि शारीरिक गतिविधियों जैसे– हलन-चलन, श्वसन, रक्त संचरण, पाचन, मांसपेशी संकुचन, पानी आदि अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

यह ग्रन्थि तीन दर्जन से भी अधिक प्रकार के स्रावों को उत्पन्न करती

है। ये स्राव मस्तिष्क एवं प्रजनन अवयवों के स्वस्थ विकास में सहायक बनते हैं तथा मानसिक एकाग्रता एवं शारीरिक सहनशीलता को बढ़ाते हैं। इन स्रावों के प्रभाव से शरीर की स्नायविक और मांसपेशीय संरचना स्वस्थ एवं बलवान रहती है। रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करते हुए शरीर के लिए आवश्यक रसायनों एवं औषधियों के निर्माण में भी यह सहायक बनती है। शरीरस्थ अग्नितत्त्व का नियमन करते हुए यह ग्रन्थि यकृत, लीवर, गोल ब्लेडर, पाचक रस एवं पित्त उत्पादन कार्य का संतुलन करती है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय एवं संतुलित रहने से तीव्र परख शक्ति, अथक कार्य शक्ति, आंतरिक साहस, निर्भयता, आशावादिता, आत्मविश्वास आदि सकारात्मक गुणों की वृद्धि होती है। इसके एपीनेफ्रीन और नोर-एपीनेफ्रिन नामक हार्मोनों के स्राव दर्द, शीत प्रकोप; अल्प रक्तचाप, भावनात्मक उद्वेग, क्रोध, उत्तेजना आदि का शमन करने में विशेष सहयोगी बनते हैं।

6. पेन्क्रियाज ग्रन्थि (Pancreas Gland)

यह ग्रन्थि पेट में 6इंच से 8 इंच लम्बी स्थित है। इस ग्रन्थि में उत्पन्न रस क्षारीय स्वभाव का होने से शरीर के आम्लिय तत्त्वों को नियंत्रित रखता है। इन्हीं रसों में से एक इंसुलिन नामक रस रक्त शर्करा को पचाने में महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। यही रस शरीर में ऊर्जा का भी उत्पादन करता है।

वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार पेन्क्रियाज के अधिक क्रियाशील रहने पर शरीरस्थ रक्त शर्करा कम हो जाती है जिससे लो ब्लड प्रेशर, आधासीसी आदि रोगों की संभावना बढ़ जाती है और वहीं इसकी निष्क्रियता मधुमेह आदि रोगों को बढ़ाती है।

इस ग्रन्थि से जागृत रहने पर भूख, पसीना, रक्तचाप आदि नियंत्रित रहते हैं तथा सिरदर्द, तनाव, कमजोरी, लो ब्लड प्रेशर, मधुमेह आदि रोगों का निवारण होता है। यह ग्रन्थि अनिर्णायकता, चिंतातुरता, अतिसंवेदनशीलता आदि समस्याओं का भी निवारण करती है।

7. प्रजनन ग्रन्थियाँ (गोनाड्स)

रजपिंड एवं शुक्रपिंड (Overies and Testies) के रूप में काम ग्रन्थियाँ मनुष्य के शरीर में पेडु एवं पृष्ठ रज्जु के नीचे के छोर के पास स्थित हैं। स्त्रियों में डिम्बाशय एवं पुरुषों में वृषण प्रजनन ग्रन्थि का कार्य करते हैं। यह ग्रन्थि प्रजनन की अटूट श्रृंखला को चालु रखती है।

गोनाड्स या काम ग्रन्थियाँ मुख्य रूप से कामेच्छा को नियन्त्रित कर विपरित लिंग के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती हैं। इससे नि:सृत स्राव के द्वारा स्त्रियाँ स्त्रियोचित व्यक्तित्व को और पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त करते हैं। ग्रन्थियाँ देह में स्थित जलतत्त्व का संतुलन करते हुए ज्ञानतंतुओं, मज्जा कोष, मांस, हड्डी, बोन-मेरो एवं वीर्य रज का नियमन करती हैं तथा अन्य अवयव एवं उनके क्रियाकलापों पर भी गहरा प्रभाव डालती है।

यदि काम ग्रन्थियाँ सुचारू रूप से कार्य न करें तो कन्याओं की मासिक धर्म (Menstural Periods) सम्बन्धी गड़बड़ियाँ, मुहाँसे, पांडुरोग (Anemia) आदि तथा लड़कों में हस्तदोष-स्वप्नदोष आदि समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने पर शरीर की गर्मी संतुलित रहती है। इससे युवक-युवतियों का स्वभाव मिलनसार बनता है। यह मनुष्य के व्यवहार एवं वाणी को लोकप्रिय बनाती है।

चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा का प्रभाव

भगवतीसूत्र में बतलाया गया है 'सव्वेणं सव्वे' हमारी चेतना के असंख्य प्रदेश हैं और वे सब चैतन्य केन्द्र हैं। कुछ स्थान या केन्द्र ऐसे होते हैं जिनके द्वारा हम शरीर एवं भावों को अधिक प्रभावित कर सकते हैं। हमारे शरीर के संचालन में चैतन्य केन्द्रों की विशेष भूमिका होती है। चेतना का आन्तरिक स्तर मन नहीं है अपितु चेतन मन में उठने वाले आवेग क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, लालच आदि वृत्तियाँ हैं।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में विवेक चेतना अन्तर्निहित होती है। इस विवेक चेतना एवं विवेक पूर्ण निर्णायक शक्ति का सम्यग विकास ही हमारे भीतर रही पाशवी वृत्तियों, रूढ़िगत परम्पराओं, मानसिक विकारों एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि को दूर कर सकती है। विवेक चेतना के जागरण के लिए चैतन्य केन्द्रों का स्वस्थ एवं विकार रहित रहना परमावश्यक है। चित्त का यह स्वभाव है कि वह सिर से लेकर पैर तक घुमता रहता है। कभी ऊपर तो कभी नीचे, कभी अच्छे विचारों में तो कभी बुरे विचारों में, कभी उत्कृष्ट भावों में तो कभी गहन पतन के मार्ग पर। इन सब पर नियंत्रण करने हेतु चैतन्य केन्द्रों का संतुलित एवं जागृत रहना आवश्यक है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से यह कार्य सहज संभव होता है।

वैज्ञानिक शोधों के अनुसार हमारा सम्पूर्ण शरीर विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (Electro Magnetic Field) है, किन्तु कुछ विशेष स्थानों में विद्युत क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानों की तुलना में कई गुणा अधिक होती है। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रियाँ, अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ आदि कुछ ऐसे ही क्षेत्र हैं। आयुर्वेद की भाषा में इन्हें मर्म स्थान कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यों ने 107 मर्म स्थानों का उल्लेख किया है जहाँ पर प्राणों का केन्द्रीकरण होता है। इन रहस्यमय स्थानों में चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। युवाचार्य महाप्रज्ञजी ने तेरह चैतन्य केन्द्रों की चर्चा की है।

1. शक्ति केन्द्र 2. स्वास्थ्य केन्द्र 3. तैजस केन्द्र 4. आनंद केन्द्र, 5. विशुद्धि केन्द्र 6. ब्रह्म केन्द्र 7. प्राण केन्द्र 8. चाक्षुष केन्द्र 9. अप्रमाद केन्द्र 10. दर्शन केन्द्र 11. ज्योति केन्द्र 12. शांति केन्द्र और 13. ज्ञान केन्द्र।

ये चैतन्य केन्द्र समस्त अवयवों में सक्रियता उत्पन्न करते हैं तथा इन्द्रियों एवं मन को भी संचालित करते हैं। इन्द्रियों पर नियन्त्रण पाना साधना का मुख्य लक्ष्य होता है। मुद्रा साधना इसमें सहायक बनती है।

1-2. शक्ति केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र

शक्ति केन्द्र मूलाधार के स्थान पर अर्थात् पृष्ठ रज्जु के नीचे स्थित है। यह स्थान हमारी समस्त शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत (Bio-electricity) का संचयगृह है। यहीं से विद्युत का उत्पादन एवं प्रसरण होता है। इस केन्द्र के जागृत होने से अधोगामी विद्युत प्रवाह ऊर्ध्वगामी बनता है। इससे साधक की सभी क्रियाएँ सकारात्मक एवं ऊर्ध्वगामी बनती है। शक्ति केन्द्र कुण्डलिनी का स्थान है अत: इसके जागृत होने से साधना चरम लक्ष्य तक अवश्य पहुँचती है।

पेडु के नीचे जननेन्द्रिय का अधोवर्ती स्थान स्वास्थ्य केन्द्र है। यह काम ग्रन्थियों का प्रभावी क्षेत्र है इसलिए काम-वासना आदि की उत्पत्ति यहीं से होती है और हमारे समग्र स्वास्थ्य का नियंत्रण भी यहीं से होता है। स्वास्थ्य केन्द्र के स्वस्थ, सक्रिय एवं संतुलित रहने पर व्यक्ति स्वस्थ चित्त का अनुभव करता है। मानसिक एवं भावनात्मक स्वस्थता एवं विकार रहितता में भी यह केन्द्र सहायक बनता है। आत्मनियंत्रण की कला भी इसी केन्द्र से विकसित होती है।

शक्ति केन्द्र और स्वास्थ्य केन्द्र की निर्दोषता से सम्पूर्ण विकास सहज एवं सरल हो जाता है। ये दोनों मूल केन्द्र होने से यदि इनमें विकार हो जायें तो समस्त केन्द्र विकार ग्रस्त हो जाते हैं। यह केन्द्र संतुलित रहने से वृत्तियों का उभार ही नहीं होता, कामेच्छा आदि संतुलित रहती हैं तथा आन्तरिक ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण होता है।

3. तैजस केन्द्र

तैजस् केन्द्र नाभि के स्थान पर होता है। इस केन्द्र का सम्बन्ध एड्रीनल-पैन्क्रियाज ग्रंथि एवं मणिपुर चक्र से है। यह केन्द्र ग्रन्थियों एवं चक्रों के कार्य वहन में सहायक बनता है। योगाचार्यों के अनुसार इस केन्द्र के असंतुलन से क्रोध, लोभ, भय आदि वृत्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं। इसके जागरण एवं संतुलन के द्वारा विकृत भावों को रोका जा सकता है। इसके माध्यम से ईर्ष्या, घृणा, भय, संघर्ष, तृष्णा आदि कुवृत्तियों को भी नियंत्रित रखा जा सकता है।

तैजस् केन्द्र अग्नि तत्त्व का स्थान है। इसके अधिक सक्रिय होने पर काम-वासना आदि वृत्तियों में उभार आ जाता है अत: इसको नियन्त्रित रखने से तेजस्विता बढ़ती है, शक्ति का संचय होता है तथा आवेगात्मक वृत्तियाँ शांत रहती हैं।

4. आनंद केन्द्र

आनंद केन्द्र का स्थान फुफ्फुस के नीचे हृदय के निकट में है। थायमस ग्रन्थि को प्रभावित करने हेतु यह एक महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। आनंद केन्द्र के जागृत होने से साधक बाह्य जगत से मुक्त होकर भीतरी जगत में प्रवेश करता है। काम-वासना के परिशोधन में भी यह सहायक बनता है।

जब आनंद केन्द्र संतुलित रहता है तब काम वासना आदि वृत्तियाँ संतुलित रहती हैं, अध्यात्म की ओर रूझान बढ़ता है और हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।

आनंद केन्द्र के विकृत होने पर कामवृत्तियों की उग्रता बढ़ जाती है जिससे आलस, शुष्कता, निष्क्रियता आदि में वृद्धि होती है एवं अन्य कई विकार उत्पन्न होते हैं।

5. विशुद्धि केन्द्र

विशुद्धि केन्द्र का स्थान कंठ है। यह थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि का मुख्य क्षेत्र है। इस केन्द्र के प्रभावित होने से वाणी पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह उच्चतर चेतना एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करता है। इसका मन के साथ गहरा सम्बन्ध है।

इस केन्द्र के जागृत होने पर जीवन की गति नियंत्रित रहती है। इससे जैविक क्षमता में अभिवृद्धि भी होती है तथा यह भावों के उदात्तीकरण एवं निर्मलीकरण में सहायक बनता है। इस केन्द्र की विशुद्धि से चित्त की एकाग्रता, स्थिरता एवं समाधि को प्राप्त किया जा सकता है।

विशुद्धि केन्द्र का असंतुलन जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में अरुचि उत्पन्न करता है। इससे मानसिक एवं आध्यात्मिक चेतना समाप्त हो जाती है। शारीरिक स्तर पर चयापचय, पाचन आदि की क्रिया असंतुलित रहती है।

इस केन्द्र के नियोजन से शारीरिक क्रियाएँ सुचारू रूप से चलती है। आध्यात्मिक एवं मानसिक जगत सुंदर बनता है।

6. ब्रह्म केन्द्र

ब्रह्म केन्द्र का स्थान जिह्वा का अग्रभाग है। इस केन्द्र की जागृति एवं साधना ब्रह्मचर्य को पुष्ट करती है। हमारे ज्ञानेन्द्रियों का कामेन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होता है। जिह्वा का सम्बन्ध जननेन्द्रिय एवं जल तत्त्व से है अत: जब जिह्वा को अधिक रस मिलता है तो कामुकता बढ़ती है।

ब्रह्म केन्द्र के संतुलित अथवा नियंत्रित रहने से संयम एवं ब्रह्मचर्य में वृद्धि होती है। जीभ पर रखा गया संयम काया-वासनाओं को शिथिल करता है। ब्रह्म केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से मनवांछित कार्य की सिद्धि होती है।

इस केन्द्र का असंतुलन काम वासनाओं को उत्तेजित एवं वाणी को अनियंत्रित करता है।

7. प्राण केन्द्र

प्राण केन्द्र का स्थान नासाग्र है। यह अंग प्राण का मुख्य केन्द्र है और इसकी साधना से प्राण का ऊर्ध्वीकरण होता है।

प्राण केन्द्र की साधना से प्रकाश दर्शन, पूर्वाभास, दूराभास आदि हो सकता है। एकाग्रता की सिद्धि में यह केन्द्र अत्यन्त उपयोगी है। इससे संकल्प

शक्ति, मनोबल एवं आत्मविश्वास की वृद्धि होती है।

इस केन्द्र के निष्क्रिय होने पर प्राण बल कमजोर होता है जिससे जीवन का समग्र विकास अवरुद्ध हो जाता है।

8. चाक्षुष केन्द्र

चाक्षुष केन्द्र का स्थान चक्षु है। चित्त की एकाग्रता के लिए यह बहुत प्रभावशाली केन्द्र है। इसके माध्यम से मस्तिष्किय विद्युत् से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। यह जीवनशक्ति का केन्द्र है अत: इसके दीर्घकालीन अभ्यास से दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है।

9. अप्रमाद केन्द्र

अप्रमाद केन्द्र का स्थान कान और उसके आस-पास कनपट्टि का स्थान है। इस केन्द्र की साधना व्यसन मुक्ति में परम उपयोगी है।

रूस के वैज्ञानिकों के अनुसार अप्रमाद केन्द्र पर विद्युत् प्रवाह के प्रयोग से व्यसन मुक्ति में सफलता प्राप्त हो सकती है। इस केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से अनेक बुराईयों का शमन होता है। स्नायुतंत्र चैतन्यशील बनता है तथा स्मृति का विकास होता है। इससे मूर्छा एवं भ्रम की स्थिति दूर होती है।

अप्रमाद केन्द्र की असक्रियता अथवा अतिसक्रियता व्यक्ति को सुस्त, आलसी एवं प्रमादी बनाती है।

10. दर्शन केन्द्र

दर्शन केन्द्र का स्थान हमारी दोनों भृकुटियों के बीच है। यह अति महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। शरीर शास्त्रियों के अनुसार यह वीतराग प्राप्ति का सूचक केन्द्र है। इसे आज्ञा चक्र एवं तृतीय नेत्र भी कहा जाता है।

इस केन्द्र की सक्रियता से चैतन्य जागरण का मार्ग प्रशस्त होता है। चंचल वृत्तियाँ समाप्त होती हैं। मानसिक, वाचिक एवं भावनात्मक स्थिरता और एकाग्रता का विकास होता है। पूर्णाभास, अन्तर्दृष्टि एवं अतिन्द्रिय क्षमताओं का वर्धन होता है। विचार सकारात्मक, उच्च एवं आध्यात्मिक बनते हैं।

दर्शन केन्द्र का असंतुलन व्यक्ति को मानसिक एवं बौद्धिक रूप से विक्षिप्त और असंतुलित कर मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों एवं रोगों को उत्पन्न करता है तथा पीयूष ग्रन्थि के कार्यों को भी प्रभावित करता है।

11. ज्योति केन्द्र

ज्योति केन्द्र ललाट के मध्य भाग में स्थित है। इस केन्द्र का सम्बन्ध पिनीयल ग्रन्थि से है। यह केन्द्र कषाय, नोकषाय, काम वासना, असंयम, आसक्ति आदि संज्ञाओं के उपशमन में विशेष सहायक बनता है।

ज्योति केन्द्र को नियंत्रित करने से क्रोधादि आवेश एवं आवेग शांत हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य की साधना ऊर्ध्वता को प्राप्त करती है। पिच्युटरी एवं पिनीयल ग्रन्थि की सक्रियता बढ़ जाती है। एड्रीनल एवं गोनाड्स ग्रन्थियों पर नियंत्रण प्राप्त होता है। कामवृत्तियाँ अनुशासित होने से आन्तरिक आनंद की अनुभूति होती है।

इस केन्द्र के सुप्त रहने पर अपराधी मनोवृत्तियों को बल मिलता है। इससे काम, क्रोध, भय आदि संज्ञाएँ उत्पन्न होती हैं तथा मानसिक एवं भावनात्मक विकृतियाँ बढ़ती है।

इस केन्द्र की साधना करने वाला शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर कामी से अकामी बन जाता है।

12. शांति केन्द्र

शांति केन्द्र का स्थान मस्तिष्क का अग्रभाग माना गया है। यह चित्त शक्ति का भी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसका सम्बन्ध भावधारा से है। सूक्ष्म शरीर से प्रवाहमान भावधारा मस्तिष्क के इसी भाग में आकर जुड़ती है।

आयुर्वेदाचार्यों ने इसे अधिपति मर्म स्थान कहा है। हठयोग के अनुसार यह ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र का स्थान है। इसके जागृत होने से परमोच्च अवस्था एवं आत्मानंद की प्राप्ति होती है तथा चैतन्य केन्द्रों का जागरण एवं हृदय परिवर्तन होता है।

शांति केन्द्र की असक्रियता अवचेतन मन में एवं अन्त:स्रावी ग्रन्थियों में विकार उत्पन्न करती है। इससे नाड़ी संस्थान के कार्यों में भी बाधा पहुँचती है।

13. ज्ञान केन्द्र

सिर का ऊपरी भाग (चोटी का स्थान) ज्ञान केन्द्र माना गया है। यह मानसिक ज्ञान का चैतन्य केन्द्र है। मन की सारी मनोवृत्तियाँ इसके विभिन्न कोष्ठों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। यही स्थान बुद्धि, स्मृति, चिन्तनशक्ति आदि का मुख्य केन्द्र है।

ज्ञान केन्द्र के जागरण से मस्तिष्क विकसित होता है। चैतन्य शक्ति प्रबल बनती है। दिव्य ज्ञान का जागरण होता है। अतिन्द्रिय क्षमता का विकास होता है। पूर्वजन्म स्मृति, प्राण-अवबोध (Pre-cognition) आदि विशेष शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव

हमारा शरीर मुख्य रूप से पंच महाभूतों का पिण्ड है। ये पाँच तत्त्व मिलकर हमारी समस्त क्रियाओं का संयोजन करते हैं। इनका भिन्न-भिन्न संयोजन शरीर की प्रकृति को निश्चित करता है। जब पाँच तत्त्व उचित मात्रा में बने रहते हैं तो शरीर की चयापचय क्रियाएँ भी सम्यक् प्रकार से होती है तथा शरीर स्वस्थ एवं तंदूरूस्त रहता है।

पारिवारिक संस्कारों, वंशानुगत परम्परा, आहारचर्या, जीवनशैली, वातावरण आदि के कारण तत्त्वों की मूल अवस्था में परिवर्तन होता रहता है। इससे शारीरिक क्रियाओं में विक्षेप एवं विकृति आ जाती है और तत्त्वों की स्वभाव च्युति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गतिविधियों को प्रभावित करती है। इन तत्त्वों के मूलस्थिति में रहने पर शरीर विशिष्ट शक्ति प्राप्त करता है एवं मस्तिष्क व्यवस्थित रूप में कार्य करता है।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा शरीरस्थ पाँचों तत्त्वों का संतुलन किया जा सकता है। शरीरशास्त्रियों एवं आयुर्वेदाचार्यों ने पाँच अंगुलियों में पाँचों तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। जिसके शरीर में जिस तत्त्व की कमी या असंतुलन हो वह उस तत्त्व से सम्बन्धित मुद्रा का प्रयोग करके उस कमी की परिपूर्ति कर सकता है।

पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व हमारे शरीर की विद्युत शक्ति का नियंत्रण करते हैं। पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी इस विद्युत को जीव विद्युत् (Bioelectricity) अथवा जीवन शक्ति (Bioenergy) के रूप में स्वीकृत किया है। यह प्राण शक्ति जीवन बैटरी के रूप में हमारे शरीर में गर्भाधान के समय स्थापित हो जाती है जो चैतन्य रूपी विद्युत् प्रवाह को उत्पन्न करती है। मुद्रा आदि यौगिक साधनाओं के द्वारा यह विद्युत् प्रवाह सक्रिय रहता है।

मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश ये पाँचों तत्त्व निम्न प्रकार से सहायक बनते हैं–

1. पृथ्वी तत्त्व

शरीर का स्थूल ढांचा, अस्थि, मांसपिण्ड आदि पृथ्वी तत्त्व का रूप है। इस तत्त्व की कमी से शरीर के सभी जैविक बल निष्क्रिय हो जाते हैं। उन सभी को सक्रिय रखने के लिए अधिक शक्ति की जरूरत पड़ती है जो कि पृथ्वी तत्त्व से प्राप्त होती है। अधिक वजन वाले, मांसल, चरबीयुक्त व्यक्ति इस तत्त्व के आधिपत्य के उदाहरण हैं। ऐसे लोग निश्चिन्त स्वभाव वाले होते हैं। कुछ हासिल करने की उत्सुकता उनमें नहीं रहती, वे संघर्ष से दूर भागते हैं तथा सुस्त एवं आलसी प्रवृत्ति वाले होते हैं।

इस तत्त्व के त्रुटिपूर्ण रहने से व्यक्ति स्वार्थी बनता है तथा उसके विचारों आदि में शुष्कता एवं आग्रह बढ़ जाता है।

पृथ्वी एक तटस्थ तत्त्व है। इसके संतुलित रहने से व्यक्ति तटस्थ विचारों वाला होता है और उसकी विचलित अवस्था दूर होती है। इस तत्त्व के नियमन से शरीर की स्थूलता, हड्डी, मांस, आदि नियंत्रित रहते हैं।

2. जल तत्त्व

जल जीवन तत्त्व है। हमारे शरीर में 70% से अधिक जल तत्त्व का परिमाण है। यह तत्त्व अपने स्वभाव के अनुसार ही शीतलता प्रदान करता है तथा जीवन प्रवाह को सुरक्षित रखता है। शरीर के तापमान को नियंत्रित एवं रूधिर आदि की कार्य पद्धति को संतुलित रखने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इस तत्त्व के संतुलित रहने से मूत्रपिंड, प्रजनन अंग, लसिका ग्रन्थियों आदि का स्राव संतुलित रहता है। यह प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करता है। यौन ग्रन्थियों, चेताकोषों, रजवीर्य, अस्थिमज्जा आदि को उत्पन्न करता है तथा शरीर को स्वस्थ रखने में मुख्य सहयोगी बनता है। इस तत्त्व के असंतुलन से शरीर में जल तत्त्व की कमी आदि हो जाती है जिससे रक्त वाहिनियों, मूत्राशय आदि में विकार उत्पन्न हो सकते हैं। भावों के प्रवाह में भी यह रूकावट उत्पन्न करता है।

3. अग्नि तत्त्व

यह तत्त्व शरीर में उत्पन्न अग्नि द्वारा आहार का पाचन कर शरीर को शक्ति प्रदान करता है। इसके जठर, तिल्ली, यकृत, स्वादुपिंड, एड्रीनल आदि

मुख्य केन्द्र हैं। अग्नि तत्त्व संतुलित एवं सक्रिय रहने पर शरीर में अग्निरस, पित्तरस, पाचकरस आदि की उत्पत्ति होती है। यह शरीर के तापमान को बनाए रखते हुए सभी अंगों को सक्रिय रखता है। इससे रूधिर, मांस, चर्बी, अस्थि आदि के निर्माण में सहायता प्राप्त होती है। यह स्नायुतंत्र को स्वस्थ एवं चेहरे को सुंदरता प्रदान करता हुआ रोग प्रतिरोधक तत्त्वों को उत्पन्न करने में भी सहायता प्रदान करता है।

इस तत्त्व का असंतुलन पाचन सम्बन्धी विकारों का मूलभूत कारण है। इससे एनीमिया, पीलिया, बेहोशी, मस्तिष्क सम्बन्धी अव्यवस्था, दृष्टि विकार, मोतिया बिंद, एसिडिटी आदि शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न होती है और आन्तरिक बल घटता है।

यह तत्त्व विचार शक्ति में सहायक एवं मस्तिष्क शक्ति को विकसित करता है। इससे शारीरिक तेज एवं कांति में वृद्धि होती है तथा यह ऊर्जा के जागरण एवं ऊर्ध्वीकरण में सहायक बनता है।

4. वायु तत्त्व

वायु तत्त्व को जीवन कहा गया है। यह एक ऐसी शक्ति है जो शरीर के प्रत्येक भाग का संचालन करती है। इसके छाती, फेफड़े, हृदय, थायमस ग्रन्थि आदि मुख्य केन्द्र हैं।

वायु तत्त्व शरीर के प्रमुख सहकारी एवं संरक्षक बल को उत्पन्न करने में सहयोगी बनता है। यह हृदय एवं रूधिर अभिसरण की क्रिया को नियंत्रित और शरीर को संतुलित बनाए रखता है। इससे श्वसन एवं मलमूत्र की गति में भी मदद मिलती है।

इस तत्त्व के समस्थिति में रहने पर वचन शक्ति, मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। इससे स्व नियंत्रण में भी विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

इसके असंतुलन से हृदय रोग, वायु विकार, फेफड़ें आदि के विकार उत्पन्न होते हैं तथा विचारों में संकीर्णता एवं असहकारिता आदि भावों का जन्म होता है।

5. आकाश तत्त्व

यह तत्त्व सम्पूर्ण शरीर में हवा, रक्त, जल आदि तत्त्वों के वहन या

संचरण में सहयोग करता है। इस तत्त्व के संतुलित रहने से शरीरस्थ विष द्रव्यों का निष्कासन सहजतया हो जाता है जिससे शरीर स्वस्थ एवं तंदुरुस्त रहने के साथ-साथ थाइरॉईड, पेराथाइरॉईड, टान्सिल, लार रस आदि पर नियंत्रण रहता है। इससे मस्तिष्क सम्बन्धी विकार भी दूर होते हैं।

इस तत्त्व के असंतुलन से हार्टअटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती है। पीयूष ग्रन्थि एवं पीनियल ग्रन्थि के विकारों का मुख्य कारण इसी तत्त्व का असंतुलन है। यह तत्त्व सम्यक् दिशा में गतिशील हो तो मानसिक शक्तियों का पोषण होता है तथा अध्यात्म मार्ग की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह सुस्पष्ट है कि प्रत्येक मुद्रा शरीर के किसी न किसी शक्तिमान चक्रों एवं केन्द्रों आदि को निश्चित रूप से प्रभावित कर उन्हें संतुलित करती है। इससे तद्स्थानीय रोगों का शमन एवं तज्जनित गुणों का प्रगटन होता है।

मुद्रा प्रयोग के नियम-उपनियम

यहाँ मुद्रा का तात्पर्य हाथ की विभिन्न आकृतियों से है क्योंकि प्राय: मुद्राएँ हाथों द्वारा ही की जाती है। कहा जाता है जैसे ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों से निर्मित है वैसे ही प्राणवान शरीर भी पाँच तत्त्वों से बना हुआ है। इन पाँच महाभूत तत्त्वों में अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल की गणना होती है। यौगिक पुरुषों के अनुसार हमारी पाँचों अंगुलियाँ इन तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

स्पष्ट है कि हाथ की अंगुलियों से की जाने वाली मुद्राओं के माध्यम से शरीर के आवश्यक तत्त्वों का प्रभाव घटा-बढ़ा सकते हैं। जिससे शरीर में इन तत्त्वों का संतुलन बना रहता है तथा शरीर के साथ-साथ बुद्धि, मन एवं चेतना के दोषों का परिहार और गुणों का उत्सर्जन होता है।

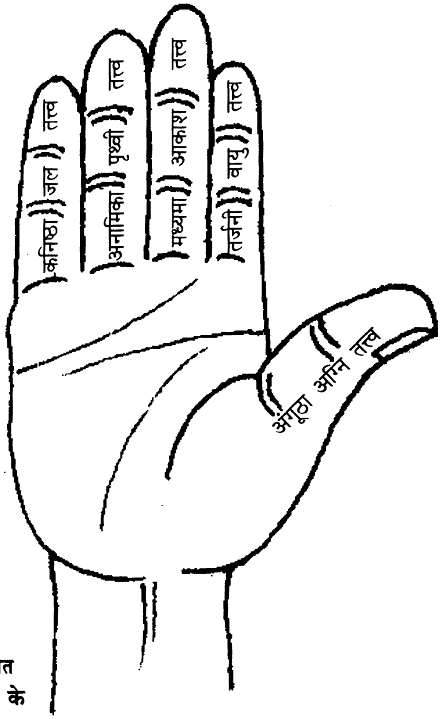

प्रचलित मान्यता के अनुसार

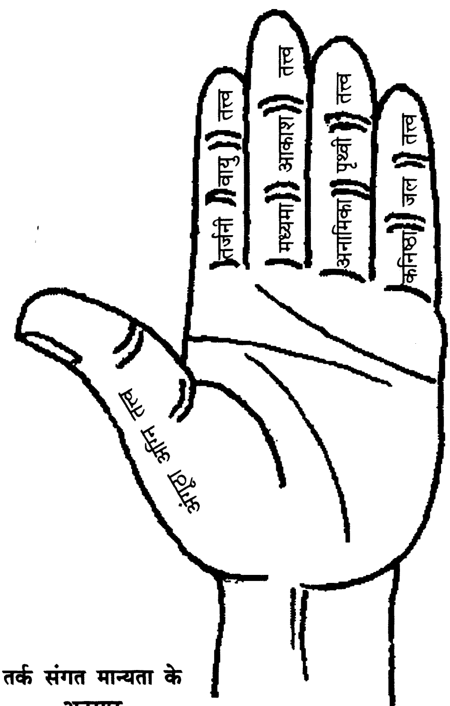

तर्क संगत मान्यता के अनुसार

अंगुलियों के नाम	तत्त्वों के नाम
अंगूठा (Thumb)	अग्नि तत्त्व (Fire-sun)
तर्जनी (Index)	वायु तत्त्व (Air-wind)
मध्यमा (Middle)	आकाश तत्त्व (Ether-space)
अनामिका (Ring)	पृथ्वी तत्त्व (Earth)
कनिष्ठिका (Little)	जल तत्त्व (Water)

मुद्रा की आवश्यक जानकारी

1. सामान्यतया मनुष्य पाँच तत्त्वों के संतुलन से स्वस्थ रह सकता है। ऋषि-महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट एवं अनुभवियों द्वारा उपदर्शित मुद्राएँ बौद्धिक, मानसिक एवं दैहिक संतुलन की अपेक्षा से है अतः इन मुद्राओं का प्रयोग करने से पूर्व उसके प्रति दृढ़ विश्वास एवं अटूट श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए।
2. शारीरिक संरचना के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग पर दूसरी अंगुली के अग्रभाग को दबाने से, उस अंगुली का जो तत्त्व है वह बढ़ जाता है तथा अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल पर लगाने/दबाने से उस अंगुली का जो तत्त्व है उसमें कमी आ जाती है।
3. मुद्रा करते समय अंगुली और अंगूठे का स्पर्श सहज होना चाहिए। अंगूठे से अंगुली को सहज दबाव देना चाहिए और शेष अंगुलियाँ अमुक-अमुक मुद्रा के नियमानुसार सीधी या एक-दूसरे से सटी रहनी चाहिए। हथेली का भाग मुद्रा नियम के अनुरूप रहना चाहिए। यदि अंगुलियाँ पहली बार में सही रूप से सीधी-टेढ़ी या सटी हुई न रह पायें तो आरामपूर्वक जितना बन सके, मुद्रा को यथारूप बनाने की कोशिश करें। तदनन्तर अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे सही मुद्रा भी बन जाती है।
4. मुद्रा प्रयोग दोनों हाथों से करें, क्योंकि दायें हाथ की मुद्रा करने से शरीर के बाएँ भाग पर असर होता है और बाएँ हाथ की मुद्रा करने से शरीर के दायें भाग पर असर होता है। इस तरह शरीर और मन हर तरह से संतुलित रहता है।
5. हर कोई स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, रोगी-निरोगी मुद्राओं का प्रयोग कर सकता है।

6. प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं के लिए जो भी मुद्रा उपयोगी हो, उस मुद्रा का प्रयोग नियमत: 48 मिनट तक करना चाहिए। अभ्यास के द्वारा समय मर्यादा बढ़ाई जा सकती है। यदि कोई मुद्रा लंबे समय तक एक साथ न हो सके तो सुबह-शाम 15-15 मिनट करके 30 मिनट तक तो अवश्य करनी चाहिए।
7. भोजन के तुरन्त बाद 30 मिनट तक किसी भी मुद्रा को नहीं करें। केवल गैस या अफरा दूर करने के लिए वायु मुद्रा की जा सकती है।
8. प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा और ज्ञान मुद्रा को साधक इच्छानुसार दीर्घ समय तक कर सकते हैं, किन्तु वायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, लिंग मुद्रा वगैरह अन्य मुद्राएँ व्याधि दूर न हों तब तक ही करनी चाहिए।
9. कोई अन्य चिकित्सा या औषधि का सेवन कर रहे हों, तो उस समय भी मुद्रा चिकित्सा का प्रयोग कर सकते हैं।
10. मुद्राओं में अपानवायु रोग मुक्ति के लिए श्रेष्ठकारी है। इस मुद्रा को हृदय पर स्पर्शित करते ही किसी भी रोग में तत्काल फायदा होता है इसलिए डाक्टरों/वैद्यों के पास जाने से पूर्व रोगी को यह मुद्रा अवश्य कर लेनी चाहिए। उसे तात्कालिक राहत का अहसास होता है।
11. शरीर, मन और चेतना को स्वस्थ रखने के लिए प्राणवायु एवं अपानवायु को संतुलित रखना अत्यन्त जरूरी है। यह संतुलन प्राण मुद्रा एवं अपानमुद्रा के प्रयोग से ही संभव है। इन मुद्राओं के प्रयोग से नाड़ी शुद्धि और शरीर रोग रहित बनता है इसलिए ये मुद्राएँ निश्चित करनी चाहिए।
12. अनेकों मुद्राएँ चैतसिक, मानसिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक विकास के उद्देश्य से की जाती हैं। इन मुद्राओं को निर्धारित दिशा, आसन, मंत्र एवं समयानुसार करने पर अधिक लाभदायी होती हैं।
13. मुद्रा प्रयोग से पंच तत्त्वों में परिवर्तन, विघटन, प्रत्यावर्तन, अभिवर्धन होता रहता है परिणामत: तत्त्वों में सामंजस्य बना रहता है।
14. कुछ मुद्राएँ निश्चित यौगिक आसन में बैठकर की जाती हैं। इनमें हठयोग सम्बन्धी मुद्राएँ एवं पूजोपासना सम्बन्धी मुद्राएँ मुख्य हैं।

    रोग शमन में उपयोगी योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की बहुत सी मुद्राएँ चलते-फिरते, सोते-जागते किसी भी स्थिति में की जा सकती हैं।

अधिकांश मुद्राओं का प्रयोग आवश्यक होने पर 45 से 48 मिनट करना चाहिए। यदि किसी मुद्रा को एक साथ न कर पायें तो 15-15 मिनट या 16-16 मिनट में विभाजित कर तीन बार में पूर्ण कर सकते हैं।

15. मुद्राएँ भिन्न-भिन्न हेतुओं से विभिन्न आसनों में की जाती है। हठयोग की मुद्राएँ बैठकर की जाती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में लेटना भी पड़ता है। हठयोग की मुद्राओं को नियमित रूप में कम से कम एक मिनिट से तीस मिनिट तक कर सकते हैं।

नाट्य परम्परा की मुद्राएँ अधिकांशतः भाव प्रदर्शन के उद्देश्य से प्रयुक्त होती हैं अत: विधि नियम के अनुसार बैठकर या खड़े होकर की जाती है। इनमें समय की कोई निश्चित अवधि नहीं है।

योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की मुद्राएँ अनन्त हैं। इस श्रेणि की मुद्राएँ प्राय: हाथ की पाँच अंगुलियों से ही बनती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में दोनों हाथों के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे ज्ञान मुद्रा, वैराग्य मुद्रा, अभय मुद्रा, ध्यान मुद्रा आदि में समग्र शरीर का उपयोग होता है। साधारण ज्ञान मुद्रा चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा विभिन्न कार्य करते हुए एक हाथ से या दोनों हाथों से भी की जा सकती है किन्तु मुख्य ज्ञान मुद्रा किसी आसन में बैठकर ही की जाती है।

रोग निवारक मुद्राएँ एक साथ दो, तीन, चार भी लगातर की जा सकती है। चाहें तो हर सैकेण्ड के बाद मुद्रा परिवर्तित कर सकते हैं। आवश्यकता होने पर बार-बार बदलते हुए कुछ अधिक समय भी मुद्राएँ कर सकते हैं।

रोग दूर करने वाली साधारण मुद्राओं में किसी मुद्रा को पहले तथा बाद में करने का कोई नियम नहीं है। जिस मुद्रा की आवश्यकता पहले समझें उसे इच्छानुसार कर सकते हैं।

हिन्दु उपासना में गायत्री मुद्राओं का प्रमुख स्थान माना गया है। इन मुद्राओं को त्रिकाल सन्ध्या में करने का प्रावधान है। इन्हें धीरे-धीरे भी कर सकते हैं और शीघ्रता के साथ भी इनका प्रयोग किया जा सकता है।

मुद्रा अभ्यासी साधकों के लिए आवश्यक है कि वे साधना काल के दौरान आत्मा, मन और शरीर से पूरी तरह शान्त और पवित्र हों। ऐसी स्थिति में मुद्राओं का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

मुद्राएँ करते समय अतिरिक्त अन्य अंगुलियों को सीधा रखना चाहिए। मुद्राएँ उचित प्रकार से करने पर ही अपना प्रभाव दिखाती हैं।

मुद्रा चिकित्सा को अन्य चिकित्सा प्रणालियों जैसे ऐलोपैथी या होम्योपैथी के साथ भी किया जा सकता है। इससे अन्य चिकित्सा प्रणालियों में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं पहुँचती वरन् लाभ ही होता है।

प्राय: मुद्राओं का प्रभाव अतिशीघ्र होता है परन्तु पुराने रोगों के निवारण हेतु मुद्राएँ लम्बे समय तक करनी चाहिए।

किसी भी क्रिया को करने से पूर्व उसके लाभ-हानि, विधि-अविधि के विषय में सम्यक जानकारी हो तो उसका प्रयोग शीघ्र परिणामी होता है। मुद्रा साधना यद्यपि एक शारीरिक क्रिया है परन्तु इसका प्रभाव साधक मनुष्य की सूक्ष्म तन्त्र प्रणालियों पर भी देखा जाता है। यही तन्त्र मनुष्य के स्वभाव, आचरण एवं भावजगत को संतुलित रखते हैं। इस अध्याय के माध्यम से साधक को मुद्रा साधना के उन्हीं पक्षों से परिचित करवाते हुए मुद्रा प्रयोग में अधिक जागरूक एवं सक्रिय बनाने का प्रयास किया है। इससे साधक स्वयं अपने रोगों के लक्षण जानकर किस चक्र या ग्रन्थि को नियंत्रित करना है यह जान सकेगा एवं तत्सम्बन्धी मुद्राओं सम्यक विधिपूर्वक उपयोग करके उनके सुपरिणाम प्राप्त कर सकेगा।

●

अध्याय-2

हिन्दू परम्परा सम्बन्धी विविध कार्यों में प्रयुक्त मुद्राओं का प्रासंगिक स्वरूप

प्रत्येक धर्म संप्रदाय का प्राण तत्त्व है उसकी पूजा-उपासना। विविध स्थानों एवं हजारों लोगों द्वारा आचरण में एकरूपता रखने हेतु उसकी एक विशिष्ट प्रक्रिया निर्दिष्ट की है। इस प्रक्रिया में मुद्रा प्रयोग का स्वतंत्र स्थान है। हिन्दू परम्परा के विविध धार्मिक कार्य जैसे सूर्य नमस्कार, मंत्र स्नान पूजा आदि में अनेकश: मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। परंतु अधिकांश आर्य वर्ग इससे अनभिज्ञ हैं। मात्र पूर्व परम्परा अनुकरण के रूप में यह विधान सम्पन्न किए जाते हैं। ऋषि मुनियों द्वारा प्ररूपित इन विधानों में अनेक वैज्ञानिक एवं प्राकृतिक रहस्य समाए हुए हैं जो हमारे मन, मस्तिष्क एवं शरीर को विशेष प्रभावित करते हैं। हिन्दू परम्परा आर्य संस्कृति का मूल आधार है। संपूर्ण विश्व में इसकी एक विशिष्ट पहचान है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हिन्दू मुद्राओं का उल्लेख इस अध्याय में कर रहे हैं।

1. अंचित मुद्रा

यह धार्मिक मुद्रा हिन्दू परम्परा में अधिक प्रचलित है। यह भगवान शिव की चतुरम नृत्य की मुद्राओं में से एक है। इसे एक हाथ से धारण करते हैं।

इस मुद्रा के द्वारा मुख में उभरे भावों को व्यक्त किया जाता है।

विधि

दायें हाथ को कप की भाँति इस तरह बनायें जैसे हाथ में कोई वस्तु पकड़ी हुई हों। अंगुलियाँ बाहर की ओर जाती हुई एवं हथेली की ओर झुकी हुई एक-दूसरे से दूर रहें। इस तरह अंचित मुद्रा बनती है।[1]

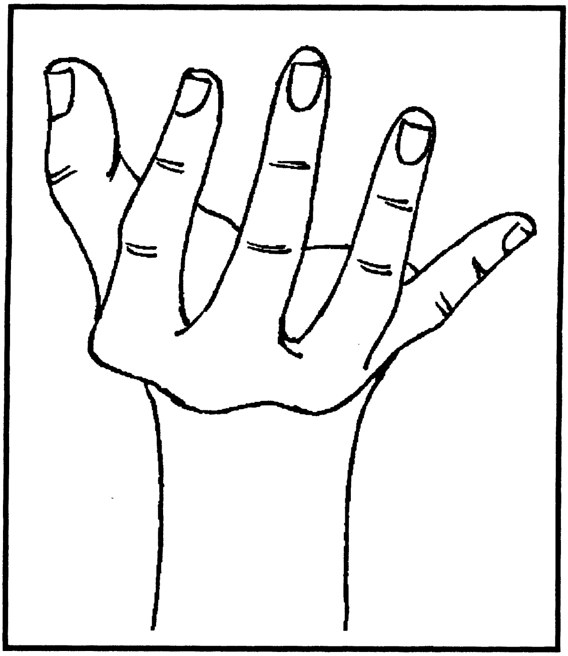

अंचित मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र।

2. अराल मुद्रा

अराल शब्द का एक अर्थ है टेढ़ा या मुड़ा हुआ।[2] इस मुद्रा में तर्जनी अंगुली किंचित मुड़ी होने के कारण इसे अराल मुद्रा कहा गया है।

यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में देवताओं आदि के द्वारा धारण की जाती है। यह किसी पक्षी, सदोषता या विषपान करने की सूचक है। इस मुद्रा के कई रूप हैं उनमें यह हिन्दू परम्परा से सम्बन्धित है।

विधि

दायें हाथ को कंधे की सीध में लाकर हथेली को बाहर की ओर करें, अंगुलियों को ऊपर दिशा में फैलायें और तर्जनी को किंचित झुकाने पर अराल मुद्रा बनती है।[3] यह मुद्रा पताका मुद्रा के समान है।

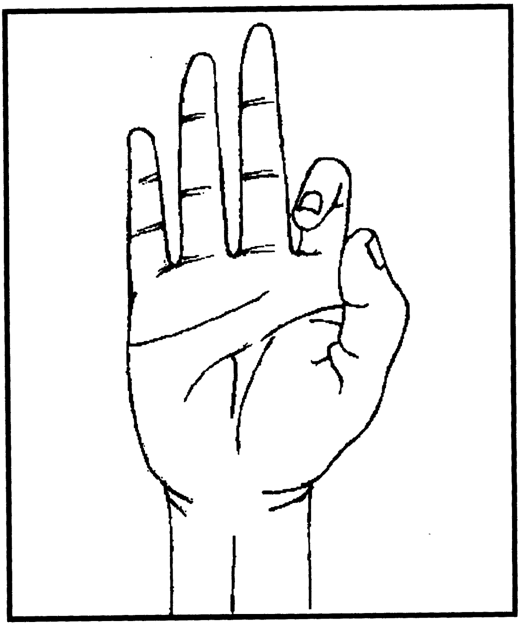

अराल मुद्रा

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आँख।

3. अर्चित मुद्रा

अर्चित का शाब्दिक अर्थ होता है पूजित, सम्मानित। यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में भगवान शिव के नटराज चतुरम नृत्य से सम्बन्धित है। इससे अभिवादन या वंदन का भाव दर्शाया जाता है। किसी का अभिवादन अथवा वंदन करने पर ही वह पूजित और सम्मानित कहलाता है अतः यह मुद्रा अपने नाम के अनुरूप है।

विधि

दायें हाथ को छाती या कंधे के स्तर पर धारण करते हुए हथेली को सामने की ओर अभिमुख करें तथा अंगुलियों को एकदम आराम से ऊपर की ओर फैलाने पर अर्चित मुद्रा बनती है।[4]

यह अहायवरद मुद्रा या अभय मुद्रा के समान है।

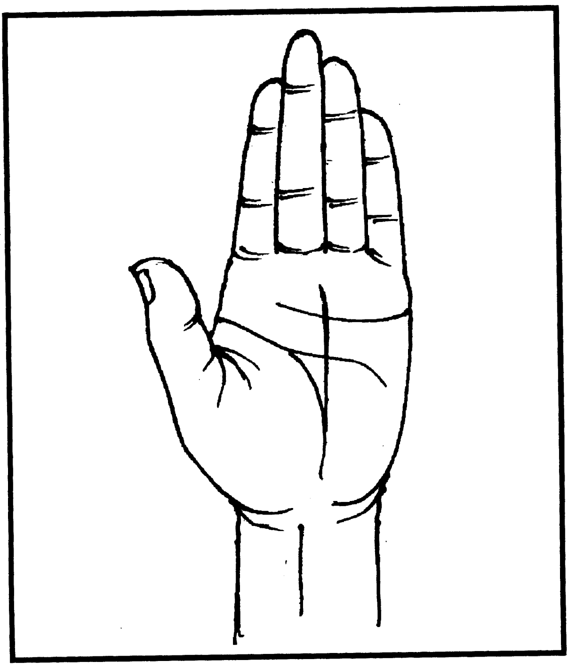

अर्चित मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र।

4. आवाहन मुद्रा

यज्ञादि अनुष्ठान में देवी-देवताओं को मंत्र द्वारा आदर पूर्वक आमन्त्रित करना आवाहन कहलाता है। आवाहन का शाब्दिक अर्थ है बुलाना, निमन्त्रण देना। यह मुद्रा याचना, विनती, प्रार्थना की सूचक है।

इस अंजलि मुद्रा के प्रकारान्तर दोनों में हाथों की मुद्रा समान होती है।

विधि

दोनों हथेलियों के बीच में अंतर रखते हुए अंगुलियों को आगे की ओर फैलायें, अंगूठों के अग्रभाग को अनामिका के अंतिम पोर से स्पर्शित करवायें तथा कनिष्ठिका की ऊपरी बाह्य किनारी और हथेलियों की बाह्य किनारियों को जोड़ने पर आवाहन मुद्रा बनती है।[5]

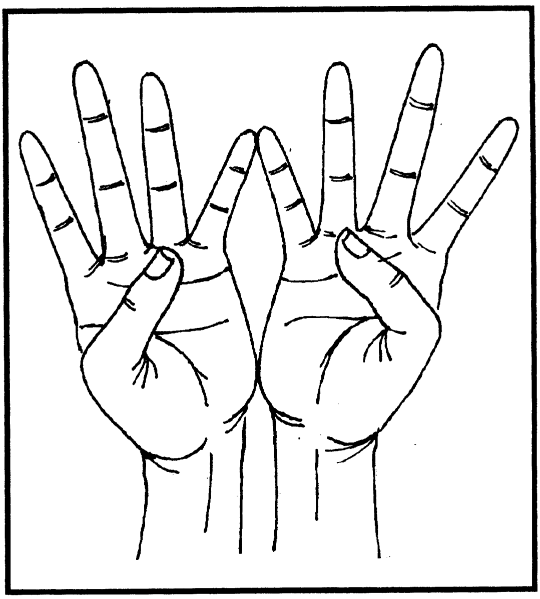

आवाहन मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, स्नायु तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, निचला मस्तिष्क।

5. चन्द्रकला मुद्रा

यह मुद्रा मुख्यतया हिन्दू परंपरा में अधिक प्रचलित है और यह देवताओं आदि के द्वारा या उनके लिए धारण की जाती है।

दर्शाये चित्र के अनुसार यह मुद्रा चन्द्र की कलाओं, हाथी दाँत अथवा भगवान शिव की सूचक है। इसका एक प्रकार नाट्य मुद्रा सम्बन्धी भी है।

विधि

दायीं हथेली को सामने की ओर करते हुए अंगूठा और कनिष्ठिका को बाहर की तरफ फैलायें तथा शेष अंगुलियों को हथेली के भीतर मोड़ने पर चन्द्रकला मुद्रा बनती है।[6]

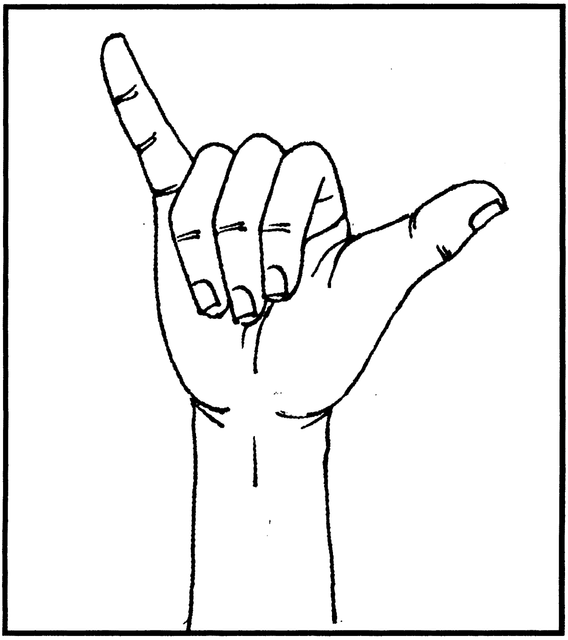

चन्द्रकला मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

6. चतुरहस्त मुद्रा

इस मुद्रा के द्वारा चातुर्य गुण को प्रदर्शित किया जाता है अतः इसका नाम चतुरहस्त मुद्रा है। हिन्दू परम्परा में अधिक प्रचलित यह मुद्रा एक हाथ से की

जाती है तथा यह धृतशत्रु, दलाल अथवा सियार की सूचक है।

इसे भगवान शिव ने कंधे के स्तर पर धारण की थी।

विधि

दायीं हथेली को नीचे की ओर अभिमुख कर कनिष्ठिका को ऊपर उठायें, शेष अंगुलियों को कनिष्ठिका से 90^0 कोण पर रखें तथा अंगूठा मध्यमा का स्पर्श किया हुआ रहने पर चतुरहस्त मुद्रा बनती है।[7]

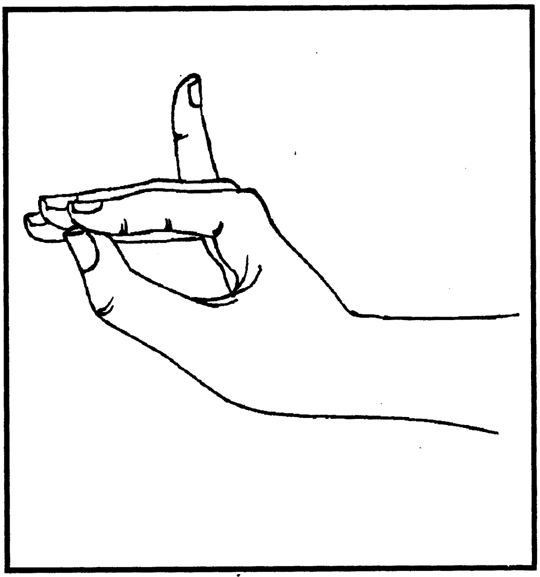

चतुरहस्त मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर, सहस्रार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि, आकाश एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, पिनियल एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, ज्योति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँख, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

चतुर मुद्रा

सर्पफण की भाँति अंगुलियों को किंचित झुकाकर बनायी गई मुद्रा चतुर मुद्रा कही जाती है। यहाँ चतुर से तात्पर्य चातुर्यता है।

इस मुद्रा में छुपा रहस्य यह है कि बगुला, सारस आदि पक्षी तालाब के किनारे खड़े होकर अपनी चतुरता से कई मछली आदि कई जीवों का भक्षण कर लेते हैं दर्शाया मुद्रा चित्र भी तालाब के किनारे खड़े बगुला आदि पक्षी के समान ही प्रतिभासित होता है। इस प्रकार इस मुद्रा की तुलना बगुला पक्षी से की गई है।

प्रस्तुत मुद्रा के तीन प्रकारान्तर हैं, जिनमें दो प्रकार हिन्दू परम्परा में देवी-देवताओं के द्वारा धारण किये जाते हैं।

प्रथम

दायें हाथ को कमर और कंधे के बीच धारण करते हुए हथेली को सामने की तरफ अभिमुख करें तथा अंगुलियों एवं अंगूठे को सर्पफण की तरह किंचित झुकाने पर प्रथम प्रकार की चतुर मुद्रा बनती है।[8]

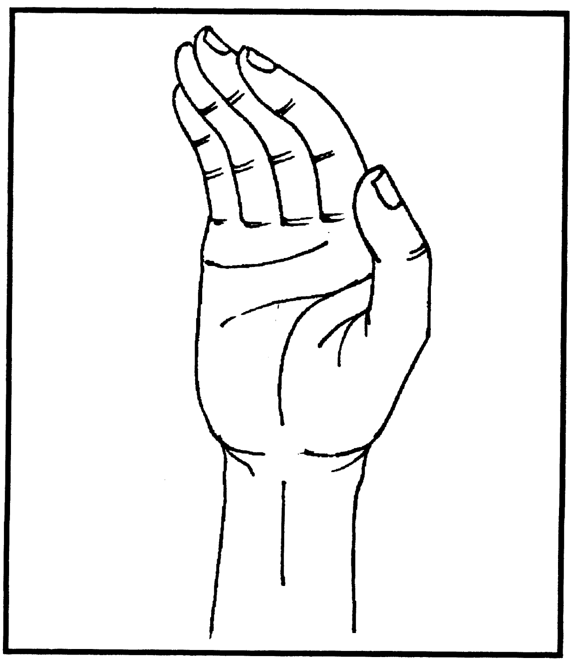

चतुर मुद्रा-1

लाभ

चक्र— मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व—** अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि—** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र—** तैजस एवं शक्ति केन्द्र **विशेष**

प्रभावित अंग– पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली आँतें, नाड़ी तंत्र, मेरूदण्ड, गुर्दे, पांव।

द्वितीय

इस मुद्रा में दायीं हथेली को सामने की ओर अभिमुख कर कनिष्ठिका अंगुली को ऊपर उठायें, शेष अंगुलियों को कनिष्ठिका से 90^0 कोण पर रखें तथा अंगूठे को तीनो अंगुलियों के मध्य में स्पर्श करता हुआ रखने पर चतुर मुद्रा का दूसरा रूप बनता है।[9]

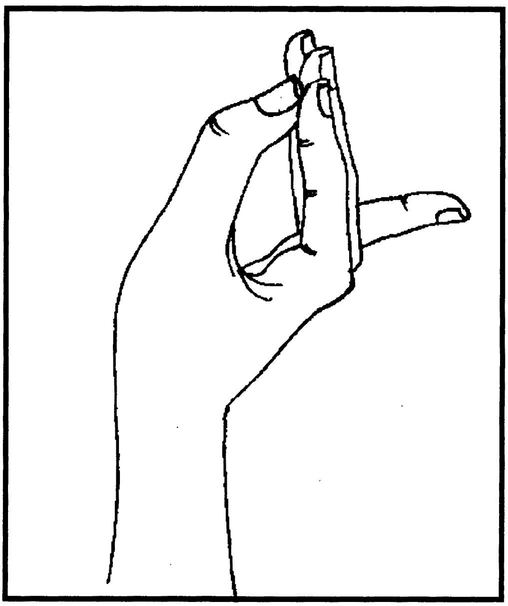

चतुर मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

8. चिन् मुद्रा

हिन्दू परम्परा में प्रचलित यह मुद्रा चिन वृक्ष से सम्बन्धित हो सकती है जो सदाबहार एवं हिमालय पर बहुलता में पाये जाते हैं

एम.जे.एस. के अनुसार यह परम तत्त्व या महासत्त्व के रहस्योद्घाटन की मुद्रा है। इस मुद्रा के दो प्रकार निम्नोक्त हैं-

प्रथम प्रकार

चिन् मुद्रा का प्रथम प्रकार बनाने के लिए दायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख कर अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को परस्पर में मिलायें तथा शेष अंगुलियों को भूमि से समानान्तर बाहर की ओर फैलायें, इस तरह प्रथम प्रकार की चिन् मुद्रा बनती है।[10]

इसमें प्रसरित अंगुलियाँ शिथिल रहती है।

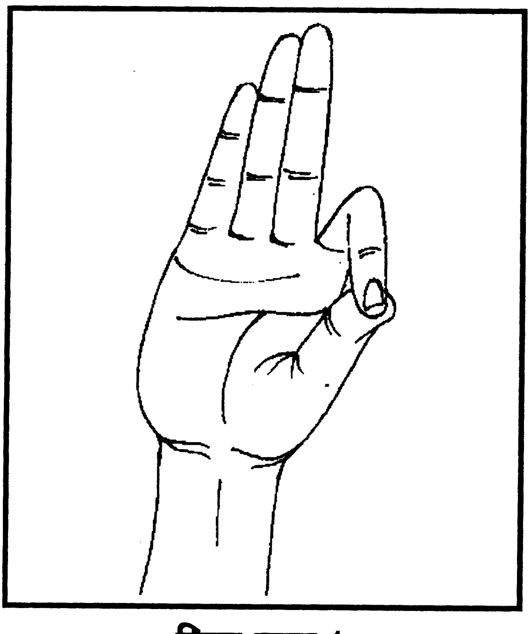

चिन् मुद्रा-1

लाभ

चक्र– अनाहत एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली, मस्तिष्क, आँख।

द्वितीय प्रकार

दायीं हथेली को सामने की तरफ अभिमुख कर अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को संयुक्त करें तथा शेष तीन अंगुलियों को नीचे की तरफ फैलाने पर चिन् मुद्रा का दूसरा प्रकार बनता है।[11]

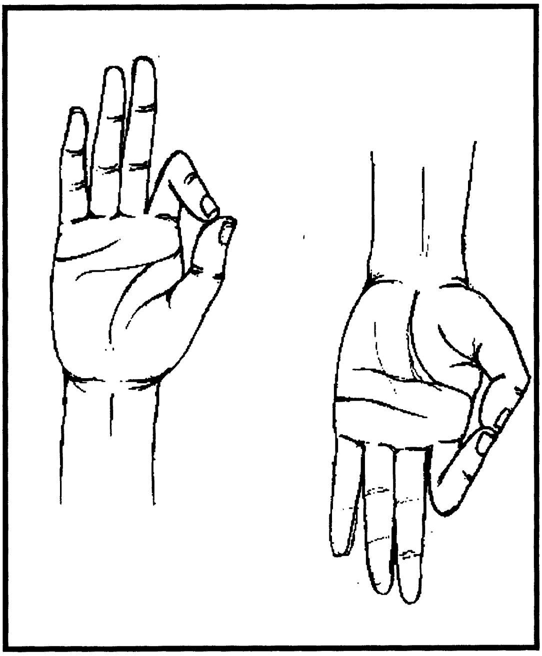

चिन् मुद्रा-2

9. दंड मुद्रा

हिन्दू परम्परा में स्वीकृत यह मुद्रा अनुशासन करने एवं दंड देने के सामर्थ्य और क्षमता की सूचक है। यह मुद्रा गजहस्त मुद्रा के समान तथा चपेटदान मुद्रा से मिलती जुलती है।

इसमें पूर्ण हाथ का उपयोग होता है।

विधि

बायां कंधा और बायें हाथ को बिल्कुल सीधा रखे, दायें हाथ को शरीर के आगे सीधा रखते हुए हथेली को अधोमुख रखने पर दंड मुद्रा बनती है।

इसमें दाहिना हाथ कंधा या कमर से समानान्तर होगा।[12]

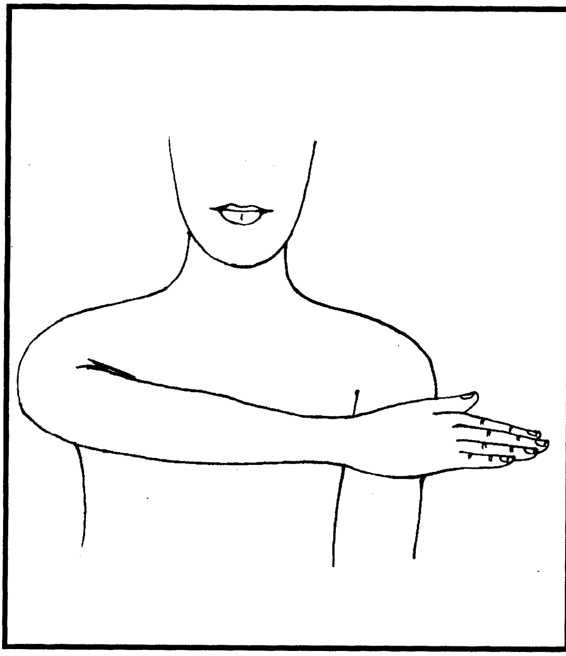

दंड मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मेरूदण्ड, पाँव।

10 धेनु मुद्रा

मुद्रा शास्त्र में धेनु (सुरभि) मुद्रा के कई प्रकारान्तर हैं उनमें निम्न मुद्राएँ हिन्दू परम्परा से सम्बन्धित है। यह मुद्रा गाय के थन, चार प्रमुख पवित्र नदियाँ एवं पवित्रीकरण के सूचनार्थ की जाती है।

प्रथम प्रकार

दायीं हथेली को कमर के स्तर पर धारण करते हुए सामने की तरफ करें, अंगुलियों को अलग-अलग फैलाकर नीचे की तरफ करें तथा अंगूठे को हथेली की ओर मोड़ने पर प्रथम प्रकार की धेनु मुद्रा बनती है।[13]

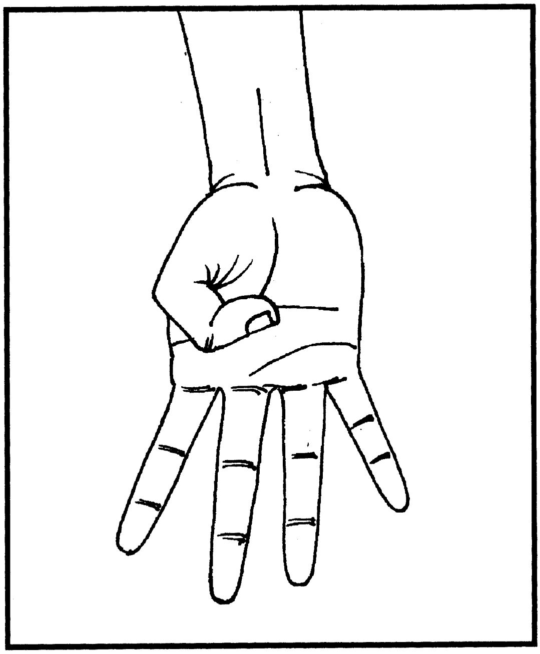

धेनु मुद्रा-1

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

द्वितीय प्रकार

दोनों हथेलियों को एक साथ मिलाएं, फिर अंगुलियों को पृथक्-पृथक् कर नीचे की ओर फैलायें तथा अंगूठों को हथेली के भीतर मोड़ने पर द्वितीय धेनु मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कमर के स्तर पर धारण की जाती है।[14]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**–

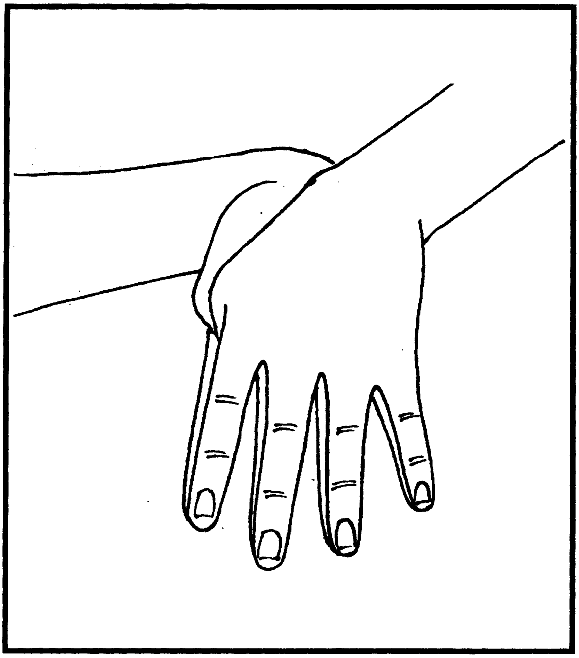

धेनु मुद्रा-2

एड्रीनल, पैनिक्रयाज, थायरॉइड एवं पैराथायरॉइड, ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, गला, नाक, कान, मुँह, स्वर यंत्र।

11. गदा मुद्रा

मुद्रा योग में गदा मुद्रा के अनेक प्रकार हैं, उनमें से अधोलिखित मुद्रा हिन्दू परंपरा में प्रचलित है। यह संयुक्त मुद्रा गदा और शक्ति की सूचक है।

विधि

दोनों हथेलियों को युगपद् कर मध्यमा अंगुलियों को ऊपर उठायें और उनके अग्रभागों को आपस में जोड़ें। फिर शेष अंगुलियों एवं अंगूठों को भीतर की तरफ अन्तर्ग्रथित करने पर गदा मुद्रा बनती है।[15]

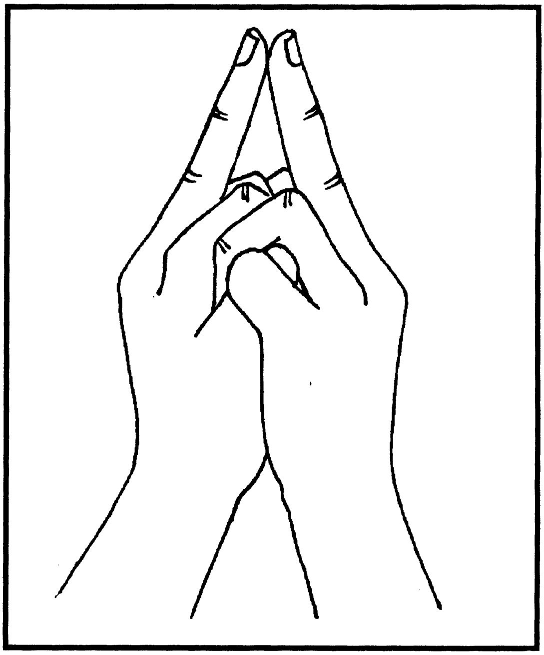

गदा मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

12. गजहस्त मुद्रा

हिन्दू परम्परा में प्रचलित यह मुद्रा नाट्य मुद्राओं में भी पायी जाती है। यह हाथी के सूंड और उसके शक्ति की सूचक है। इसका वर्णन नाट्य मुद्राओं के अन्तर्गत किया गया है।[16]

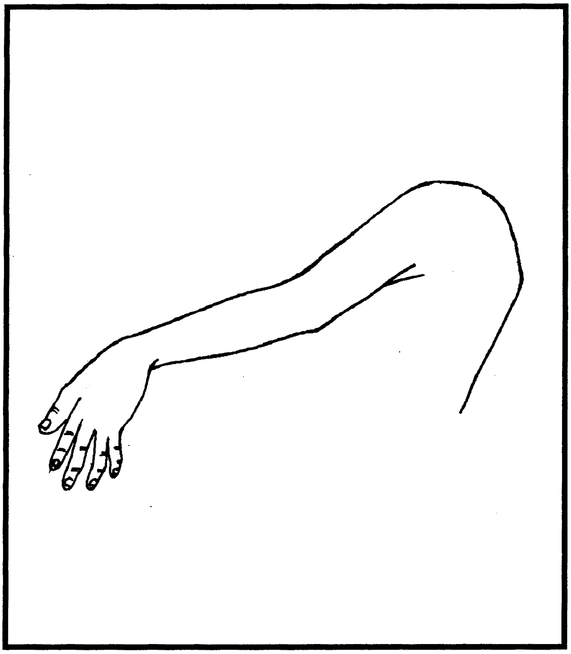

गजहस्त मुद्रा

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र एवं आँख।

13. हंस मुद्रा

यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में देवताओं के द्वारा या उनके लिए धारण की जाती है। विद्वज्ञों के अनुसार यह विवाह के पवित्र धागे, प्रवर्त्तन, दीक्षा और पानी के बूंद की सूचक है।

इस मुद्रा में हंस के सिर की आकृति प्रतीत होती है अत: इसका नाम हंस मुद्रा है। यह माला पकड़ने की मुद्रा भी हो सकती है।

विधि

दायीं हथेली को स्वयं की तरफ करते हुए अंगूठा, तर्जनी और मध्यमा को

मिलायें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को ऊपर की तरफ उठाने पर हंस मुद्रा बनती है।[17]

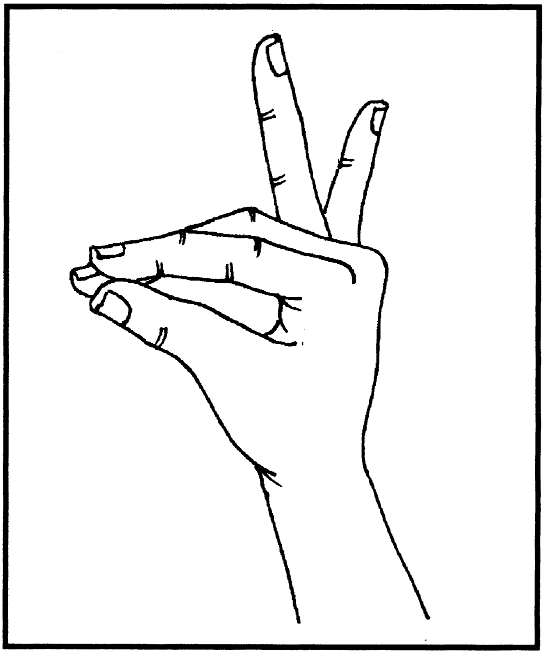

हंस मुद्रा

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र,मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

14. हरिण मुद्रा

हिन्दू परम्परा में प्रचलित यह मुद्रा हिरण के स्वरूप को दर्शाती है। इसे एक हाथ से धारण करते हैं तथा इसमें हिरण के मुख जैसा आकार दिखता है।

विधि

दायें हाथ को सीधा रखते हुए अंगूठे के अग्रभाग को मध्यमा और अनामिका से स्पर्श करवायें तथा तर्जनी और कनिष्ठिका को एकदम सीधा रखने पर हिरण मुद्रा बनती है।[18]

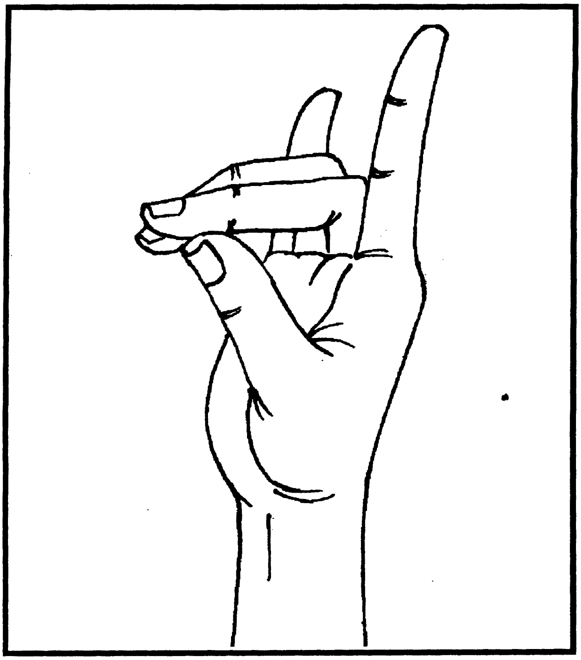

हरिण मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस, पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, स्नायु तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, निचला मस्तिष्क।

15 हस्त स्वस्तिक मुद्रा

यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में उच्च देवी-देवताओं को वश में करने, आत्म समर्पण करने एवं अपरिहार्य को स्वीकार करने की सूचक है। इसे दोनों हाथों से धारण करते हैं।

यह मुद्रा स्वस्तिक के जैसी भासित होती है अत: इसका नाम हस्त स्वस्तिक मुद्रा है।

विधि

दोनों हथेलियों को फैलाकर उन्हें भुजाओं के ऊपर ले जायें तथा दायां हाथ बायें हाथ को Cross करता हुआ रहने पर हस्त स्वस्तिक मुद्रा बनती है।[19]

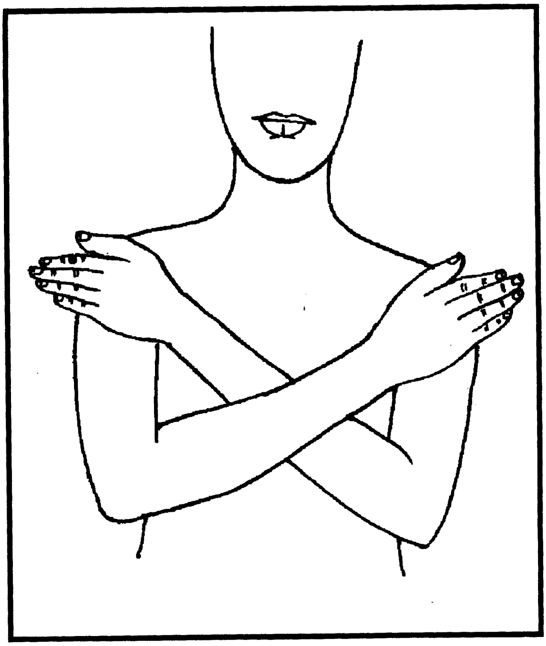

हस्त स्वस्तिक मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, आँख, मस्तिष्क।

16. कपित्थ मुद्रा

कपित्थ शब्द कठबेल वृक्ष का सूचक है। हिन्दू परम्परा में यह मुद्रा देवी-देवताओं के द्वारा धारण की जाती है। इस मुद्रा के द्वारा धूप खेने या कठबेल नामक फल चढ़ाने के भाव दर्शाये जाते हैं।

यह कश्यप मुद्रा के समान है।

विधि

बायें हाथ को मुट्ठि रूप में बांधकर अंगूठे को तर्जनी और मध्यमा के बीच प्रविष्ट करवाने पर कपित्थ मुद्रा बनती है।[20]

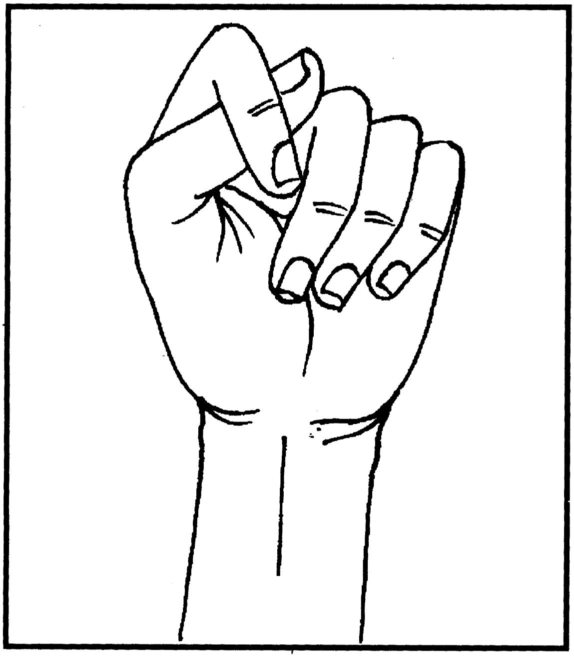

कपित्थ मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

17 कश्यप मुद्रा

कश्यप नाम के एक वैदिक ऋषि हुए हैं। कछुआ अथवा एक प्रकार की मछली को भी कश्यप कहा जाता है।

हिन्दू परम्परा की यह मुद्रा लिंग और योनि की सूचक मुद्रा है। यह मुख्यतया बायें हाथ से की जाती है।

विधि

बायें हाथ को मुट्ठि रूप में बांधकर अंगूठे को मध्यमा और अनामिका के बीच प्रविष्ट करवाने (घुसाने) पर कश्यप मुद्रा बनती है।[21]

यह कपित्थ मुद्रा के समान है।

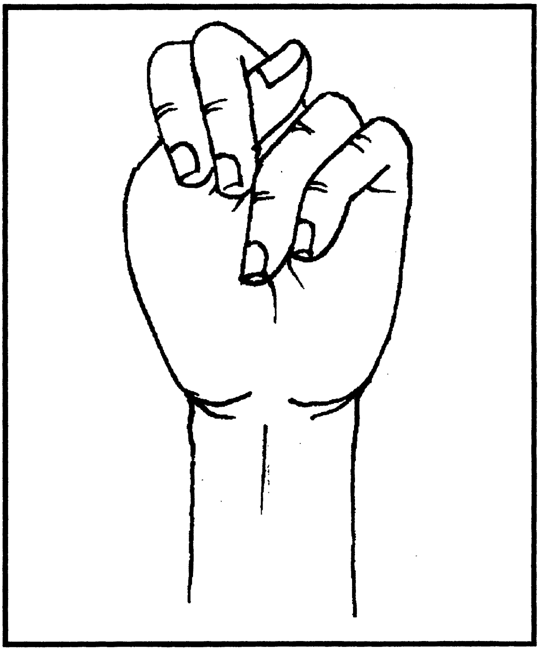

कश्यप मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

18. कटि मुद्रा

शरीर में पेट और पीठ के नीचे का भाग कटि कहलाता है। प्रस्तुत मुद्रा में हाथ को कटि भाग पर रखा जाता है इसलिए यह कटि मुद्रा कहलाती है।

यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में अधिक प्रचलित है। विद्वानों के अनुसार यह

आराम अथवा अनौपचारिकता की सूचक है। इसे कटाव्यलंबिनी मुद्रा के समान कहा जा सकता है।

विधि

बायें हाथ को कटि स्थान पर आराम की मुद्रा में रखते हुए अंगुलियों एवं अंगूठे को पीछे की तरफ फैलाना कटि मुद्रा है।[22]

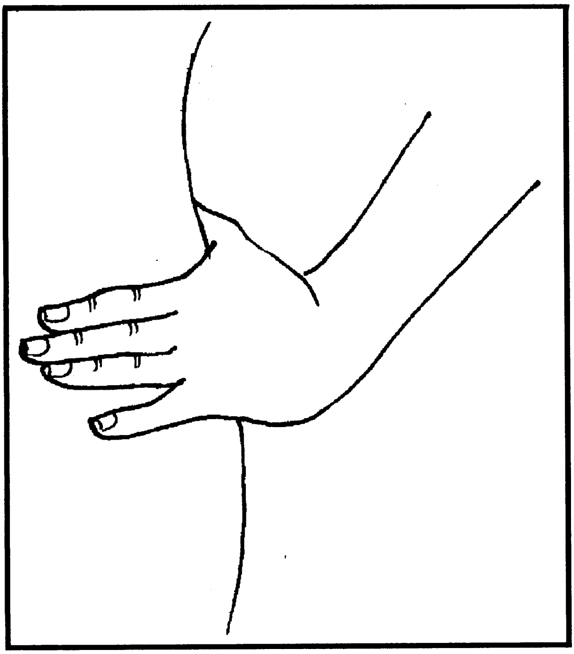

कटि मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

19. कटिग मुद्रा

कमर का भाग कटिग कहलाता है। हिन्दू परम्परा में यह मुद्रा आराम या अनौपचारिकता को दर्शाने हेतु प्रयुक्त होती है। यह असंयुक्त मुद्रा बायें हाथ से की जाती है।

विधि

इस मुद्रा में बायें हाथ को कमर के स्थान पर आराम की मुद्रा में रखते हैं तथा अंगुलियाँ आगे की ओर एवं अंगूठा पीछे या पार्श्व भाग में रखा जाता है।

यह मुद्रा कटिमुद्रा, कटिसमस्थित एवं कट्यावलम्बित मुद्रा से सम्बन्धित है।[23]

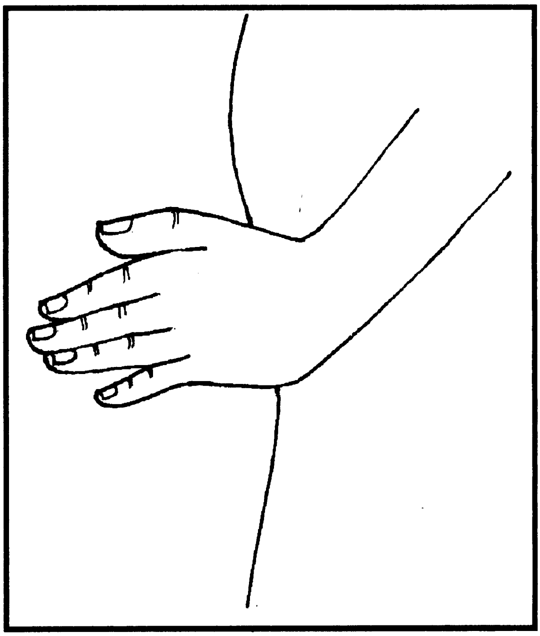

कटिग मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मेरूदण्ड, पाँव, गुर्दे।

20 कट्यावलम्बित मुद्रा

इस मुद्रा में कटि भाग को आधारित करते हुए मुद्रा प्रयोग किया जाता है इसलिए इसका नाम कट्यावलम्बित मुद्रा है। यह असंयुक्त मुद्रा हिन्दू परम्परा में आराम एवं अनौपचारिकता की सूचक है।

विधि

बायें हाथ को आराम की मुद्रा में नीचे की तरफ लटकाये रखना कट्यावलम्बित मुद्रा है।

इस मुद्रा में हथेली जंघा के पार्श्वभाग में आराम करती है।[24]

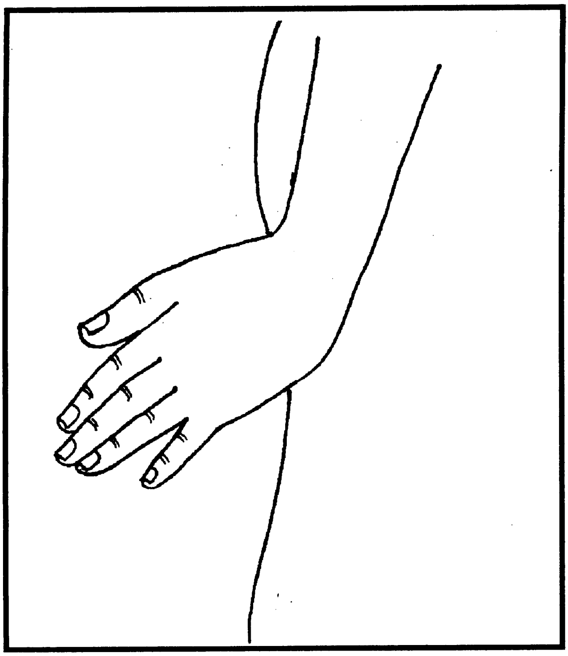

कट्यावलम्बित मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

21. कूर्पर मुद्रा

शरीर में पाँवों के बीच का जोड़ घुटना एवं हाथ के बीच का जोड़ कुहनी दोनों कूर्पर कहलाते हैं। इस मुद्रा में दायें हाथ को कोहनी की तरफ फैलाते हैं अत: इसे कूर्पर मुद्रा कहते हैं।

हिन्दू मान्यतानुसार यह मुद्रा भगवान शिव ने धारण की थी। विद्वानों ने इसे पशुओं को अधीन करने की मुद्रा कहा है। इसके दो रूपान्तर निम्न हैं-

प्रथम विधि

इस मुद्रा में दायाँ हाथ हल्के से कोहनी की तरफ फैला हुआ तथा हथेली शिथिल मुद्रा में नन्दी (शिव का वाहन) के सिर पर रखी हुई होती है।[25]

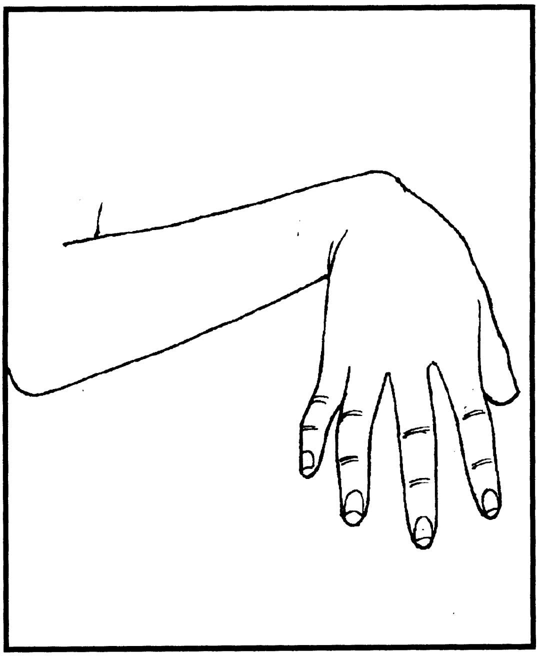

कूर्पर मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल, पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

द्वितीय विधि

कूर्पर मुद्रा का दूसरा प्रकार बायें हाथ से किया जाता है। हाथ को शिथिल रूप में नीचे की तरफ करते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।[26]

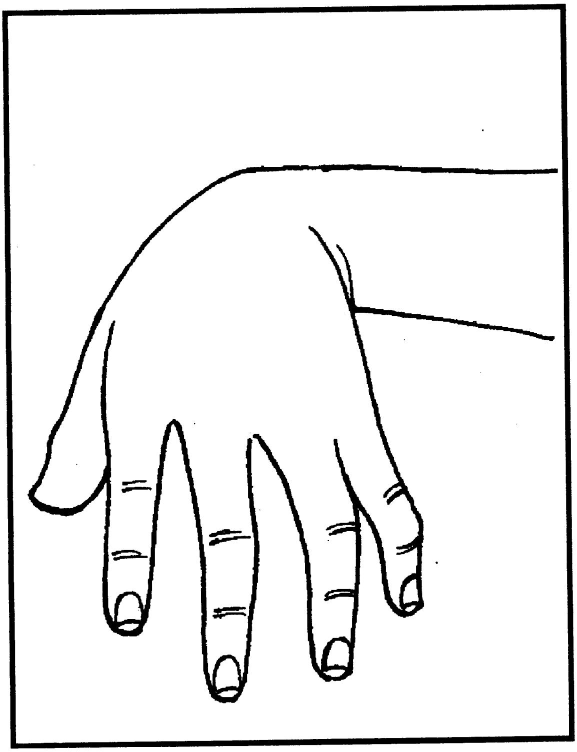

कूर्पर मुद्रा-2

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** जल एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

22. मुकुल मुद्रा

यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में एवं नाटक आदि में धारण की जाती है।

मुकुल का अर्थ है कमल की खिलती हुई कलि। यह मुद्रा नाम के अनुरूप कुंवारेपन या शुद्धता की प्रतीक है।

विधि

इस मुद्रा में दायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए अंगुलियों एवं अंगूठे के अग्रभागों को कलि के समान निकट लाया जाता है इसलिए यह मुकुल मुद्रा कहलाती है।[27]

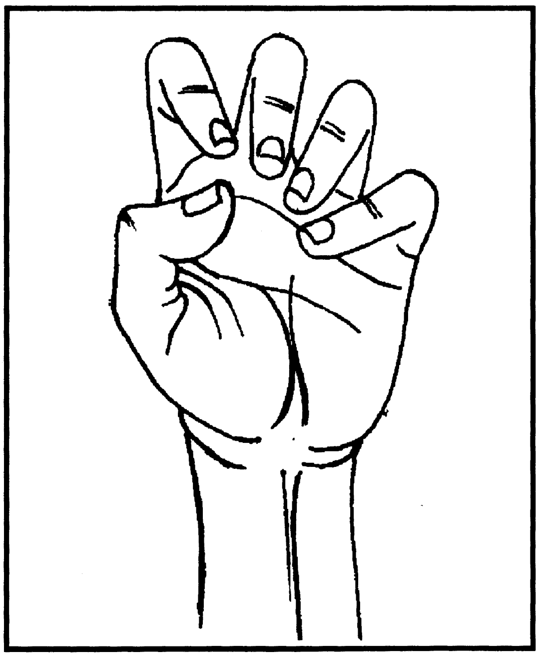

मुकुल मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क।

23. निद्रातहस्त मुद्रा

यह मुद्रा शिथिल शरीर के आराम की मुद्रा है। इस मुद्रा में दिखाए गए हाथ को सोया हुआ हाथ कह सकते हैं। यह मुद्रा शरीर को सहायता देती है।

विधि

इस मुद्रा में हथेली को अधोमुख एवं अंगुलियों को प्रसरित कर हाथ को कुर्सी या किसी सतह पर रखते हैं इसलिए यह निद्रातहस्त मुद्रा कहलाती है।[28]

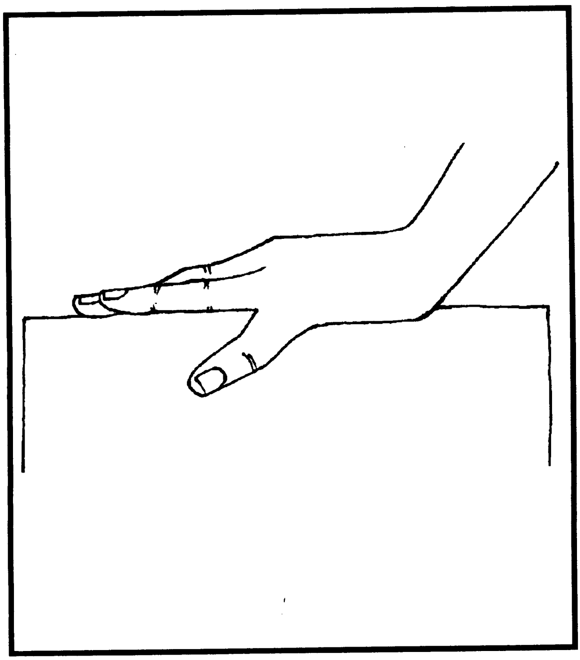

निद्रातहस्त मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, आँख, ऊपरी मस्तिष्क।

24. पद्म मुद्रा

हिन्दू परम्परा की यह संयुक्त मुद्रा खिलते हुए कमल की सूचक है। इसमें हाथों को छाती के स्तर तक उठाया जाता है।

विधि

दोनों हाथों के एड़ी भाग को मिलाकर अंगुलियों को भीतर की ओर इस तरह घुमायें कि अग्रभाग निकट आ सकें, वह पद्म मुद्रा कहलाती है।[29]

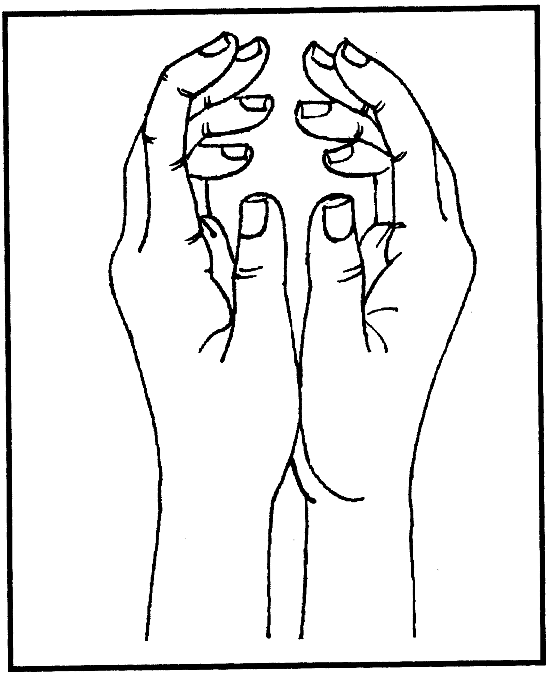

पद्म मुद्रा

लाभ

चक्र– आज्ञा, सहस्रार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, पिनियल एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन, ज्योति एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आँख, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं एवं रक्त संचरण तंत्र।

25. पताका मुद्रा

पताका मुद्रा का निम्न प्रकार हिन्दू परम्परा में प्रचलित है। यह मुद्रा ध्वजा, शक्ति और सामर्थ्य की सूचक है।

विधि

दायें हाथ को कंधे के स्तर पर फैलाते हुए हथेली को अधोमुख करने पर पताका मुद्रा बनती है।[30]

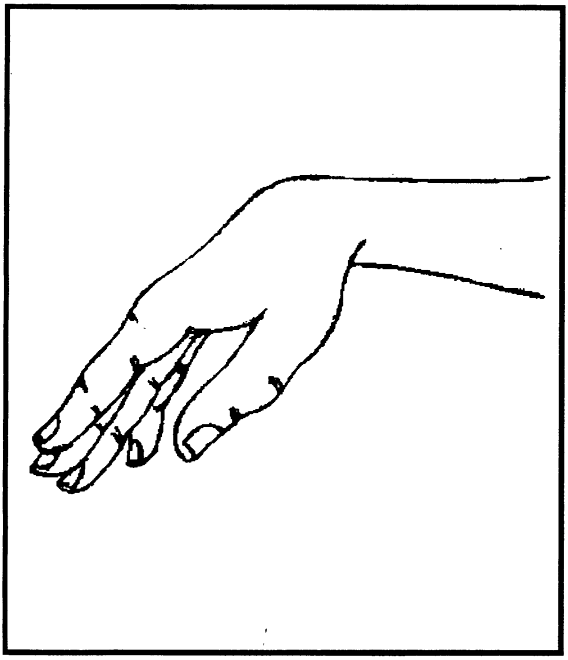

पताका मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मल- मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

26. प्रवर्तित हस्त मुद्रा

इस मुद्रा में हाथ को चलित हुए की भाँति दर्शाया जाता है इसलिए इसका नाम प्रवर्तित हस्त मुद्रा है। यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में अधिकतर नृत्य आदि में प्रयुक्त होती है। यह घूमने की या निराकरण की सूचक है।

विधि

इस मुद्रा में दायें हाथ का ऊपरी भाग कंधे के समानान्तर हो, भुजायें कोहनी से झुकी हुई, हथेली स्वयं के अभिमुख तथा अंगुलियाँ और अंगूठा ऊपर की तरफ उठे हुए रहने पर प्रवर्तित हस्त मुद्रा बनती है।[31]

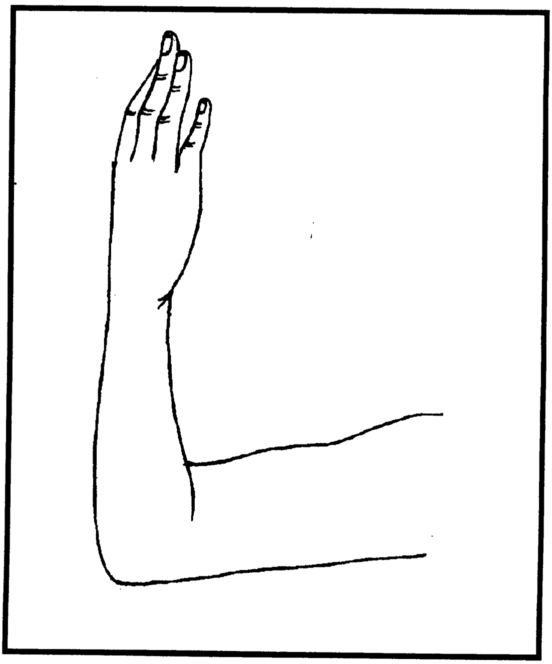

प्रवर्तित हस्त मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मेरूदण्ड, पाँव।

27. पुष्पाञ्जली मुद्रा

फूलों से भरी हुई अंजली पुष्पांजली कहलाती है। इस मुद्रा के द्वारा पुष्पों को अर्पित करने के भाव अभिव्यक्त किये जाते हैं, अतः इसका नाम पुष्पाञ्जली मुद्रा है।

हिन्दू परम्परा में यह मुद्रा पुष्प पूजा के उद्देश्य से की जाती है। इसकी विधि निम्न है-

विधि

दोनों हाथों की बाह्य किनारियों को मिलाते हुए हथेलियों एवं अंगुलियों की आकृति उस भाँति बनायें कि जिसमें चढ़ाने के रूप में पुष्प धारण किये जा सकें, इस तरह पुष्पाञ्जली मुद्रा बनती है।[32]

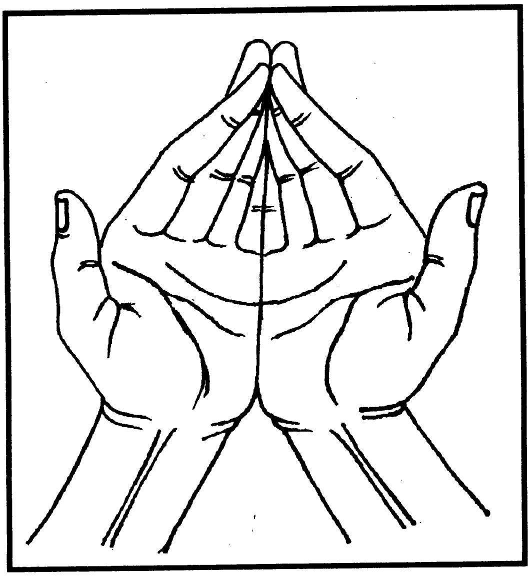

पुष्पांजली मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान , अनाहत एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** जल, वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, आनंद एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मेरूदण्ड, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र।

28. पुष्पपुट मुद्रा

यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में एवं नाटकों आदि में धारण की जाती है। यह पुष्प, जल आदि अर्पण करने की मुद्रा है। इस मुद्रा का वर्णन नाट्य मुद्राओं में किया गया है।[33]

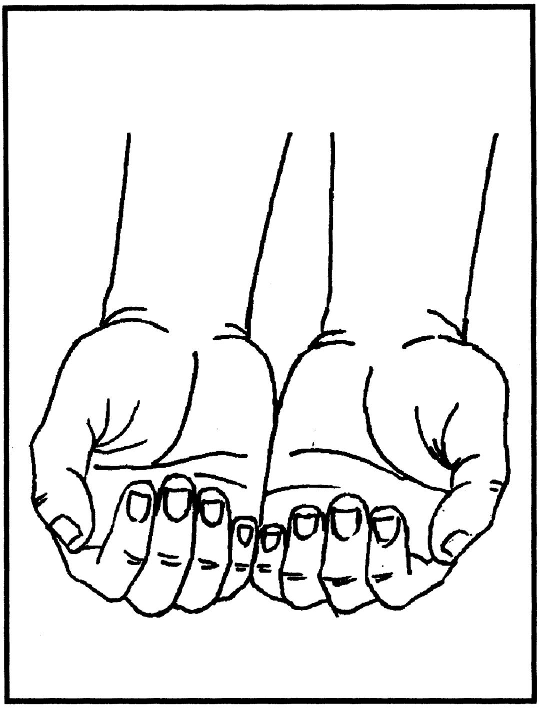

पुष्पपुट मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन, एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, ऊपरा मस्तिष्क, आँख।

29. सर्पकार मुद्रा

सर्पकार अर्थात सपेरा, साँप को पालने वाला, साँप का तमाशा दिखाने वाला, बीन आदि बजाकर साँप को वश में करने वाला।[34]

इस मुद्रा चित्र में बीन बजाते हुए सर्पकार को दर्शाया गया है। यह मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है।

विधि

बायें हाथ को कंधे के स्तर पर धारण करते हुए बायीं हथेली ऊपर की तरफ, अंगुलियाँ और अंगूठे झुके हुए कटक मुद्रा के समान रहें।

दायें हाथ को कमर के स्तर पर धारण करते हुए दायीं हथेली नीचे की तरफ, अंगुलियाँ और अंगूठे घूमे हुए रहें। इस प्रकार दोनों हाथ मिलकर किसी पतली वस्तु को धारण करते हैं, वह सर्पकार मुद्रा कहलाती है।[35]

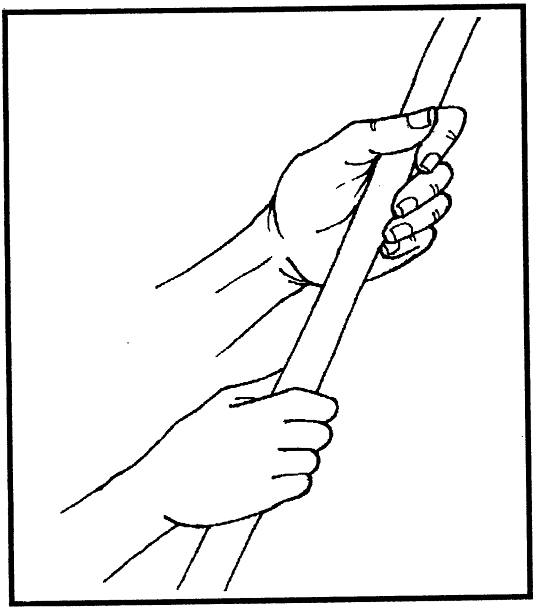

सर्पकार मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र।

30. सिंहकर्ण मुद्रा

सिंहकर्ण का शाब्दिक अर्थ होता है सिंह के कान। मुद्रा स्वरूप के अनुसार इस चित्र में सिंह की कर्णेन्द्रिय अथवा उसके मुखभाग को दर्शाने का प्रयास किया गया है। यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में सम्पूर्ण सौन्दर्य की अपेक्षा से देखी जाती है।

विधि

बायें हाथ को शरीर से दूर रखते हुए हथेली को अधोमुख करें तथा अगुलियों एवं अंगूठे को शिथिलता के साथ आगे की ओर फैलायें, इस भाँति सिंहकर्ण मुद्रा बनती है।[36]

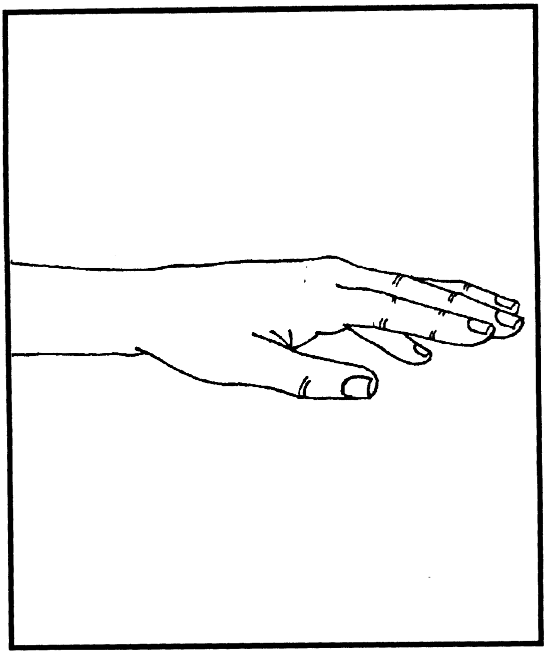

सिंहकर्ण मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली।

31 तत्त्व मुद्रा

तत्त्व का अर्थ है- यथार्थता, वास्तविकता, सारभूत तत्त्व। अपने नाम के अनुसार यह मुद्रा सत्य की सूचक है।

हिन्दु परम्परा के अनुसार यह मुद्रा किसी भी हाथ से की जा सकती है। इसकी विधि यह है-

विधि

दायें अथवा बायें हाथ को सामने की तरफ अधोमुख करते फैलायें। तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के भीतर की तरफ मोड़ें, अंगूठे के प्रथम पोर को तर्जनी के प्रथम पोर से स्पर्शित करें तथा मध्यमा को सीधा बाहर की तरफ रखने पर तत्त्व मुद्रा बनती है।[37]

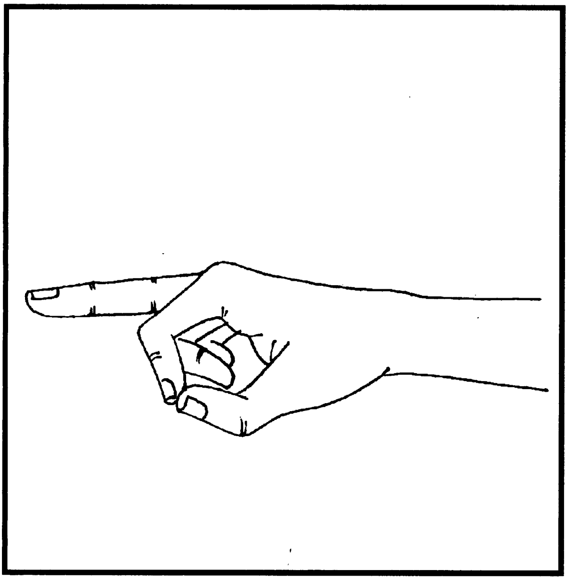

तत्त्व मुद्रा

लाभ

चक्र— विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**— वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**— थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र**— विशुद्धि एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**— कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, आँख एवं ऊपरी मस्तिष्क।

32. वज्रपताका मुद्रा

किसी धातु आदि कठोर या मजबूत वस्तु से निर्मित पताका वज्रपताका कही जा सकती है। यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में वज्र की सूचक है। इसकी विधि निम्नोक्त है-

विधि

हथेली को सामने की तरफ करते हुए तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका को बाहर की ओर फैलायें तथा अनामिका और अंगूठे के अग्रभाग का स्पर्श करवाने पर वज्रपताका मुद्रा बनती है।[38]

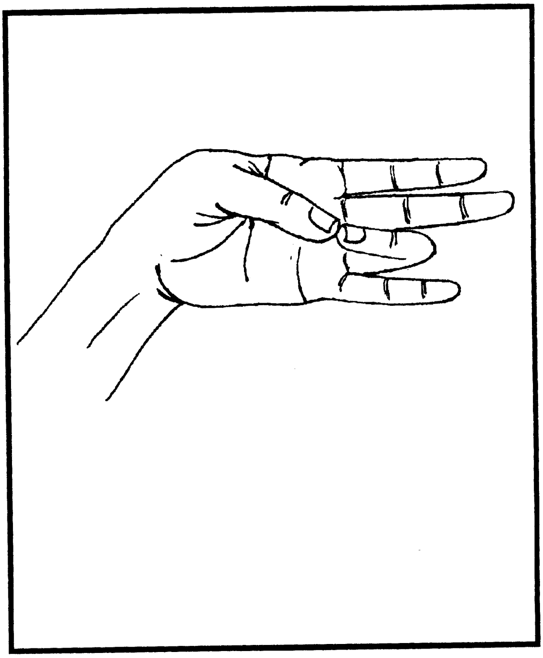

वज्रपताका मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली।

33. वन्दना मुद्रा

वन्दना मुद्रा के दो प्रकार पाए जाते हैं। उनमें प्रथम प्रकार हिन्दू एवं बौद्ध दोनों परम्पराओं में मान्य हैं जबकि द्वितीय प्रकार हिन्दू परम्परा में ही स्वीकृत है।

दूसरा प्रकार नमन या अभिवादन का सूचक है। यह मुद्रा छाती के स्तर पर एक हाथ से धारण की जाती है।

विधि

दायें हाथ को मध्य रेखा के सन्मुख रखते हुए अंगुलियों एवं अंगूठे को शिथिलता के साथ ऊपर उठाना वन्दना मुद्रा है।[39]

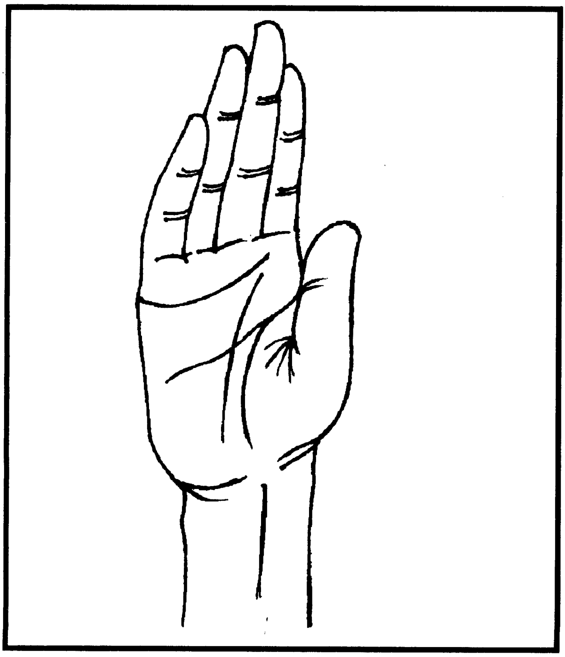

वंदना मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

34. विस्मय मुद्रा

हिन्दू परम्परा में विस्मय मुद्रा के दो प्रकार मिलते हैं। दोनों प्रकार की मुद्राएँ विस्मय, भय और श्रद्धा की सूचक है। उनकी रचना विधि निम्न है-

प्रथम प्रकार

दायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए हथेली की एड़ी को कन्धे के समीप लायें। तर्जनी, मध्यमा, कनिष्ठिका और अंगूठे को दाहिनी तरफ फैलायें तथा अनामिका को हथेली की तरफ मोड़ने पर विस्मय मुद्रा बनती है।[40]

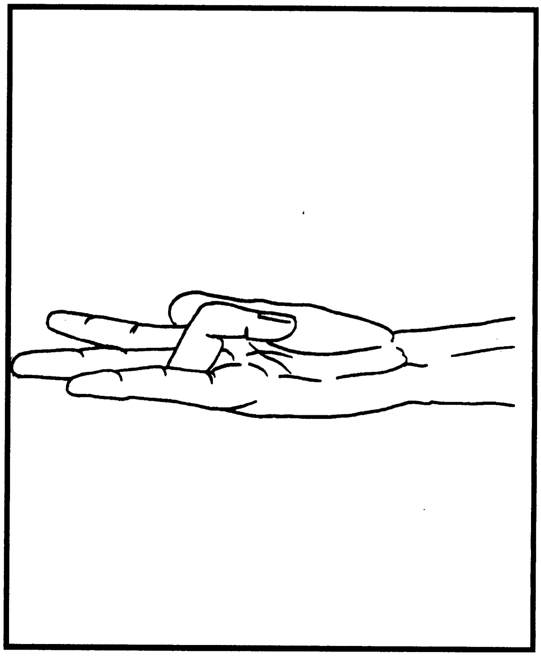

विस्मय मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **केन्द्र**– शक्ति एवं विशुद्धि केन्द्र **ग्रन्थि**– प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, कान, नाक,गला, मुँह एवं स्वर यंत्र।

द्वितीय प्रकार

दूसरे प्रकार में अनामिका को हथेली की तरफ न मोड़कर दाहिनी तरफ ही फैलाये रखते हैं। शेष विधि पूर्ववत जाननी चाहिये।[41]

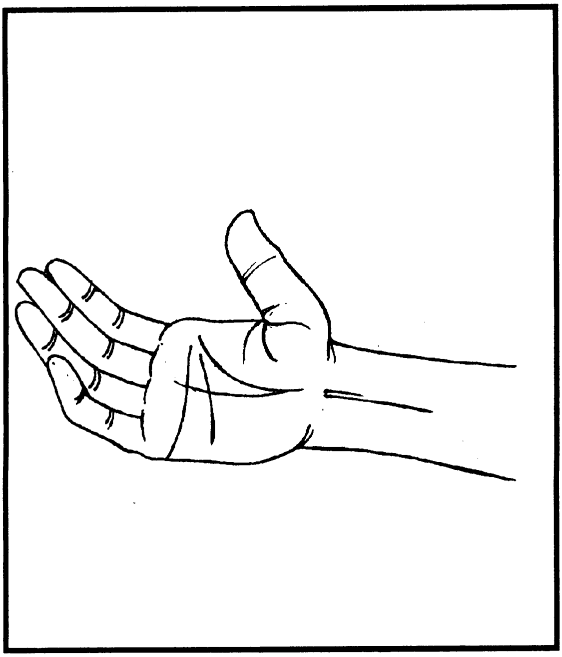

विस्मय मुद्रा-2

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** जल एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

35. विस्मय वितर्क मुद्रा

यह मुद्रा हिन्दू परम्परा में विस्मय और भय को दर्शाने के लिए धारण की जाती है।

विधि

बायीं हथेली को अन्दर की तरफ करते हुए तर्जनी और मध्यमा को ठुड्डी से स्पर्श करवायें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ मोड़ने पर विस्मय वितर्क मुद्रा बनती है।[42]

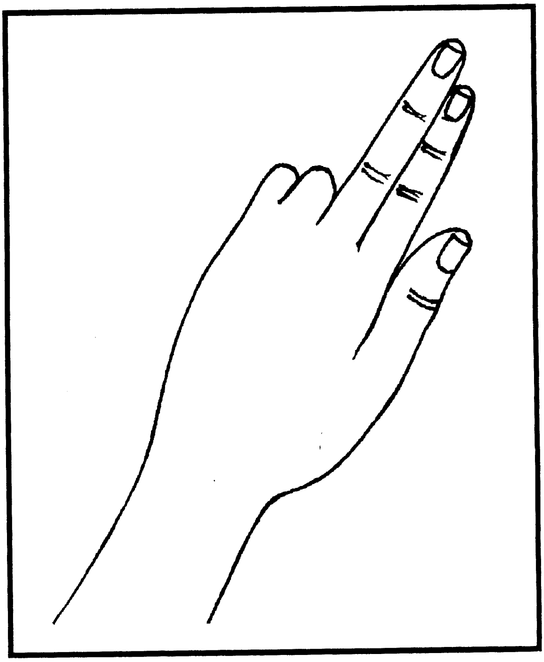

विस्मय वितर्क मुद्रा

लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

किसी भी क्रिया को करते हुए उसमें मानसिक जुड़ाव होना अत्यंत आवश्यक है। त्रियोग पूर्वक की गई क्रिया अधिक लाभदायी होती है। हमारी दैनिक क्रियाओं में अनेक ऐसी क्रियाएँ है जिन्हें हम अवश्य रूप से करते ही है। इस अध्याय में वर्णित कुछ अति उपयोगी एवं प्रचलित मुद्राओं का सचित्र स्वरूप वर्णन करते हुए उसकी प्रभावकता दर्शाने का मुख्य उद्देश्य यही है कि आज के फास्ट युग में हमारी प्रत्येक क्रिया समुचित एवं स्वास्थ्य वर्धक हो। उसकी उपादेयता और उपयोगिता से हम चिर-परिचित हो सकें एवं त्रियोग पूर्वक उनमें जुड़कर लौकिक एवं लोकोत्तर कल्याण कर सकें।

सन्दर्भ-सूची

1. MJS पृ. 8
2. हिन्दी शब्दसागर भा. 1, पृ. 3133. MJS पृ. 10
4. RSG पृ. 63
5. MJS पृ. 15
6. MJS पृ. 30
7. MJS पृ. 30
8. RSG पृ. 63
9. TGR पृ. 167
10. MGS पृ. 32
11. RSG पृ. 3
12. MGS पृ. 35
13. MJS पृ. 39
14. MJS पृ. 39
15. AMK पृ. 141
16. (क) HKS पृ. 271 (ख) MJS पृ. 44 (ग) RSG पृ. 3
17. (क) ACG पृ. 36 (ख) MJS पृ. 53
18. RSG पृ. 3
19. (क) ERJ पृ. 24 (ख) MJS पृ. 55
20. (क) GLI पृ. 127 (ख) MJS पृ. 68
21. MSJ पृ. 70
22. (क) MSJ पृ. 70 (ख) RSJ पृ. 3
23. HKS पृ. 272
24. (क) MJS पृ. 70 (ख) RSJ पृ. 3 (ग) TJR पृ. 14
25. HKS पृ. 267
26. MJS पृ. 78
27. (क) ACG पृ. 26 (ख) KVA पृ. 136 (ग) MSJ पृ. 94

28. *MJS पृ. 102*
29. *AMK पृ. 141*
30. *ERJ पृ. 24* (ख) *MJS पृ. 110*
31. (क) *MJS पृ. 113* (ख) *RSJ पृ. 63*
32. *MJS पृ. 114*
33. (क) *ACG पृ. 40* (ख) *MJS पृ. 114*
34. *हिन्दी शब्दसागर भा. 10, पृ. 4903*
35. *TGR पृ. 290*
36. *HKS पृ. 267*
37. *AMK पृ. 141*
38. *MJS पृ. 151*
39. *MJS पृ. 153*
40. (क) *HKS पृ. 271* (ख) *MJS पृ. 160*
    (ग) *RSG पृ. 4*
41. *RSG पृ. 4*
42. *MJS पृ. 160*

●

अध्याय-3

शारदातिलक, प्रपंचसार आदि पूर्ववर्ती ग्रन्थों में उल्लिखित मुद्राओं का सोद्देश्य स्वरूप

हिन्दू परम्परा या वैदिक परम्परा में कर्मकांड को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसी को लक्ष्य में रखकर योग साधक ऋषियों ने कर्मकाण्डमूलक अनेक ग्रन्थों की रचना की। इसी भारतीय वांगमय के अन्तर्गत मुद्रा सम्बन्धी कुछ मौलिक ग्रन्थ भी हमें प्राप्त होते हैं। इनमें वर्णित मुद्राएँ मुख्य रूप से देवी-देवताओं को प्रसन्न करने, आकर्षित करने, आमंत्रित करने तथा उनके स्वरूप वर्णन आदि से मुख्यतया सम्बन्धित है। परंतु प्रायः ग्रन्थों में संस्कृत श्लोक रूप निबद्ध होने से जन सामान्य के लिए उन्हें समझना कठिन है। इस अध्याय में शारदा तिलक आदि पूर्ववर्ती ग्रन्थों में उल्लेखित मुद्राओं का सचित्र स्वरूप स्पष्ट करते हुए उनके सुपरिणामों पर भी विचार किया गया है। जिससे क्रिया-आराधना में समुचित सफलता प्राप्त हो सकेगी।

मतंग पारमेश्वर में निर्दिष्ट मुद्राएँ

मतंग पारमेश्वर में पूजा सम्बन्धी निम्न पाँच मुद्राओं का वर्णन इस प्रकार मिलता है–

1. शक्ति मुद्रा

शतकोटि महादिव्य योगिनियों को प्रसन्न करने वाली और तीव्र मुक्ति प्रदान करने वाली होने से इसे शक्ति मुद्रा कहते हैं तथा यह मुद्रा सर्व दुष्टों का निवारण एवं मंगल करने के उद्देश्य से की जाती है।[1]

विधि

बद्ध्वांगुलिं करं श्रेष्ठं, प्रसार्योर्ध्वं प्रदर्शयेत्।
शक्तिमुद्रा भवेद् भद्रा, सर्वदुष्टनिवारिणी।।

दाहिने हाथ की अंगुलियों को बांधकर ऊपर की ओर फैलाते हुए प्रदर्शित करना शक्ति मुद्रा है।[2]

2. बीज मुद्रा

यह मुद्रा कर्म सिद्धि एवं पवित्रता के लिए की जाती है।

विधि

कनिष्ठानामिकान्योन्यं समाविश्य निपीडयेत् ।
प्रसाध्याङ्गुष्ठमूलाभ्यां, शेषाश्चोर्ध्वं गताः समाः ।।
बीजमुद्रेति विख्याता, यामला कर्मसिद्धये ।

अनामिका और कनिष्ठिका को परस्पर सम्मिलित कर दबायें, फिर उन्हें अंगूठे के मूल भाग से सम्पृक्त करें तथा अन्य अंगुलियों को ऊपर की ओर समानान्तर रखने पर बीज मुद्रा होती है।[3]

3. प्रशांत मुद्रा

जिस मुद्रा के प्रयोग से उग्र स्वभावी देव शान्त हो जाते हैं अथवा चैतसिक मन प्रशान्त होता है वह प्रशान्त मुद्रा कहलाती है।

विधि

अनामिकामध्यमाभ्यामंगुष्ठाग्रे, नियोजयेत् ।
कृत्वान्योन्यं तदग्रे तु, संसक्ते हस्तयोर्द्वयोः ।।
प्रशान्तेति समाख्याता कन्यसांगुष्ठकोर्ध्वगा ।

दोनों हाथों की मध्यमा और अनामिका के अग्रभागों को अंगूठों के अग्रभागों से योजित करना तथा कनिष्ठिका और तर्जनी अंगुलियों को ऊर्ध्व दिशा में प्रसरित करना प्रशान्त मुद्रा है।[4]

4. आवाहन मुद्रा

इस मुद्रा के द्वारा देवी-देवताओं को आमन्त्रित किया जाता है इसलिए यह आवाहन शब्द से संबोधित है।

विधि

कृत्वांजलिपुटं, सम्यगधस्तयोरूभयोरपि ।
तर्जन्यग्रे समाक्रम्य, त्वंगुष्ठाभ्यां समाहिता ।।

दोनों हाथों को अंजलि रूप में बनाकर अंगूठों के द्वारा तर्जनियों के अग्रभाग को भलीभाँति आक्रमित करना आवाहन मुद्रा है।[5]

5. संहार मुद्रा

यह मुद्रा पूजा समाप्ति के अनन्तर अर्पित द्रव्यादि शक्तियों को ग्रहण करने एवं उन्हें विसर्जित करने के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

प्रसार्य दक्षिणं पाणिं, कनिष्ठादि क्रमाच्छनैः ।।
आकृष्य वर्तयेन्मुष्टिमंगुष्ठेन प्रपीड्य तु ।
मुद्रा संहारिणी प्रोक्ता, भद्रा कर्मण्यनिन्दिता ।।

सर्वप्रथम दाहिने हाथ को फैलाएँ फिर कनिष्ठिका आदि के क्रम से अंगुलियों को शनैः शनैः हथेली के भीतर मोड़कर मुट्ठि रूप बनाना और उन्हें अंगुष्ठ से संपीडित करना संहारिणी मुद्रा है।[6]

शारदातिलक तंत्र में वर्णित मुद्राएँ

शारदातिलक तंत्र में पूजा सम्बन्धित नौ प्रकार की मुद्राओं का वर्णन किया गया है जो संक्षेप में निम्न प्रकार है-

1. आवाहनी मुद्रा

पूजा के लिए देवता का आह्वान करना अर्थात उन्हें बुलाना आवाहन कहलाता है।[7] यह मुद्रा मुख्य रूप से पूजा, होम, हवन आदि कार्यों में मंगल के लिए एवं देवताओं को आमंत्रित करने के उद्देश्य से की जाती है।[8]

विधि

सम्यक् सम्पूरितः पुष्पैः, कराभ्यां कल्पितोंजलिः ।
आवाहनी समाख्याता, मुद्रा देशिकसत्तमैः ।।

दोनों हाथों की कल्पित अंजलि बनाकर पुष्पों के द्वारा उसे भर देना आवाहनी मुद्रा है।[9]

2. स्थापनी मुद्रा

स्थापनी शब्द का अर्थ है- स्थित करना, आसन पर बिठाना।[10] पूजा आदि के अवसर पर जिन देवी-देवताओं को आमंत्रित किया जाता है उन्हें योग्य स्थान पर बिठाने के अभिप्राय से यह मुद्रा प्रयुक्त होती है।

विधि

अधोमुखीकृता सैव प्रोक्ता स्थापनकर्मणि।

पूर्वोक्त आवाहनी मुद्रा को अधोमुख कर देना स्थापनी मुद्रा है।[11]

3. सन्निधापनी मुद्रा

सन्निधापन का अर्थ है- एक-दूसरे को आमने-सामने स्थित करना।[12] इस मुद्रा में दोनों हाथ मुट्ठियों के रूप में एक-दूसरे के सम्मुख रहते हैं अतः यह मुद्रा सन्निधापनी मुद्रा के नाम से प्रसिद्ध है।

इस मुद्रा के द्वारा आमंत्रित देवी-देवताओं को स्वयं के निकट उपस्थित रहने हेतु प्रार्थना की जाती है। दोनों मुट्ठियों को आमने-सामने रखना, देवी-देवताओं को स्वयं के समीप स्थिर रखने का प्रतीकात्मक संकेत है।

विधि

आश्लिष्टमुष्टियुगला, प्रोन्नातांगुष्ठयुग्मका ।
सन्निधाने समुद्दिष्टा, मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ।।

दोनों हाथों को मुट्ठी रूप में बांधकर एवं उन्हें परस्पर संयुक्त कर अंगूठों को ऊर्ध्व प्रसरित करना सन्निधापनी मुद्रा है।[13]

4. सन्निरोधनी मुद्रा

सन्निरोध का शाब्दिक अर्थ है– सम्यक प्रकार से रोकना। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार आमंत्रित देवी-देवताओं को जिस आसन पर बिठाया है उन्हें वहाँ से चलित नहीं होने देना सन्निरोध कहलाता है।[14]

इस मुद्रा के माध्यम से आमंत्रित, स्थापित एवं उपस्थित देवी-देवताओं को पूजा समाप्ति पर्यन्त उसी स्थान पर स्थिर रहने की प्रार्थना की जाती है।

इस मुद्रा में दोनों अंगूठे मुट्ठी के भीतर रहते हैं जो देवी-देवताओं के स्थिर रहने के प्रतीक हैं।

विधि

अंगुष्ठगर्भिणी सैव, सन्निरोधे समीरिता ।

सन्निधापनी मुद्रा की तरह दोनों हाथों को मुट्ठी रूप में बनाकर द्वयांगुष्ठों को भीतर में रखना सन्निरोधनी मुद्रा है।[15]

5. सम्मुखीकरणी मुद्रा

सम्मुखीकरण का अर्थ है स्वयं के अभिमुख करना। यह मुद्रा आमन्त्रित देवी-देवताओं को स्वयं के समक्ष उपस्थित करने अथवा स्वयं के द्वारा उनकी उपस्थिति का साक्षात अनुभव करने के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

उत्तानौ द्वौ कृतौ मुष्टी, संमुखीकरणी स्मृता ।

दोनों हाथों की बंधी मुट्ठियों को ऊपर की ओर करना सम्मुखीकरणी मुद्रा है।[16]

6. सकलीकृति मुद्रा

कुलार्णव तन्त्र के अनुसार देवता के शरीर पर षडङ्गो का न्यास करना सकलीकृति कहलाता है।

इस मुद्रा में देवता की मूर्ति पर स्वयं के छः अंगों का न्यास किया जाता है।

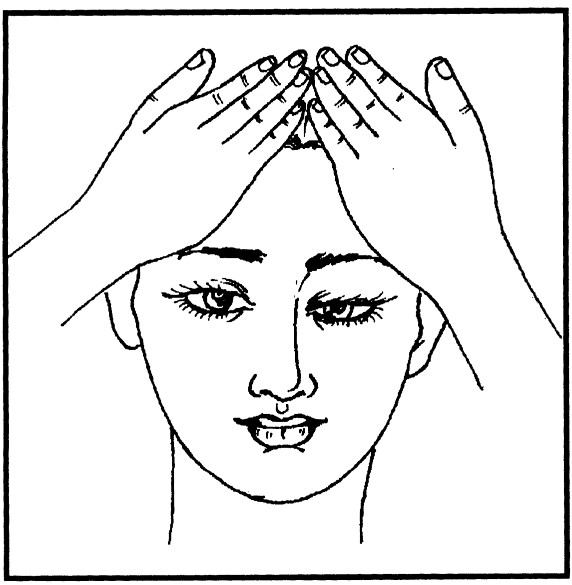

सकलीकृति मुद्रा

विधि

देवतांगे षडंगानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः।।

देवी-देवताओं की मूर्ति पर अपने छः अंगों का न्यास करना सकलीकृति मुद्रा है।[17]

लाभ

चक्र– आज्ञा चक्र **तत्त्व**– आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

7. अवगुण्ठनी मुद्रा

आच्छादन करना अथवा ढकना अवगुण्ठन कहलाता है।[18] इस मुद्रा में दुष्ट शक्तियों से बचाव करने हेतु प्रतिमा को आत्मशक्ति से आच्छादित किया जाता है अत: इसका नाम अवगुण्ठन मुद्रा है।

विधि

सव्यहस्तकृता मुष्टि, दीर्घाऽधोमुखतर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेय, मभितो भ्रामिता सती ।।

दोनों हाथों को मुट्ठी रूप में बनाकर और तर्जनी को अधोमुख करते हुए प्रतिमा के चारों ओर घुमाना अवगुण्ठनी मुद्रा है।[19]

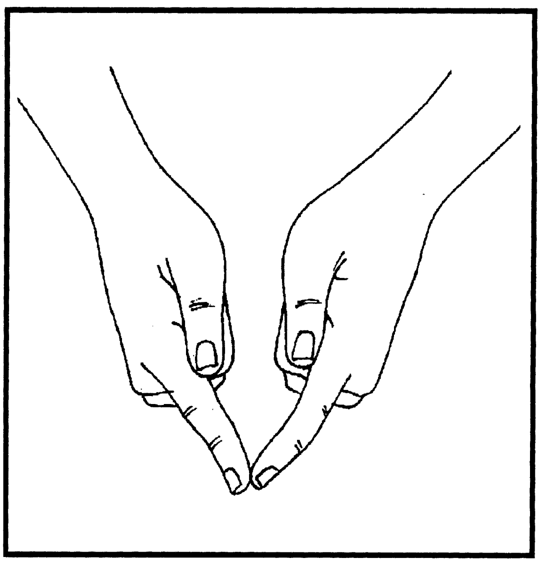

अवगुण्ठनी मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व**– जल एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– स्वास्थ्य एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग।

8 धेनु मुद्रा

धेनु मुद्रा का एक नाम अमृतीकरण मुद्रा है। इस मुद्रा से अन्तरंग अमृत तत्त्व की प्राप्ति होती है अत: यह अत्यन्त शुभ कार्यों में की जाती है।

विधि

अन्योन्याभिमुखाश्लिष्ट, कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथा च तर्जनीमध्या, धेनुमुद्रा समीरिता ।।

दोनों हाथों को आमने-सामने कर दायीं कनिष्ठिका को बायीं अनामिका से और बायीं कनिष्ठिका को दायीं अनामिका से तथा दायीं तर्जनी को बायीं मध्यमा से और बायीं अनामिका को दायीं तर्जनी से आश्लिष्ट करना धेनु मुद्रा कहलाता है।[20]

9. महा मुद्रा

एक प्रकार की सामान्य मुद्रा महामुद्रा कही जा सकती है। हाथों की एक स्थिति को भी महामुद्रा कह सकते हैं।

विधि

अन्योन्यग्रथितांगुष्ठा, प्रसारितकरांगुली ।
महामुद्रेयमुदिता, परमीकरणे बुधैः ।।

दोनों अंगूठों को परस्पर ग्रथित कर शेष अंगुलियों को सीधे फैलाये रखना महामुद्रा है।[21]

शारदातिलक तन्त्र पर रचित राघवभट्टीय टीका वर्णित मुद्राएँ

शारदातिलक तन्त्र पर राघवभट्ट ने पदार्थादर्श नामक टीका रची है। उसमें इकतालीस अन्य हस्त मुद्राएँ उद्धृत की गयी है जिनका प्रयोग पूजा काल में देवता के सामने किया जाता है। वे निम्नलिखित हैं-

1. मूसल मुद्रा

धान कूटने का औजार मूसल कहलाता है। एक प्रकार का अस्त्र जिसे बलराम धारण करते थे, उसे भी मूसल कहा जाता है।[22] यहाँ मूसल से तात्पर्य अस्त्र विशेष होना चाहिए, क्योंकि टीकाकार ने इस मुद्रा को विघ्न निवारक एवं कष्ट संहारक माना है।

विधि

मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां, वामस्योपरि दक्षिणम्।
कूर्य्यान्मुषलमुद्रेयं, सर्व्वविघ्नप्रणाशिनी।।

दोनों हाथों को मुट्ठी रूप में बांधकर बायें हाथ के ऊपर दाहिना हाथ रखना मूसल मुद्रा है।[23]

2. योनि मुद्रा

योनि का एक अर्थ है उत्पत्तिस्थान, स्त्रियों की जननेन्द्रिय। इस मुद्रा के द्वारा जननस्थान को दर्शाया जाता है।

विधि

मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा, तर्जनीभ्यामनामिके,
अनामिकोर्ध्वगाश्लिष्ट-दीर्घमध्य मयोरथ।
अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद्, योनिमुद्रेयमीरिता।।

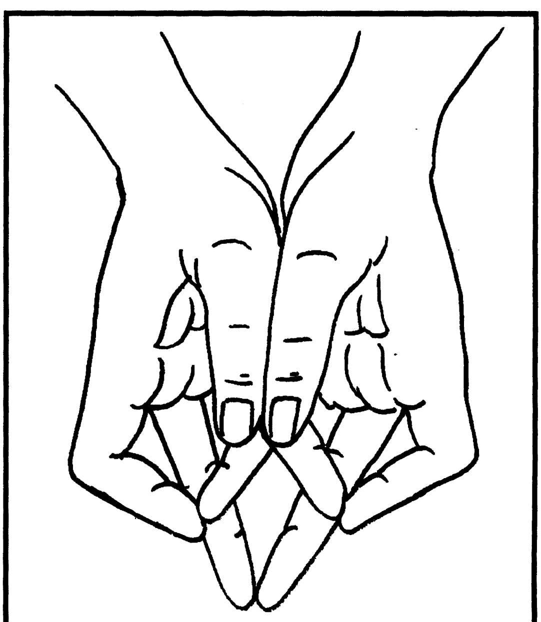

योनि मुद्रा

दोनों हाथों को परस्पर सटाकर दोनों मध्यमाओं के नीचे से बायीं तर्जनी को दाहिनी अनामिका से और बायीं अनामिका को दाहिनी तर्जनी से सम्पृक्त करें, फिर दोनों कनिष्ठिकाओं को बांधें तथा अंगूठों को सीधा रखने पर योनि मुद्रा बनती है।[24]

3. चक्र मुद्रा

यह मुद्रा समस्त प्रकार की सिद्धियों एवं शुभत्व के लिए प्रदर्शित की जाती है।

विधि

विपर्य्यस्ते तले कृत्वा, वामदक्षिणहस्तयोः ।
अंगुष्ठौ ग्रथयेच्चैव, कनिष्ठानामिकान्तरे ।
चक्रमुद्रेयमुद्दिष्टा, सर्व्वसिद्धिकरी शुभा ।

बायें हाथ के पृष्ठ भाग पर दायीं हथेली को रखकर दोनों अंगूठों को ग्रथित करें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को पृथक-पृथक फैलाने पर चक्र मुद्रा बनती है।[25]

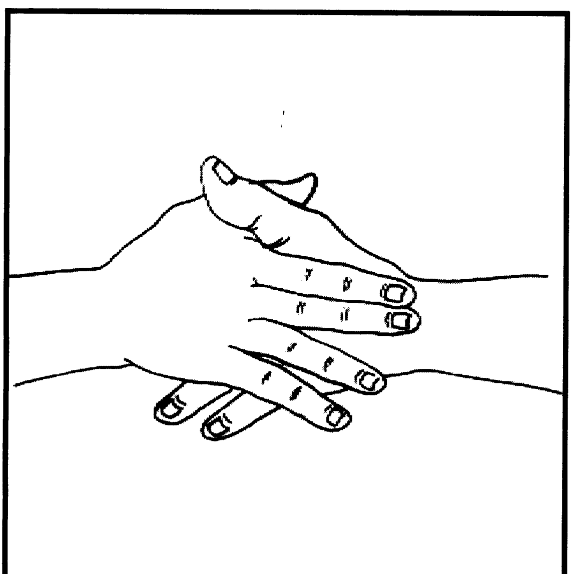

चक्र मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति, ज्ञान एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–**गोनाड्स, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, मस्तिष्क, आँख एवं स्नायुतंत्र।

4. गालिनी मुद्रा

यह एक तान्त्रिक मुद्रा है इसकी विधि निम्न है–

विधि

कनिष्ठांगुष्ठकौ सक्तौ, करयोरितरेतरम्।
तर्जनीमध्यमानामाः, संह्यता भुग्नवर्जिताः (सज्जिताः)।
मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता, शंखस्योपरि चालिता।

बायें अंगूठें से दायीं अनामिका को और बायीं अनामिका से दायें अंगूठे को जोड़ें तथा शेष अंगुलियों को एक-दूसरे से स्पर्शित रखते हुए किंचित झुकाने पर गालिनी मुद्रा बनती है।[26]

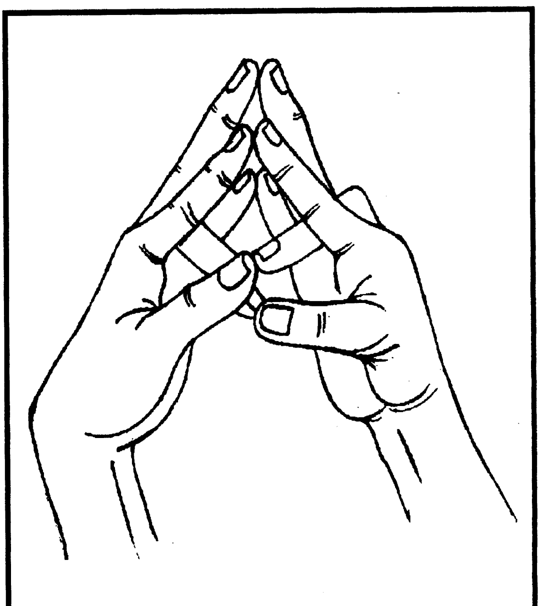

गालिनी मुद्रा

लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र**– विशुद्धि एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, ऊपरी मस्तिष्क, आँख।

5. गरूड़ मुद्रा

पुराणों में इसे साँपों का परम दुश्मन माना गया है। चीनी और लामा इसे विश्व का सूचक मानते हैं। उसका सिर स्वर्ग का, आँखे सूर्य की, पीठ चन्द्र की, पंख हवा के, पैर धरती के तथा पूँछ को पेड़-पौधों का प्रतीक कहा गया है। यह मुद्रा सम्पूर्ण विष का नाश करती है।[27]

विधि

हस्तावभिमुखौ कृत्वा, रचयित्वा कनिष्ठिके।
मिथस्तर्जनिके श्लिष्टे, श्लिष्टावंगुष्ठकौ तथा।
मध्यमानामिके द्वे तु, द्वौ पक्षाविति कुंचयेत्।
एषा गरूड़मुद्रा, स्यादशेषविष नाशिनी।

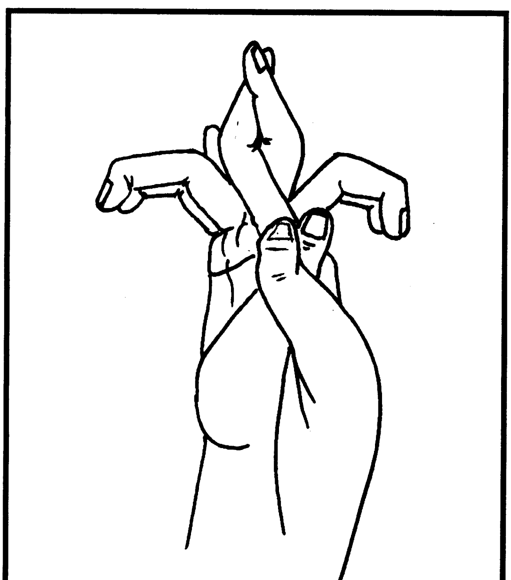

गरूड़ मुद्रा

दोनों हाथों के पृष्ठभाग को मिलायें, फिर कनिष्ठिका को कनिष्ठिका से, तर्जनी को तर्जनी से और अंगूठे को अंगूठे से गूथें, तदनन्तर दोनों द्वय मध्यमाओं और अनामिकाओं को हिलाते रहने पर गरूड़ मुद्रा बनती है।[28]

लाभ

चक्र– अनाहत, आज्ञा, एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** आनंद, ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** थायमस, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र, मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आँखें आदि।

7. गन्ध मुद्रा

यह मुद्रा गम्भीर पापों, दुर्भाग्य और क्लेश का नाश करने वाली तथा धर्म का ज्ञान देने वाली होने से गन्ध मुद्रा कहलाती है।[29]

विधि

कनिष्ठांगुष्ठसंयुक्ता, गन्धमुद्रा प्रकीर्तिता ।

कनिष्ठिका और अंगूठे को संयुक्त कर देना गन्ध मुद्रा है।[30]

8. ज्वालिनी मुद्रा

जिस मुद्रा में प्रज्वलित अग्नि, शिखा आदि का प्रतीक दर्शाया जाता हो, उसे ज्वालिनी मुद्रा कहते हैं।[31]

विधि

मणिबन्धौ समौ कृत्वा, करौ तु प्रसृतांगुली ।
मध्यमे मिलिते कृत्वा, तन्मध्येऽङ्गुष्ठकौ क्षिपेत् ।
इयं सा परमा मुद्रा, ज्वालिनी होमकर्म्मणि ।।

दोनों हाथों के मणिबन्ध भाग को मिलाकर अंगुलियों को ऊपर में सीधा फैलायें। तदनन्तर दोनों तर्जनियों को परस्पर स्पर्शित कर दोनों अंगूठों को तर्जनी से सटा देने पर ज्वालिनी मुद्रा बनती है।[32]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य

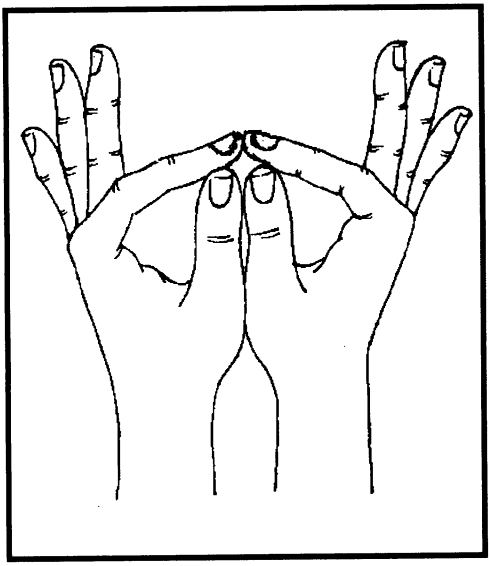

ज्वालिनी मुद्रा

केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– पाचन संस्थान, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

9. ज्ञान मुद्रा

बौद्धिक क्षमता एवं सम्यग्ज्ञान का अभिवर्द्धन करने वाली मुद्रा ज्ञान मुद्रा कहलाती है।

विधि

शिलष्टाग्रेऽङ्गुष्ठ तर्जन्यौ, प्रसायूर्यान्याः प्रयोजयेत् ।
पार्श्वस्याभिमुखी सेयं, ज्ञानमुद्रा प्रकीर्तिता ।।

दाहिना अंगूठा और तर्जनी के अग्रभागों को परस्पर संयुक्त करें। फिर शेष अंगुलियों को एक साथ उर्ध्वदिशा में फैलाकर हथेली को स्वयं के सामने स्थिर रखना ज्ञान मुद्रा है।[33]

10. पुस्तक मुद्रा

यह मुद्रा पुस्तक प्रिय अथवा पुस्तकधारी देवी-देवताओं को प्रदर्शित की जाती है। इसे सरस्वती की मुद्रा भी कह सकते हैं क्योंकि उसके हाथ में हमेशा पुस्तक रहती है।

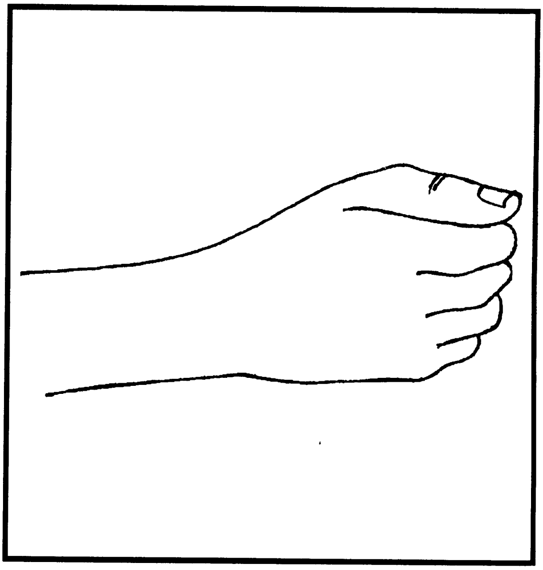

पुस्तक मुद्रा

विधि

वाममुष्टिः स्वाभिमुखी बद्ध्वा पुस्तकमुद्रिका।

बायें हाथ की अंगुलियों को स्वयं के अभिमुख मुट्ठी रूप में बांध देना पुस्तक मुद्रा है।[34]

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

11. व्याख्यान मुद्रा

जिस मुद्रा में संस्थित होकर प्रवचन दिया जाता है उसे व्याख्यान मुद्रा कहा गया है।

विधि

श्लिष्टाग्रेङ्गुष्ठतर्जन्यौ, प्रसार्यान्याः प्रदर्शयेत्।
प्रयोज्याभिमुखं सैषा, मुद्रा व्याख्यान संज्ञिता।।

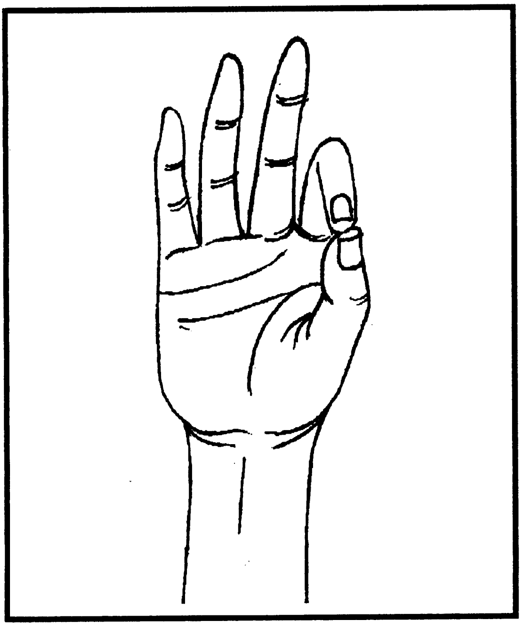

व्याख्यान मुद्रा

अंगूठा और तर्जनी के अग्र भागों को स्पर्शित कर शेष अंगुलियों को फैलाते हुए हथेली को स्वयं की ओर अभिमुख करना व्याख्यान मुद्रा है।[35]

लाभ

चक्र– अनाहत चक्र **तत्त्व–** वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली।

12. लक्ष्मी मुद्रा

लक्ष्मी, हिन्दुओं की एक प्रसिद्ध देवी, विष्णु की पत्नी और धन की अधिष्ठात्री मानी जाती है।[36] यह मुद्रा लक्ष्मी देवी की सूचक है। इस मुद्रा के द्वारा लक्ष्मी का रूप दर्शाया जाता है। लक्ष्मी मुद्रा सर्व सम्पत्तियों को प्रदान करती है।

विधि

चक्रमुद्रां तथा बद्ध्वा, मध्यमे द्वे प्रसार्य्य च।
कनिष्ठिके तथानीय, तदग्रेंगुष्ठकौ क्षिपेत्।
लक्ष्मी मुद्रा परा ह्येषा, सर्व्वसम्पत् प्रदायिका।।

सबसे पहले चक्र मुद्रा को बांधकर दोनों मध्यमाओं को फैलायें, फिर अनामिका और कनिष्ठिकाओं के बीच में से दोनों अंगुष्ठों को निकालने पर लक्ष्मी मुद्रा बनती है।[37]

13. पाश मुद्रा

सामान्यतया बन्धन को पाश कहते हैं। इस मुद्रा में दोनों तर्जनियों को प्रगाढ़ रूप से दबाया जाता है अत: इसे पाश मुद्रा कहा गया है।

विधि

वाममुष्टिस्थतर्जन्या, दक्षमुष्टिस्थतर्जनीम्।
संयोज्याङ्गुष्ठकाग्राभ्यां, तर्जन्यग्रे स्वके क्षिपेत्।
एषा पाशस्य मुद्रेति, विद्वद्भिः परिकीर्तिता।

दोनों हाथों को मुट्ठी रूप में बांधकर बायीं तर्जनी को दायीं तर्जनी से ग्रथित करें, फिर अंगूठों के अग्रभाग से तर्जनियों के अग्रभागों को दबायें, फिर दायीं तर्जनी के अग्रभाग को किंचित पृथक करने पर पाश मुद्रा बनती है।[38]

14. दुर्गा मुद्रा

यह मुद्रा दुर्गा देवी की सूचक है। दुर्गा देवी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से यह मुद्रा की जा सकती है।

विधि

मुष्टिं बद्ध्वा कराभ्यां तु, वामस्योपरि दक्षिणम्।
कृत्वा शिरसि सम्पूज्या, दुर्गामुद्रेयमीरिता।

दोनों हाथों को मुट्ठी रूप में बांधकर दाहिनी मुट्ठी को बायीं पर रखें। फिर उन्हें सिर से स्पर्शित करना दुर्गा मुद्रा कहलाती है।[39]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि, जल एवं वायु तत्त्व

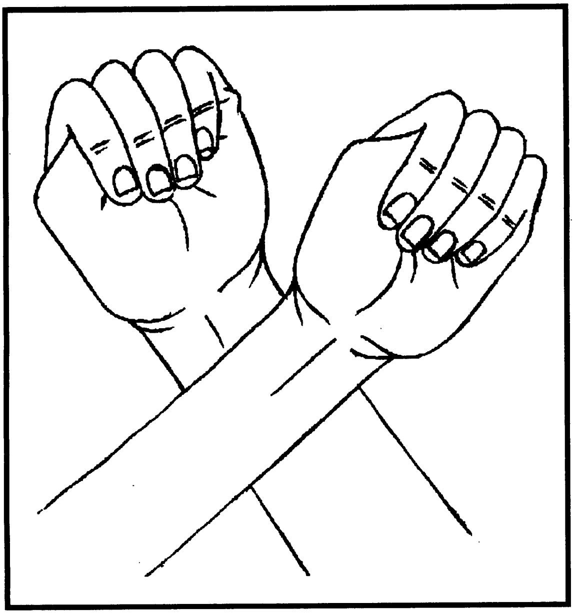

दुर्गा मुद्रा

ग्रन्थि– एड्रीनल, पैन्क्रियाज, प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, स्वर तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, नाक, कान, गला, मुँह आदि।

15. गणपति मुद्रा

यह मुद्रा गणपति की पूजा अथवा उस देव को प्रसन्न करने के मनोभाव से की जाती है। यह गणपति के स्वरूप की सूचक भी हो सकती है।

इस मुद्रा का प्रयोग करने से समस्त प्रकार की सिद्धियाँ हासिल होती है।

विधि

मुखात्प्रलम्बितं हस्तं, कृत्वा संकुचितांगुलिम् ।
मध्या तर्जनिगताग्रांगुष्ठं, चाधः स्थमध्यमम् ।
कुर्य्यानमुद्रा गणेशस्य, प्रोक्तेयं सर्व्वसिद्धिदा ।।

दोनों हाथों को एक-दूसरे के सम्मुख करते हुए अंगुलियों को भीतर की तरफ मोड़ें, फिर तर्जनी और मध्यमाओं के बीच दोनों अंगूठों को इस तरह रखें कि अंगूठों का अग्रभाग थोड़ा बाहर की तरफ निकला हुआ रहे तब गणपति मुद्रा बनती है।[40]

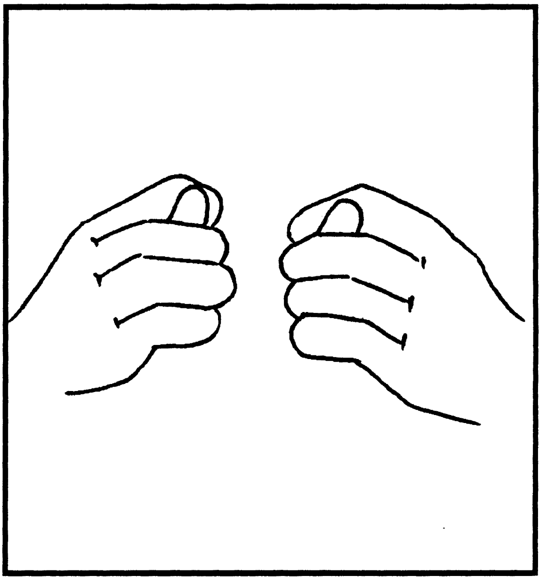

गणपति मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क आदि।

16. विघ्न मुद्रा

किसी कार्य के बीच में पड़ने वाली अड़चन, रूकावट या बाधा विघ्न कहलाता है। यह मुद्रा विघ्न निवारणार्थ अथवा विघ्न प्रिय देवी-देवताओं को शान्त करने हेतु दर्शायी जाती है।

विधि

तर्जनीमध्यमासन्धि, निर्गतांगुष्ठमुष्टिका ।
अधोमुखी दीर्घरूपा, मध्यमा विघ्नमुद्रिका ।।

दोनों हाथों को मुट्ठी रूप में बनाकर तर्जनी और मध्यमाओं के बीच अंगूठों को इस तरह रखें कि अंगूठों का अग्रभाग थोड़ा बाहर फैला हुआ रहें, फिर दोनों मध्यमाओं को अधोमुख कर देने पर विघ्न मुद्रा बनती है।[41]

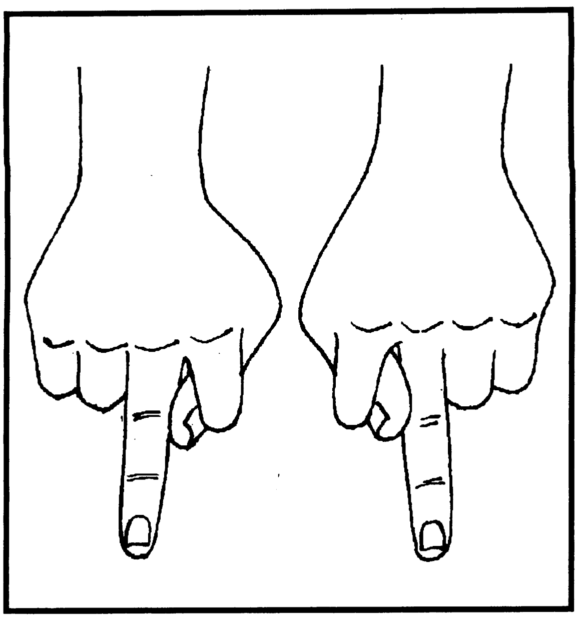

विघ्न मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँखें।

17. अब्ज मुद्रा

अब्ज का अर्थ कमल भी है। यहाँ अब्ज मुद्रा कमल की सूचक है।

विधि

करौ तु संमुखौ कृत्वा, संहतावुन्नताङ्गुली ।
तलान्तमिलितांगुष्ठौ, कुर्य्यादेषाऽब्जमुद्रिका ।।

दोनों हाथों को आमने-सामने करके सम्मिलित अंगुलियों को ऊपर उठायें। फिर हथेली के अन्तिम तल पर दोनों अंगूठों को मिलाए हुए रखना अब्ज मुद्रा है।[42]

18. बिम्ब मुद्रा

यहाँ बिम्ब शब्द का अभिप्राय प्रतिमा है। इस मुद्रा के द्वारा प्रतिमा का प्रतीकात्मक चिह्न दर्शाया जाता है।

विधि

पद्माकारौ करौ कृत्वा, अविश्लिष्टे तु मध्यमे ।
अंगुल्यौ धारयेत्तस्मिन्, बिम्बमुद्रेति सोच्यते ।।

दोनों हाथों को पद्ममुद्रा में निर्मित कर मध्यमाओं को आपस में स्पर्शित किये बिना अंगुलियों को प्रदर्शित करना बिम्ब मुद्रा है।[43]

19. सप्तजिह्वा मुद्रा

यहाँ सप्तजिह्वा से तात्पर्य अग्नि देवता हो सकता है, क्योंकि अग्नि की सात जिह्वा मानी जाती है अतः यह मुद्रा अग्नि देवता की सूचक है।

इस मुद्रा के द्वारा वैश्वानर को वश में किया जाता है।

विधि

मणिबन्धस्थितौ कृत्वा, प्रसृताङ्गुलिकौ करौ ।
कनिष्ठांगुष्ठयुगले, मिलित्वान्याः प्रसारयेत् ।
सप्तजिह्वारव्यमुद्रेयं, वैश्वानरवशंकरी ।।

फैली हुई अंगुलियों वाले दोनों हाथों के मणिबन्ध को स्थिर कर अंगूठा और कनिष्ठिका के अग्रभागों को मिलायें तथा शेष अंगुलियों को सामने की तरफ प्रसरित करने पर सप्तजिह्वा मुद्रा बनती है।[44]

लाभ

चक्र– मणिपुर, आज्ञा एवं विशुद्ध चक्र **तत्त्व–** अग्नि, आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, पीयूष, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि

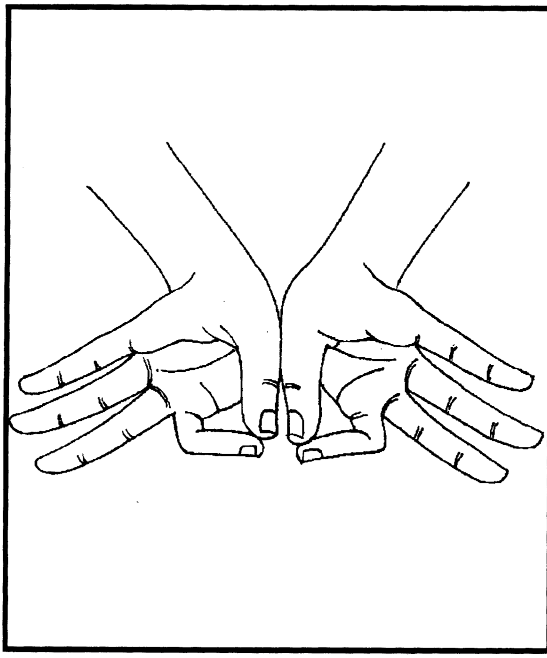

सप्तजिह्वा मुद्रा

केन्द्र– तैजस, दर्शन एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत, यकृत, तिल्ली, आँतें, स्नायुतंत्र, निचला मस्तिष्क, कान, नाक, गला, मुँह एवं स्वर यंत्र।

20. मृग मुद्रा (प्रथम)

मृग नाम की मुद्रा का वर्णन कर चुके हैं। तत्सम्बन्धी आवश्यक जानकारी वहाँ से प्राप्त करनी चाहिये।

विधि

मिलित्वानामिकांगुष्ठ, मध्यमाग्राणि योजयेत् ।
शिष्टांगुल्युच्छ्रिते कुर्य्यनि मृगमुद्रेयमीरिता ।

अंगूठा और अनामिका के अग्रभागों को परस्पर मिलाकर उन पर मध्यमा को रखें तथा शेष अंगुलियों को ऊपर की ओर सीधा रखने पर मृग मुद्रा बनती है।[45]

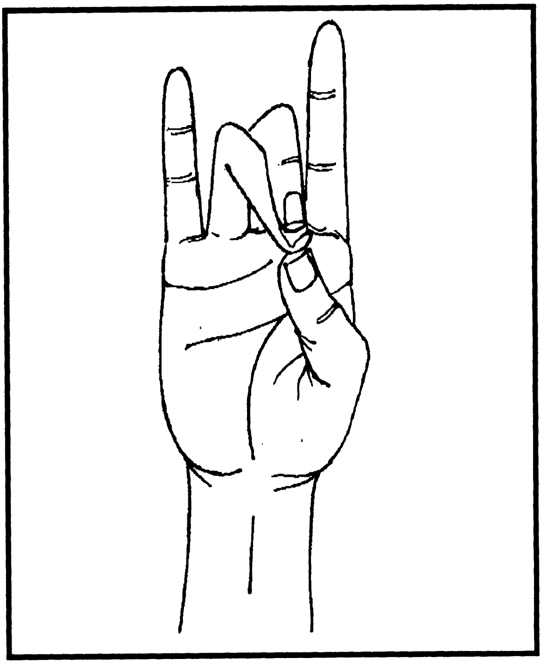

मृग मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**–पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, स्नायु तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मस्तिष्क।

21. गदा मुद्रा

गदा एक शस्त्र का नाम है। इस मुद्रा के द्वारा शस्त्र विशेष को दर्शाया जाता है। यह मुद्रा भोग और योग उभय समृद्धियों को प्रदान करती है।

विधि

अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ, कृत्वा तु ग्रथितांगुलीः ।
अंगुल्यौ मध्यमे भूयः, संलग्ने सुप्रसारिते ।।
गदामुद्रेयमाख्याता, भुक्तिभुक्तिकरी तथा ।

दोनों हाथों को एक-दूसरे के अभिमुख कर अंगुलियों को ग्रथित करें। फिर दोनों मध्यमाओं को परस्पर सम्मिलित कर सामने की ओर फैला देने पर गदा मुद्रा बनती है।[46]

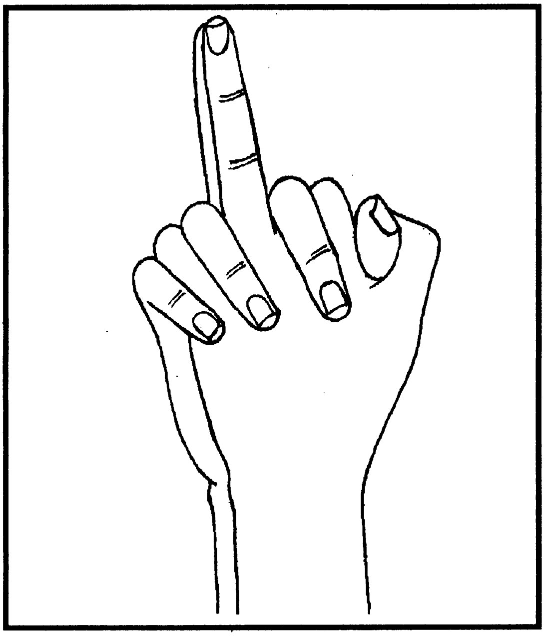

गदा मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**– जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र**– स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली।

22. श्रीवत्स मुद्रा

विष्णु का एक नाम श्रीवत्स है। विष्णु के वक्षःस्थल पर अंगुष्ठ प्रमाण श्वेत बालों का दक्षिणावर्त्त चिह्न भी श्रीवत्स कहलाता है। इन अर्थों के अनुसार यह मुद्रा विष्णु की सूचक है।[47]

विधि

अन्योन्य पृष्ठकरयो, र्मध्यमानामिकांगुली ।
अंगुष्ठेन तु बध्नीयात् कनिष्ठामूलसंश्रिते ।।
तर्जन्यौ कारयेदेषा, मुद्रा श्रीवत्ससंज्ञिका ।

दोनों हथेलियों को आमने-सामने करें। फिर दोनों मध्यमाओं और अनामिकाओं को किंचित झुकाते हुए उन्हें अंगूठों से आक्रमित करें, फिर दोनों तर्जनियों को अपनी-अपनी कनिष्ठिका के मूल भाग में लगाने पर श्रीवत्स मुद्रा बनती है।[48]

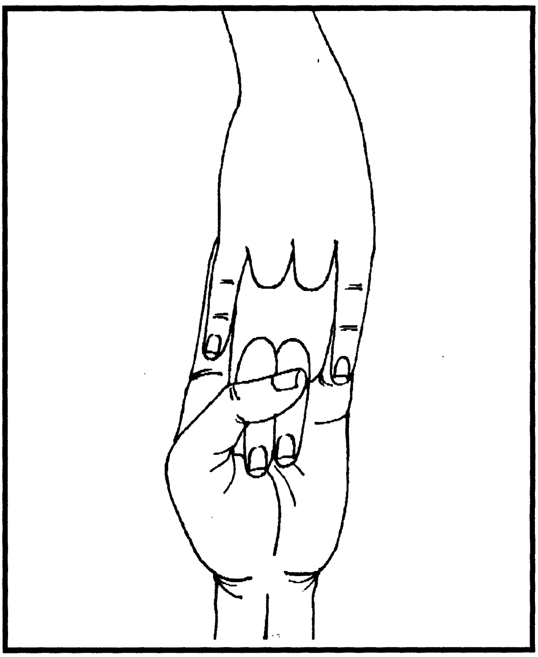

श्रीवत्स मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, भुजाएँ, फेफड़ें, रक्त संचरण प्रणाली आदि।

23. कौस्तुभ मुद्रा

पुराण के अनुसार एक रत्न, जो समुद्र मंथन के समय प्राप्त हुआ था और जिसे विष्णु अपने वक्षस्थल पर पहने रहते हैं वह कौस्तुभ कहलाता है।[49] यह मुद्रा कौस्तुभ रत्न की सूचक है।

विधि

अनामापृष्ठ संलग्ना, दक्षिणस्य कनिष्ठिका।
कनिष्ठिकान्या बध्नीया दनामादक्षतर्जनीम्।।
गृहीत्वा दक्षिणांगुष्ठ, मध्यमानामिकात्रयम्।
उच्छ्रयित्वा तत्र वामे, तर्जनीमध्यमे न्यसेत्।
दक्षिणे मणिबन्धे च, वामांगुष्ठं तु योजयेत्।
मुद्रेयं कौस्तुभस्योक्ता, दर्शनीया प्रयत्नतः।।

दायें हाथ की कनिष्ठिका को अनामिका के पृष्ठभाग पर रखें, फिर बायीं कनिष्ठिका को दायीं अनामिका एवं तर्जनी के साथ बांध दें, फिर दायें हाथ का अंगूठा, मध्यमा और अनामिका को ग्रहण कर वहाँ बायीं तर्जनी और मध्यमा रखें। फिर बायें अंगूठे को दाहिने मणिबन्ध से जोड़ने पर कौस्तुभ मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा प्रयत्न पूर्वक दिखायी जाती है।[50]

24. वनमाला मुद्रा

हिन्दी कोश में वनमाला शब्द के अनेक अर्थ हैं जैसे– वन के फूलों की माला, सब ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के फूलों से निर्मित माला, जो घुटने तक लंबी होती है और जिसे श्री कृष्ण धारण करते हैं।[51]

यहाँ वनमाला मुद्रा से तात्पर्य श्री कृष्ण द्वारा धारण की गई माला है। इस मुद्रा के द्वारा भगवान कृष्ण को वनमाला अर्पण करने के भाव प्रदर्शित किये जाते हैं।

विधि

स्पृशेत्कण्ठादि पादान्तं, तर्जन्यांगुष्ठनिष्ठया।
कर द्वयेन मालावन, मुद्रेयं वनमालिका।।

दोनों हाथों की तर्जनी और अंगूठों को परस्पर में मिलायें, फिर उनके द्वारा

ग्रीवा से लेकर पाद-पर्यन्त शरीर का माला के समान स्पर्श करने पर वनमालिका मुद्रा बनती है।[52]

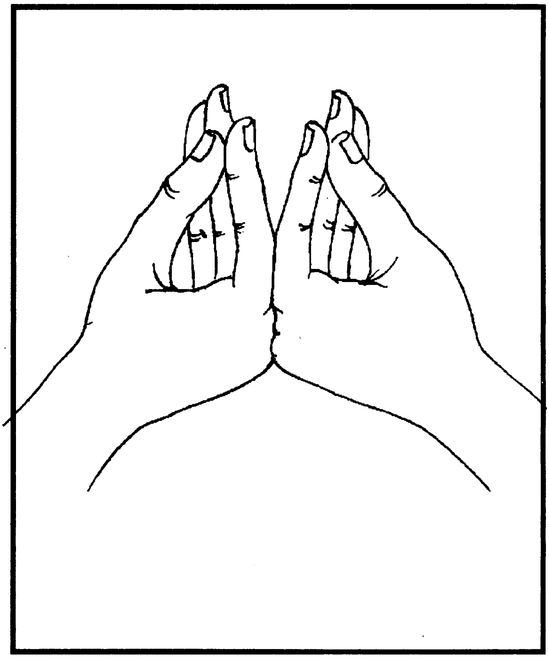

वनमाला मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

25. हयग्रीवा मुद्रा

विधि

वामहस्ततले दक्षा, अंगुलीस्तास्त्वधोमुखीः ।
संरोप्य मध्यमां तासामुन्नम्याधो विकुंचयेत् ।।
हयग्रीवप्रिया मुद्रा, तन्मूर्त्तेरनुकारिणी ।

दाहिने हाथ की अंगुलियों को बायीं हथेली के नीचे रखें, दायें हाथ की अंगुलियाँ अधोमुख हों। बायें हाथ की मध्यमा और अनामिका से दायीं अंगुलियों को उठाते हुए मुख के पास लाकर खोल देना हयग्रीवा मुद्रा है।[53]

26. नारसिंही मुद्रा

प्रस्तुत मुद्रा भगवान विष्णु के नरसिंह अवतार को सूचित करती है तथा नरसिंह रूपधारी विष्णु की मुद्रा नारसिंही कहलाती है।

विधि

जानुमध्यगतौ कृत्वा, चिबुकोष्ठौ समावुभौ।
हस्तौ च भूमिसंलग्नौ, कम्पमानः पुनः पुनः।।
मुखं विजृम्भितं कृत्वा, लेलिहानां च जिह्विकाम्।
एषा मुद्रा नारसिंही, प्रधानेति प्रकीर्तिता।।

दोनों जाँघों के बीच में से हाथों को भूमि पर रखकर ठुड्डी और होठों का परस्पर स्पर्श करें, फिर भूमि पर रखे हुए हाथों को पुनः पुनः कम्पायमान करें तथा मुख को सामान्य स्थिति में रखते हुए जिह्वा को लेलिहाना मुद्रा की भाँति बाहर करने पर नारसिंही मुद्रा बनती है।[54]

27. नृसिंह मुद्रा

यह मुद्रा नारसिंही मुद्रा का ही प्रकारान्तर है। नरसिंह के अवतार रूप को दर्शाने वाली आकृति नृसिंह मुद्रा कही जाती है।

विधि

वामस्यांगुष्ठतो बद्ध्वा, कनिष्ठामंगुष्ठत्रयम्।
त्रिशूलवत् सन्मुखोर्ध्वं, कूर्यान् मुद्रा नृसिंहगाम्।।

बायें अंगूठे से कनिष्ठिका को बांधकर शेष तीन अंगुलियों को स्वयं की ओर ऊर्ध्व प्रसरित करना नृसिंह मुद्रा है।[55]

28. अन्त्र मुद्रा

यहाँ अन्त्र शब्द का अभिप्राय आँत या आँतड़ी से है, क्योंकि संस्कृत में आँत या आँतड़ी को अन्त्र कहते हैं। यह मुद्रा चैतसिक अवस्था के सूक्ष्मतम भावों को निवेदित करने की प्रतीक है।

विधि

अंगुष्ठाभ्यां च करयोस् तथाक्रम्य कनिष्ठिके।
अधोमुखाभिः श्लिष्टाभिः, शेषाभिर्नृहरेर्मता।।
हस्तावधोमुखौ कृत्वा, नाभिदेशे प्रसार्य्य च।
तर्जनीभ्यां नयेत् स्कन्धौ, प्रोक्तैषाऽन्त्राख्यमुद्रिका।।

दोनों अंगूठों के द्वारा दोनों कनिष्ठिकाओं को आक्रमित कर शेष अंगुलियों को नीचे की ओर नाभि के समीप ले जायें। फिर दोनों हाथों को ऊपर उठाते हुए उनकी तर्जनियों को कन्धों तक लाने पर अन्त्र मुद्रा बनती है।[56]

29. वक्त्र मुद्रा

वक्त्र शब्द का एक अर्थ है मुख, मुखाकृति।

प्रस्तुत मुद्रा के मूल पाठ में इस मुद्रा को नरसिंह का सान्निध्य करने वाली बताई गई है। इससे अवगत होता है कि यह मुद्रा नरसिंह के मुखाकृति की सूचक है।

विधि

हस्तावूर्ध्वमुखौ कृत्वा, तले संयोज्य मध्यमे।
अनामायां तु वामायां, दक्षिणां तु विनिक्षिपेत्।।
तर्जन्यौ पृष्ठतो लग्ने, अंगुष्ठौ तर्जनीश्रितौ।
वक्त्रमुद्रा भवेदेषा, नृहरेः सन्निधौ मता।।

दोनों हाथों को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए दोनों मध्यमाओं को हथेलियों के तल से संयोजित करें। फिर बायीं अनामिका को दाहिनी अनामिका से जोड़ें, फिर दोनों तर्जनियों को एक-दूसरे के पृष्ठ भाग से संयुक्त करते हुए द्वयांगुष्ठों को तर्जनी के आश्रित रखना वक्त्र मुद्रा है।[57]

30. दंष्ट्रा मुद्रा

दंष्ट्रा शब्द का अर्थ मोटे दाँत या दाढ़ है। प्रस्तुत प्रकरण में यह मुद्रा विकराल रूपधारी देवी-देवताओं को प्रशान्त करने हेतु की जाती है। इस मुद्रा को दिखाने पर विकृष्ट देवी-देवता अल्पकाल के लिए अपने उग्र स्वभाव को छोड़ देते हैं। यह मुद्रा सर्व पापों का क्षय करने के उद्देश्य से भी की जाती है।

विधि

वक्त्रमुद्रां तथा कृत्वा, तर्जनीभ्यां तु मध्यमे।
पीडयेद् दंष्ट्रमुद्रेषा, सर्वपाप प्रणाशिनी।।

वक्त्र मुद्रा बनाकर तर्जनियों से मध्यमाओं को दबाना दंष्ट्रा मुद्रा है।[58]

31. दारण मुद्रा

चीर-फाड़ करने की क्रिया अथवा चीरने-फाड़ने के अस्त्र या औजार को दारण कहते हैं।[59]

यह मुद्रा भी नरसिंह अवतार से संबंधित तथा उनके द्वारा हिरण्यकश्यप के संहार की सूचक मानी गई है।

इस मुद्रा के द्वारा दुष्ट स्वभावी देवी-देवताओं को अपने वश में किया जाता है।

विधि

मिथः संसृष्ट संमुख्योंगुलिकौ ऋज्वधोग्रकाः।
स्वस्थानसरलांगुष्ठौ, मुद्रेयं दारणा मता।।

दोनों हाथों की अंगुलियों को एक-दूसरे के साथ सम्पृक्त कर ऋजुगति से उनके अग्रभागों को अधोमुख करें तथा अंगूठों को अपने स्थान पर सीधा रखना दारण मुद्रा है।[60]

32. विष्वक्सेन मुद्रा

विष्णु का एक नाम विष्वक्सेन है। मत्स्यपुराण के अनुसार तेरहवें और विष्णु पुराण के अनुसार चौदहवें मनु को भी विष्वक्सेन कहा गया है। भगवान शिव भी इस नाम से संबोधित है।[61] यहाँ प्रस्तुत मुद्रा से अभिप्राय विष्णु अथवा शिव होना चाहिए। यह मुद्रा इन्हीं पुरुषों के स्वरूप को उजागर करती है।

विधि

नासिकाग्रसमीपस्थां, कृत्वा वामस्य तर्जनीम्।
दण्डवद्दक्षिणे कुर्याद्, दक्षिणस्य प्रदेशिनीम्।।

बायीं तर्जनी को नासाग्र के समीप स्थित करें तथा दायीं तर्जनी को दाहिनी तरफ दण्ड के समान स्थिर करने पर विष्वक्सेन मुद्रा बनती है।[62]

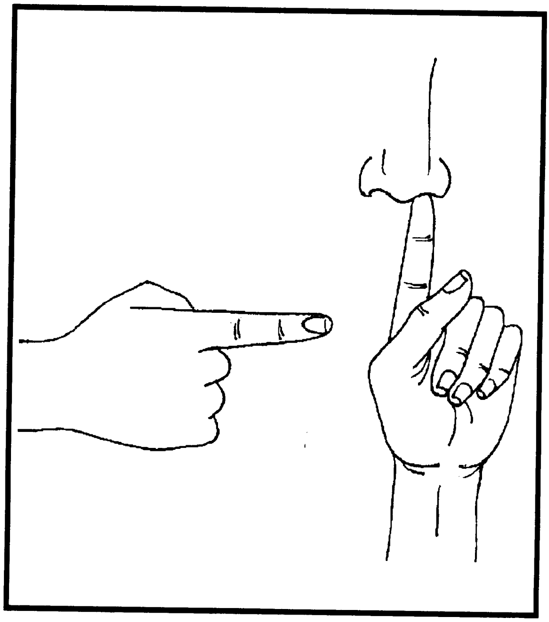

विष्वक्सेन मुद्रा

लाभ

चक्र— सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**— आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**— पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**— ज्योति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**— मस्तिष्क, स्नायु तंत्र एवं आँख।

33. वेणु मुद्रा

वेणु शब्द का एक अर्थ है बांस की बनी हुई बंसी। यह मुद्रा मुरली बजाते हुए भगवान कृष्ण की सूचक मानी गई है।

विधि

ओष्ठे वामकरांगुष्ठो, लग्नस्तस्य कनिष्ठिका।
दक्षिणांगुष्ठसंसक्ता, तत्कनिष्ठा प्रसारिता।।

तर्जनीमध्यमानामाः, किंचित् संकुच्य चालिताः।
वेणुमुद्रेह कथिता, सुगुप्ता प्रेयसी हरेः।।

उच्यतेऽच्युतमुद्राणां, भद्रा बिल्व फलाकृतिः।

बायें अंगूठे से होठ का और बायीं कनिष्ठिका से दायें अंगूठे का स्पर्श करवायें। फिर दायीं कनिष्ठिका को ऊर्ध्व दिशा में फैलाएँ तथा दायें हाथ की शेष तीनों अंगुलियों को हिलाते रहने पर वेणु मुद्रा बनती है।[63]

34. बिल्व मुद्रा

बिल्व शब्द से निम्न अर्थों का बोध होता है- बेल का पेड़, बेल का फल, छोटा तालाब या गड्ढा आदि।[64] यहाँ पर बिल्व मुद्रा का अभिप्राय बेल का फल या बेल के वृक्ष से होना चाहिए।

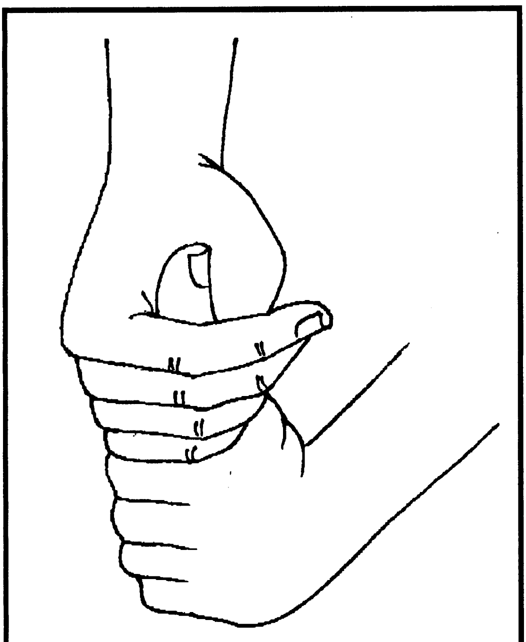

बिल्व मुद्रा

विधि

अंगुष्ठं वाममुद्दंडितमितर करां गुष्ठकेनाथ बद्ध्वा ।
तस्याग्रं पीडयित्वांगुलिभिरपि च ता, वामहस्तांगुलीभिः ।।
बद्ध्वा गाढं हृदि स्थापयतु विमलधी, र्व्याहरन् भारबीजं ।
बिल्वाख्या मुद्रिकैषा स्फुटमिह गदिता, गोपनीया विधिज्ञैः ।।

बायें अंगूठे को सीधा खड़ा करके उसे दायें अंगूठे से पकड़ें, फिर दाहिने

हाथ की अंगुलियों के द्वारा बायें अंगूठे के अग्रभाग को पीड़ित करें, फिर बायें हाथ की अंगुलियों के द्वारा दायीं अंगुलियों को अच्छी तरह से बांधकर उस मुद्रा को हृदय पर स्थापित करना बिल्व मुद्रा है।[65]

उपर्युक्त मुद्रा को प्रदर्शित करते समय कामबीज **'क्लीं'** का उच्चारण करना चाहिए। इसे ज्ञानियों ने अत्यंत गोपनीय कहा है।

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

35. काम मुद्रा

यह तन्त्र विज्ञान की एक मुख्य मुद्रा है। यह मुख्यत: विषय-वासनाओं के अधिष्ठाता कामदेव की सूचक होनी चाहिए। इस मुद्रा को देखकर सभी देवी-देवता अत्यन्त आनन्दित और प्रसन्नचित्त होते हैं।

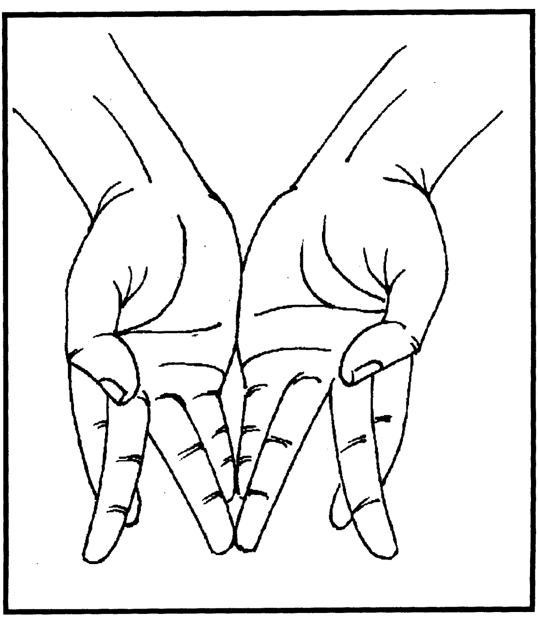

काम मुद्रा

विधि

हस्तौ तु संपुटौ कृत्वा, प्रसृतांगुलिकौ तथा ।
तर्जन्यौ मध्यमापृष्ठे, अंगुष्ठौ मध्यमान्वितौ ।।
काममुद्रेयमाख्याता, सर्वसत्त्वप्रियंकरी ।।

दोनों हाथों को सम्पुट आकार में करके अंगुलियों को सीधा फैलाएँ, फिर दोनों तर्जनियों को अपनी-अपनी मध्यमाओं के पृष्ठ भाग पर रखें, तथा दोनों अंगूठों को अपनी-अपनी मध्यमाओं पर रखना काम मुद्रा है।[66]

लाभ

चक्र– अनाहत एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** वायु एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़े, भुजाएँ, रक्तसंचरण प्रणाली, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

36. त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा

स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन तीनों लोकों को मोहित करने वाली मुद्रा त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा कही जाती है। विष्णु के एक अवतार का नाम मोहिनी है जिसे उन्होंने समुद्र मंथन के समय धारण किया था। उसका स्वरूप इतना सुंदर था कि समस्त देव-दानव उन पर मोहित हो गये थे। यह मुद्रा विष्णु के उस स्वरूप के सूचनार्थ की जाती है।

विधि

मूर्धन्यङ्गुष्ठमुष्टी द्वे, मुद्रा त्रैलोक्यमोहिनी ।

दोनों हाथों को मुट्ठी रूप में बांधकर उन्हें परस्पर में जोड़े। फिर दोनों मुट्ठियों को मस्तक के ऊपर रखना त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा है।[67]

37. परशु मुद्रा

परशु एक अस्त्र का नाम है। इस मुद्रा के द्वारा परशु नामक अस्त्र को दर्शाया जाता है।

यह मुद्रा मंगल कार्यों में विघ्न संतोषी देवी-देवताओं के निवारणार्थ की जाती है।

विधि

करे करं करयोस्तिर्यक्, संयोज्य चांगुलीः ।
संहताः प्रसृताः कुर्यान्, मुद्रेयं परशोर्मता ।।

दोनों हथेलियों को तिरछा रखें, फिर अंगुलियों को सम्मिलित कर हाथों को इस प्रकार चलायें जैसे कुल्हाड़ी चला रहे हो, उसे परशु मुद्रा कहते हैं।[68]

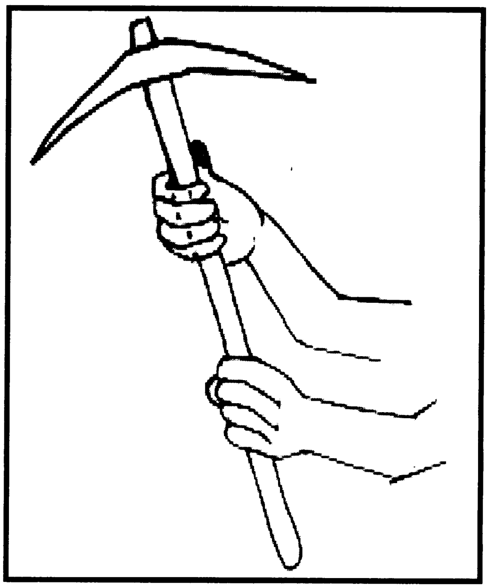

परशु मुद्रा

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, स्वर तंत्र, नाक, कान, गला एवं मुँह।

38. मृग मुद्रा (द्वितीय)

यह मुद्रा हिरण के मुखाकृति की सूचक है। इस मुद्रा के द्वारा मृग के असली स्वरूप को दर्शाने का उपक्रम किया जाता है।

विधि

मिलित्वानामिकांगुष्ठ, मध्यमाग्राणि योजयेत् ।
शिष्टांगुल्युच्छ्रिते कुर्यान्, मृगमुद्रेयमीरिता ।।

अंगूठा, मध्यमा और अनामिका के अग्रभागों को परस्पर में संयुक्त कर, शेष दोनों अंगुलियों को सीधा रखने पर मृग मुद्रा बनती है।[69]

39. अभय मुद्रा

इस मुद्रा को देखकर भयभीत व्यक्ति निर्भीक अवस्था को प्राप्त कर लेता है अतः इसका नाम अभय मुद्रा है।

भगवान महावीर, भगवान बुद्ध, भगवान कृष्ण आदि महापुरुष हर समय अभय स्थिति में रहते थे। यही कारण है कि उनके आश्रय में आने वाली पापी-पामर, क्रूर हिंसक जैसी आत्माओं का भी उद्धार हो गया। श्रेष्ठ साधक की समुपलब्धि हेतु यह मुद्रा अत्यन्त लाभकारी है।

विधि

ऊर्ध्वीकृतो वामहस्तः, प्रसृतोऽभयमुद्रिका ।

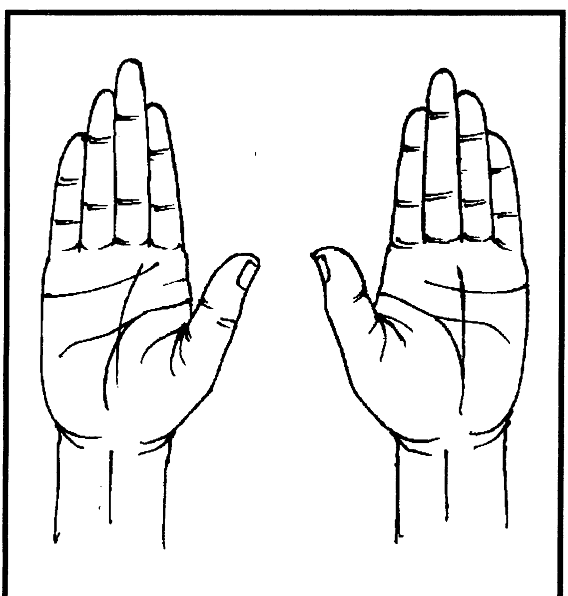

अभय मुद्रा

बायें हाथ को ऊपर की ओर उठाकर हथेली को खुली रखना अभय मुद्रा है।[70]

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

40. वर मुद्रा

इस मुद्रा का प्रयोग आशीर्वाद देने हेतु किया जाता है। यह मुद्रा पूज्य पुरुषों एवं श्रद्धेय आत्माओं के द्वारा सहज रूप से प्रयुक्त की जाती है।

जीवन विकास के क्षेत्र में वर मुद्रा का अतुलनीय महत्त्व है। लौकिक व्यवहार के कार्य भी इस मुद्रा को दर्शाने पर निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं। यहाँ इस मुद्रा का प्रयोजन आराध्य देवी-देवताओं को सन्तुष्ट कर उनसे वरदान की याचना है।

विधि

अधोमुखो दक्षहस्तः, प्रसृतो वरमुद्रिका ।।

दाहिनी हथेली को अधोमुख करते हुए अंगुलियों को प्रसरित करना वर मुद्रा कहलाता है।[71]

41. लिंग मुद्रा

यह मुद्रा शिवलिंग की प्रतीक है।

विधि

उच्छ्रितं दक्षिणांगुष्ठं, वामांगुष्ठेन बन्धयेत् ।
वामांगुली र्दक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्च वेष्टयेत् ।
लिंगमुद्रेयमाख्याता, शिवसान्निध्यकारिणी ।

दाहिने अंगूठे को ऊपर उठाकर उसे बायें अंगूठे से बांधें, फिर दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर गूंथ देने पर लिंग मुद्रा बनती है।[72]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य

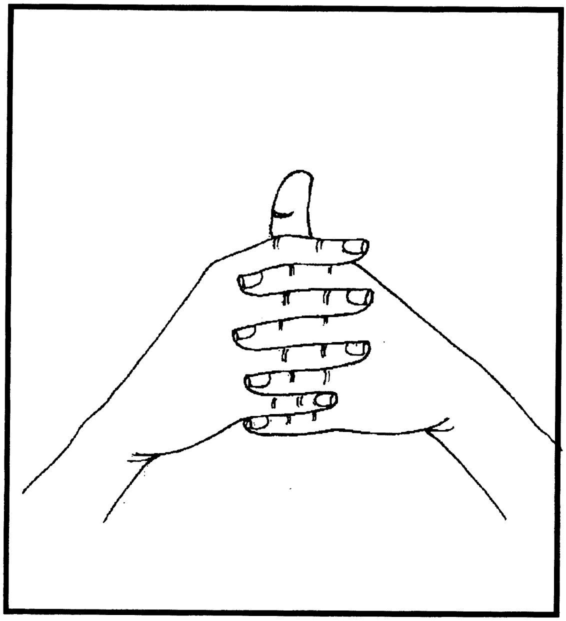

लिंग मुद्रा

केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग—** पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

42. डमरूक मुद्रा

यह मुद्रा सभी विघ्नों के उपशमनार्थ की जाती है।

विधि

मुष्टिं सुशिथिला बध्वा, ईषदुच्छ्रितमध्यमाम्।
दक्षिणादूर्ध्वमुन्नम्य, कर्ण देशे प्रचालयेत्।
एषा मुद्रा डमरुका, सर्वविघ्नविनाशिनी।

दाहिने हाथ को ढ़ीली मुट्ठी के रूप में बांधकर मध्यमा को किंचित ऊपर उठायें, फिर उस मुट्ठी को कर्ण प्रदेश के निकट लाकर हिलाने पर डमरूक मुद्रा बनती है।[73]

लाभ

चक्र— मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व—** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि—**

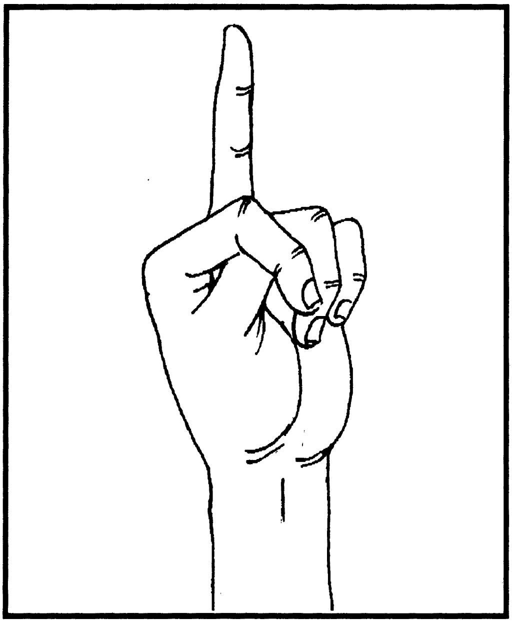

डमरूक मुद्रा

प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क।

शंकराचार्य रचित प्रपंचसार-सारसंग्रह में उपदिष्ट मुद्राएँ

प्रपंचसार-सारसंग्रह नामक कृति में पूजाराधना के समय दर्शायी जाने वाली चौपन हस्त मुद्राओं का वर्णन किया गया है। उनमें अधिकांश मुद्राएँ शारदातिलक तन्त्र पर रचित राघव भट्टीय टीका से मिलती-जुलती है। उन मुद्राओं के स्पष्टीकरण हेतु तत्सम्बन्धी मूल पाठों का उल्लेख करेंगे।

कुछ मुद्राओं में नाम समान हैं तो स्वरूप भिन्न है और कुछ मुद्राएँ अतिरिक्त हैं उन सभी का वर्णन इस प्रकार हैं–

1. आवाहनी मुद्रा

हस्ताभ्यामंजलिं कृत्वा, नामिकामूल पर्वणोः ।
अंगुष्ठौ निक्षिपेत्सेयं, मुद्रा त्वावहनी स्मृता ।।

प्रपंचसार, पृ. *463*

देखिए, शारदातिलकतंत्र 23/107

2. स्थापिनी मुद्रा

अधोमुखी त्वियं चेत्स्यात्स्थापिनी मुद्रिका मता।

वही पृ. 463

देखिये, शारदातिलक 23/108

3. सन्निधापनी मुद्रा

उच्छ्रितांगुष्ठमुष्ट्योस्तु, संयोगात्सन्निधायि (पि) नी ।।

वही पृ. 464

देखिये, शारदातिलक 23/108-109

4. संरोधिनी मुद्रा

अन्तः प्रवेशितांगुष्ठा, सैव संरोधिनी मता।

वही पृ. 464

देखिये, शारदातिलक 23/109

5. सम्मुखी मुद्रा

मुष्टिद्वयस्थितांगुष्ठौ, संमुखौ तु परस्परम्।
संश्लिष्टौवुच्छ्रिष्टां कुर्यात्, सेयं सम्मुखिमुद्रिका ।।

वही पृ. 464

देखिये, शारदातिलक 23/110

6. प्रार्थना मुद्रा

नम्रता या विनय पूर्वक कुछ कहना प्रार्थना कहलाता है। इस मुद्रा के द्वारा देवी-देवताओं के समक्ष अन्त:र्भावों का निवेदन किया जाता है।

प्रसृतांगुलिकौ हस्तौ, मिथश्लष्टौ च सम्मितौ।
कुर्यात्स्वहृदये सेयं, मुद्रा प्रार्थनिसंज्ञिका।

वही पृ. 464

दोनों हाथों की अंगुलियों को उर्ध्व दिशा में फैलाकर एवं उन्हें आपस में जोड़कर हृदय के निकट रखना प्रार्थना मुद्रा है।

7. वासुदेव मुद्रा

वसुदेव के पुत्र श्री कृष्ण वासुदेव कहलाते हैं। यह मुद्रा श्रीकृष्ण को सूचित करती है।

अंजल्यांजलिमुद्रा स्याद्वासुदेवाभिधा च सा।

वही पृ. 464

अंजलि को अंजलि से सम्मिलित करने पर वासुदेव मुद्रा बनती है।

8. लिंग मुद्रा

उच्छ्रितं दक्षिणांगुष्ठं, वामांगुष्ठेन बन्धयेत् ।
वामांगुलीर्दक्षिणाभिरंगुलीभिश्च वेष्टयेत् ।
लिंगमुद्रेयमाख्याता, शिवसान्निध्यकारिणी ।।

वही पृ. 464

देखिये, शारदातिलक 18/13 की टीका

9. विघ्न मुद्रा

तर्जनीमध्यमासन्धि निर्गतांगुष्ठ मुद्रिका ।
अधोमुखी दीर्घरूप, मध्यमा विघ्नमुद्रिका ।।

देखिये, शारदातिलक 13/4 की टीका

10. योनि मुद्रा

मिथः कनिष्ठिके बध्वा, तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकोर्ध्वगष्लिष्ट, दीर्घ- मध्यमयोरधः ।।
अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद्योनि- मुद्रेयमीरिता ।

वही पृ. 464

देखिये, शारदातिलक 4/49 की टीका

11. जानु मुद्रा

यह मुद्रा अपने नाम के अनुसार घुटनों से सम्बन्धित होनी चाहिए।

कमलाकृतिमुद्रा तु जानुमुद्रेति कीर्तिता ।।

वही, पृ. 464

कमल के समान आकृति वाली मुद्रा जानु मुद्रा कहलाती है।

12. नारसिंही मुद्रा

जानुमध्ये गतौ कृत्वा, चिबुकोष्ठौ समावृतौ ।
हस्तौ तु भूमिसंलग्नौ, कम्पमानः पुनः पुनः ।
मुखं च विकृतं कुर्यात्, लेलिहानां च जिह्वाकाम् ।
एषा मुद्रा नारसिंही, प्रधानेति प्रकीर्तिता ।

वही, पृ. 464

देखिये, शारदातिलक 16/7 की टीका

13. नृसिंही मुद्रा

वामस्यांगुष्ठतो बद्ध्वा, कनिष्ठामंगुलित्रयम्।
त्रिशूलवत्संमुखोर्ध्वा, कुर्यान्मुद्रां नृसिंहिकाम्।।

वही, पृ. 464

देखिये, शारदातिलक 16/7 की टीका

14. वाराह मुद्रा (प्रथम प्रकार)

संस्कृत में सूअर को वराह कहते हैं। विष्णु का एक अवतार वराह अवतार माना जाता है। यह मुद्रा विष्णु के वराह अवतार सम्बन्धी होनी चाहिए।

विधि

वामहस्तमथोत्तानं, कृत्वा देवस्य चोपरि।
नामयेदिति संप्रोक्ता, मुद्रा वाराहसंज्ञिता।।

वही, पृ. 464

दाहिने हाथ के पृष्ठ भाग पर बायीं हथेली को रखें। फिर बाएं हाथ की अंगुलियों को देव प्रतिमा के ऊपर खुला रखना प्रथम प्रकार की वाराह मुद्रा है।

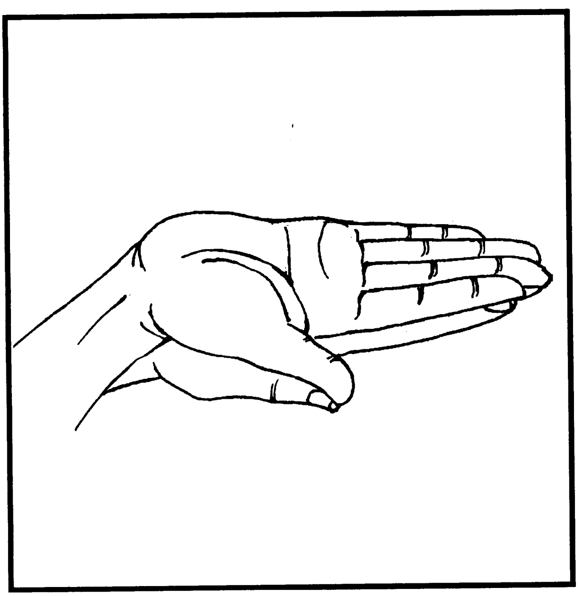

वाराह मुद्रा-1

15. वाराह मुद्रा (द्वितीय प्रकार)

विधि

दक्षहस्तं चोर्ध्वमुखं, वामहस्तमधोमुखम् ।
अंगुल्यग्रं तु संयुक्तं, मुद्रा वाराहसंज्ञिता ।।

वही, पृ. 465

दायें हाथ को ऊर्ध्वमुख तथा बायें हाथ को अधोमुख करते हुए अंगुलियों के अग्रभागों को परस्पर जोड़ना दूसरी वाराह मुद्रा है।

लाभ

चक्र– मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि, जल एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, स्वास्थ्य एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, मेरूदण्ड।

16. नृहरि मुद्रा

भगवान विष्णु का चौथा अवतार नृसिंह अवतार माना जाता है। यह मुद्रा नृसिंह अवतार को इंगित करती है।

विधि

अंगुष्ठाभ्यां च करयोरथाक्रम्य कनिष्ठिके ।
अधोमुखीभिश्शिष्टाभिः, मुद्रेयं नृहरेर्मता ।।

वही, 465

दाहिने अंगूठे से बायीं कनिष्ठिका तथा दाहिनी कनिष्ठिका से बायें अंगूठे के अग्रभागों को जोड़ते हुए शेष अंगुलियों को अधोमुख करने पर नृसिंह मुद्रा बनती है।

17. हयग्रीव मुद्रा

वामहस्ततले दक्षा, अंगुलीस्तास्त्वधोमुखीः ।
संरोध्य मध्यमां तासा, मुन्नभ्याधो विमोचयेत् ।
हयग्रीवप्रिया मुद्रा, तन्मूर्तेरनुकारिणी ।।

वही, पृ. 465

देखिये, शारदातिलक 15/72 की टीका

18 वेणु मुद्रा

यह मुद्रा श्रीकृष्ण के द्वारा बांसुरी बजाने की प्रतीक है। इस मुद्रा के माध्यम से मुरलीधर को दिग्दर्शित किया जाता है।

विधि

वेणुधारणाद्धस्तौ, कुर्यात्तिर्यङ्मुखौ भवेत्।
वेणुमुद्रा भवेदेषा, सर्वदा कृष्ण वल्लभा।

वही, पृ. 465

दोनों हाथों को बांसुरी पकड़े हुए के रूप में मुख के समीप लाना वेणु मुद्रा कहलाती है। यह मुद्रा श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय थी।

19. लक्ष्मी मुद्रा

चक्रमुद्रां तथा बध्वा, मध्यमे द्वे प्रसार्य च।
कनिष्ठिके तथानीय, पराग्रेंगुष्ठके क्षिपेत्।
लक्ष्मी मुद्रा परा ह्येषा, सर्वसंपत्प्रदायिनी।।

वही, पृ. 465

देखिये, शारदातिलक 8/4 की टीका

20. कुन्त मुद्रा

यहाँ कुन्त मुद्रा का अर्थ भाला है। इस मुद्रा में शस्त्र विशेष को महत्त्व दिया गया है। यह मुद्रा समग्र प्रकार से रक्षा करने हेतु की जाती है।

मुष्टिरूर्ध्वगतांगुष्ठा, तर्जन्यग्रे तु विन्यसेत्।
सर्वरक्षाकरा ह्येषा, कुन्द्र (न्त) मुद्रेयमीरिता।

वही, पृ. 465

21. काम मुद्रा

हनौ (स्तौ) तु संपुटौ कृत्वा, प्रसृतांगुलिकौ तथा।
तर्जन्यौ मध्यामांगुष्ठे, अंगुष्ठौ मध्यमास्थितौ।
काममुद्रेयमाख्याता, सर्वशक्तिप्रियंकरी।

वही, पृ. 465

देखिये, शारदातिलक 17/120 की टीका

22. त्रैलोक्य मोहिनी मुद्रा

मूर्ध्न्यूर्ध्वांगुष्ठमुष्टी द्वे मुद्रा त्रैलोक्यमोहिनी।।

वही, पृ. 465

देखिये, शारदातिलक 17/120 की टीका

23. दुर्गा मुद्रा

मुष्टिं बद्धा कराभ्यां च, वामस्योपरि दक्षिणम्।
कृत्वा शिरसि संयोज्य, दुर्गामुद्रेयमीरिता।।

वही, पृ. 465

देखिये, शारदातिलक 11/5 की टीका

24. गरुड़ मुद्रा

हस्तौ तु विमुखौ कृत्वा, ग्रन्थ (थ) यित्वा कनिष्ठिके।
मुखं तर्जनिके श्लिष्टे, श्लिष्टावंगुष्ठिको तथा।।

मध्यमानामिके द्वे तु, द्वौ पक्षाविह चिन्तयेत्।
एषा गारुड़ मुद्रा, स्यादशेषविषनाशिनी।।

वही, पृ. 465

देखिये, शारदातिलक 4/49 की टीका

26. गदा मुद्रा

अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ, कृत्वा तु ग्रथितांगुली।
अंगुल्यौ मध्यमे भूयः, संलग्ने सुप्रसारिते।।
गदामुद्रेयमाख्याता परा, मुक्तिकरी तथा।

वही, पृ. 466

देखिए, शारदातिलक 15/7-10की टीका।

27. अब्ज मुद्रा

करौ तु सम्मुखौ कृत्वा, सम्मुखादुन्नतांगुली।
तलान्तर्मिलितांगुष्ठौ, कूर्यादेषाब्जमुद्रिका।।

वही, पृ. 466

देखिए, शारदातिलक 14/36 की टीका।

28. मुख मुद्रा

मुख शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। यहाँ पर मुख मुद्रा से अभिप्राय किसी देवी-देवता के मुख भाग से होना चाहिये।

विधि

कनिष्ठिनामिके बध्वा, स्वांगुष्ठैनैव वामतः ।
शिष्टांगुली तु प्रसृते, संश्लिष्टे मुखमुद्रिका ।।

वही, पृ. 466

बायें हाथ के अंगूठे से कनिष्ठिका और अनामिका को बांधकर शेष अंगुलियों को फैलाने और पुनः सम्मिलित करने पर मुख मुद्रा होती है।

29. चर्म मुद्रा

तंत्रशास्त्र की एक मुद्रा, जिसमें बायें हाथ को फैलाकर अंगुलियों को सिकोड़ लेते हैं वह चर्म मुद्रा कहलाती है।

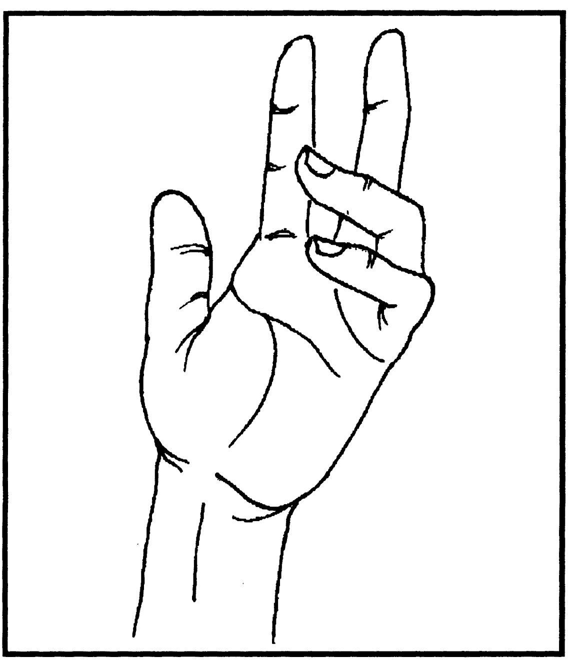

चर्म मुद्रा

विधि

वामहस्तं तथा तिर्यक्, कृत्वा चैव प्रसार्य च।
आकुंचितांगुलिं कुर्यात्, चर्ममुद्रा प्रकीर्तिता।।

वही, पृ. 466

बायें हाथ को प्रसारित करके अंगुलियों को आकुंचित करने पर चर्म मुद्रा बनती है।

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, कान, नाक, गला, मुंह, स्वर यंत्र।

30. मूसल मुद्रा

मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां, वामस्योपरि दक्षिणम्।
कुर्यान्मुसलमुद्रेयं, सर्वविघ्नप्रमर्दिनी।।

वही, पृ. 466
देखिए, शारदातिलक 4/49 की टीका

31. अस्त्र मुद्रा

अस्त्र शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न दृष्टियों से अनेक अर्थों में होता है, जैसे शत्रुओं पर चलाया जाने वाला हथियार बाण, जिसके द्वारा कोई वस्तु फेंकी जाए ऐसा धनुष जिससे शत्रु द्वारा चलायमान अस्त्रों को रोका जाए ऐसी ढाल आदि सभी अस्त्र कहलाते हैं।

यहाँ पर अस्त्र मुद्रा का प्रयोग उपद्रवजन्य देवी-देवताओं की शान्ति हेतु किया जा सकता है।

हस्तावधोमुखौ कृत्वा, नाभिदेशे प्रसार्य च।
तर्जनीभ्यां नयेत्स्कन्धं, प्रोक्तैषास्त्राख्यमुद्रिका।।

वही, पृ. 467

दोनों हाथों को अधोमुख करके नाभि प्रदेश पर प्रसारित करें। फिर दोनों तर्जनियों को कन्धे के समीप लाने पर अस्त्र मुद्रा बनती है।

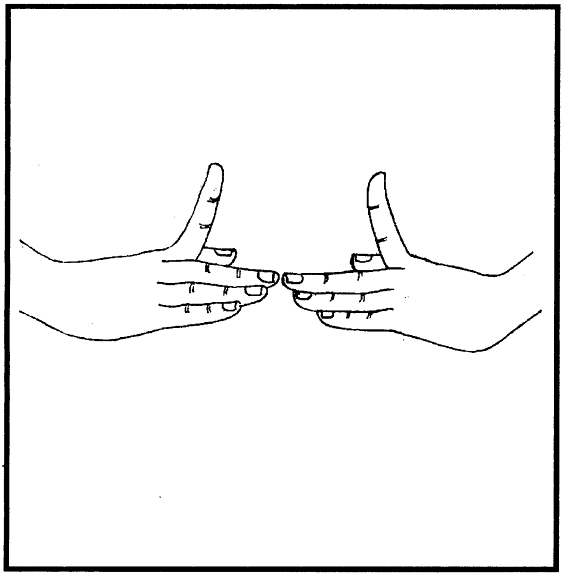

अस्त्र मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

32. चक्र मुद्रा

विधि

हस्तावूर्ध्वमुखौ कृत्वा, तले संयोज्य मध्यमे।
अनामायां तु वामायां, दक्षिणां तु विनिक्षिपेत्।।
तर्जन्यौ पृष्ठतौ लग्ना, वंगुष्ठौ तर्जनीश्रितौ।
चक्रमुद्रा भवेदेषा, नृहरेस्सन्निधौ मता।।

वही, पृ. 467

दोनों हथेलियों को अधोमुख करके हथेली के तलस्थान पर मध्यमा को जोड़ें, फिर दाहिनी अनामिका को बायीं अनामिका से जोड़ें, फिर दोनों तर्जनियों

को पृष्ठ भाग से योजित कर दोनों अंगूठों को तर्जनी के आश्रित रखने पर चक्र मुद्रा बनती है।

33. दंष्ट्रा मुद्रा

चक्र मुद्रां तथा कृत्वा, तर्जनीभ्यां तु मध्यमे।
पीडयेद्दंष्ट्रमुद्रेषा, सर्वपाप प्रणाशिनी।।

वही, पृ. 467
देखिए, शारदातिलक, 16/7 की टीका

34. श्रीवत्स मुद्रा

अन्योन्यपृष्ठकरयो, मध्यमानामिकांगुली।
अंगुष्ठेन तु बध्नीयात् कनिष्ठामूलसंश्रितौ।।
तर्जन्यौ कारयेदेषा, मुद्रा श्रीवत्ससंज्ञिता।

वही, पृ. 467
देखिए, शारदातिलक 15/22 की टीका।

35. कौस्तुभ मुद्रा

अनामापृष्ठसंलग्नां, दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम्।
कनिष्ठिकां च बध्नीयादना माक्षिप्ततर्जनीम्।
गृहीत्वा दक्षिणांगुष्ठ, मध्यमानामिकात्रयम्।
उच्चयित्वा तत्र वाम, तर्जनीमध्यमे न्यसेत्।
दक्षिणे मणिबन्धे च, वामांगुष्ठं च योजयेत्।।
मुद्रेयं कौस्तुभस्योक्ता, दर्शनीया प्रयत्नतः।

वही, पृ. 467
देखिए, शारदातिलक 15/22 की टीका।

36. वनमाला मुद्रा

स्पृशेत्कष्ठादिपादान्तं, तर्जांगुष्ठकनिष्ठया।
करद्वयेन मालावत्, मुद्रेयं वनमालिका।।

वही, पृ. 467
देखिए, शारदातिलक 15/22 की टीका

37. त्रिशूल मुद्रा

त्रिशूल एक प्रकार का अस्त्र है, जिसके सिर पर तीन फल होते हैं और यह महादेव का अस्त्र माना जाता है। यह मुद्रा संभवतया महादेव के अस्त्र की ही सूचक है।

अंगुष्ठेन कनिष्ठां तु, बध्वा शिष्टांगुलित्रयम्।
प्रसारयेत् त्रिशूलस्य, मुद्रेयं परिकीर्तिता।।

वही, पृ. 467

अंगूठे के द्वारा कनिष्ठिका को बांधकर शेष तीन अंगुलियों को प्रसारित करने पर त्रिशूल मुद्रा बनती है।

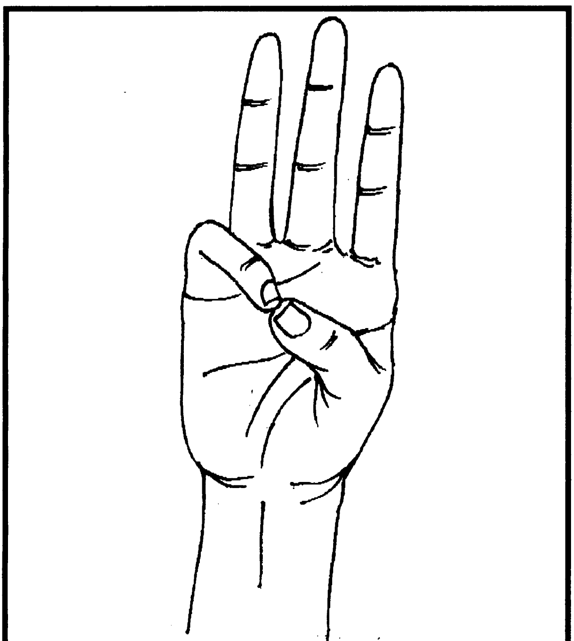

त्रिशूल मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एंव आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आँख।

38. डमरू मुद्रा

मुष्टिं त्वमिलितां बध्वा, ईषदुच्छ्रितमध्यमाम्।
दक्षिणामुर्ध्वमुन्नम्य, कण्ठ देशे प्रचालयेत्।
एषा मुद्रा डामरूका, सर्वविघ्नविनाशिनी।

वही, पृ. 468

देखिए, शारदातिलक 20/53 की टीका

39. परशु मुद्रा

तले तलं तु करयोः, तिर्यक् संयोज्य चांगुलीः।
संह (ताः) प्रसृताः कुर्यात्, मुद्रेयं परशोर्मता।।

वही, पृ. 468

देखिए, शारदातिलक 18/13 की टीका

40. मृग मुद्रा

मिलितानामिकांगुष्ठ, मध्यमाग्राणि योजयेत्।
शिष्टांगुल्युच्छ्रिते, कुर्यान्, मृगमुद्रेयमीरिता।।

देखिए, शारदातिलक 18/13 की टीका

41. खट्वांग मुद्रा

शिव के एक अस्त्र का नाम खट्वांग है। तंत्र के अनुसार इस मुद्रा को देखकर देवता बहुत प्रसन्न होते हैं।

यह मुद्रा शिव अस्त्र से सम्बन्धित अथवा तन्त्र से सन्दर्भित होनी चाहिये। मूल पाठ के अनुसार यह मुद्रा सभी पापों का नाश करने हेतु की जाती है।

पंचांगुल्यो दक्षिणस्य, मिलिता उन्नतास्तथा।
खट्वांगमुद्रा विख्याता, सर्वपापप्रणाशिनी।

वही, पृ. 468

दाहिने हाथ की सभी अंगुलियों को मिलाकर ऊपर उठाना खट्वांग मुद्रा है।

42. कापाली मुद्रा

कापाली मुद्रा से यहाँ अभिप्राय मुंडमाला धारण किये हुए देवी-देवताओं जैसे काली देवी आदि अथवा शिव से होना चाहिये।

विधि

पात्रवत् वामहस्तं च, कृत्वांके वामके तथा।
निधायोच्छ्रित वत्कुर्यात्, मुद्रा कापालिकी स्मृता।।

वही, पृ. 468

बायें हाथ को पात्रवत बनाकर उसे अपनी बायीं गोद में इस तरह रखें कि वह ऊपर उठाया हुआ जैसा दर्शित हो, तब कापाली मुद्रा बनती है।

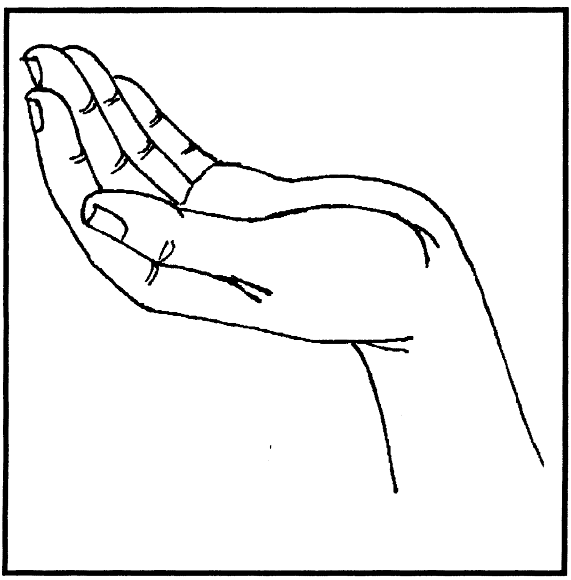

कापाली मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, अनाहत एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व**– जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन, थायमस, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति, स्वास्थ्य, आनंद एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचार प्रणाली, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र आदि।

43. धेनु मुद्रा (प्रथम)

वामस्य मध्यमाग्रं तु, तर्जन्यग्रे नियोजयेत्।
अनामां कनिष्ठिकां च, तस्यांगुष्ठेन पीडयेत्।
दर्शयेद्दक्षिणस्कन्धे, धेनुमुद्रेयमीरिता।।

वही, पृ. 468

बायें हाथ की मध्यमा के अग्रभाग को तर्जनी के अग्रभाग से जोड़ें, फिर अंगूठे से अनामिका और कनिष्ठिका को दबायें, फिर उसे दाहिने कन्धे के समीप लाकर प्रदर्शित करने पर धेनु मुद्रा बनती है।

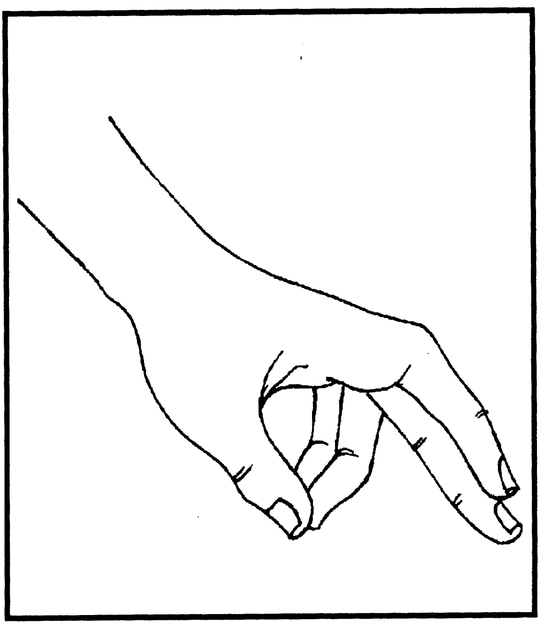

धेनु मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** जल एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मेरूदण्ड, पाँव।

44. बाण मुद्रा

एक लम्बा और नुकीला अस्त्र, जो धनुष पर चढ़ाकर चलाया जाता है जैसे तीर आदि बाण कहलाते हैं।

बाण शब्द के कई अर्थ हैं किन्तु यहाँ बाण मुद्रा से तात्पर्य नुकीला अस्त्र है। इस मुद्रा को दर्शाने पर दुष्ट एवं उपद्रवी देवी-देवता सावधान हो जाते हैं तथा थोड़ी देर के लिए अपने क्रूर स्वभाव को छोड़ देते हैं।

विधि

दक्षमुष्टिस्थतर्जन्या, दीर्घया बाणमुद्रिका ।

वही, पृ. 468

दाहिने हाथ को मुट्ठी रूप में बाँधकर तर्जनी को सीधी रखने पर बाण मुद्रा बनती है।

45. नाराच मुद्रा

लोहे का बाण या तीर नाराच कहलाता है। इस मुद्रा का प्रयोग विघ्नोपशमन हेतु किया जाता है।

विधि

अंगुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां, स्फोटो नाराचमुद्रिका ।

वही, पृ. 468

दाहिना अंगूठा और तर्जनी के अग्रभागों के घर्षण से आवाज करना अथवा आवाज होना नाराच मुद्रा है।

46. धेनु मुद्रा (द्वितीय)

हस्तद्वये त्वधोवक्त्रे, संमुखे च परस्परम् ।
वामांगुलीर्दक्षिणानामांगुलीनां च सन्धिषु ।
प्रवेश्य मध्यमांगुल्यौ, तर्जन्योस्तु प्रयोजयेत् ।।
कनिष्ठे द्वे नाभिकाभ्यां, युंज्यात्सा धेनुमुद्रिका ।

वही, पृ. 468

दोनों हाथों को अधोमुख करके एक-दूसरे के सम्मुख रखें, फिर बायें हाथ की अंगुलियों को दायीं अंगुलियों की सन्धियों में प्रविष्ट करवायें अर्थात सभी अंगुलियों को आपस में गूंथ दें, फिर मध्यमा अंगुलियों को दोनों तर्जनी से

जोड़ने पर तथा कनिष्ठिका अंगुलियों को दोनों अनामिका से संयुक्त करने पर दूसरी धेनु मुद्रा बनती है।

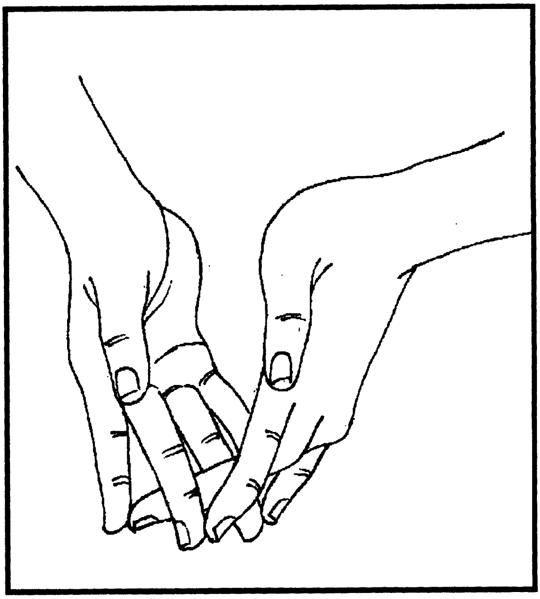

धेनु मुद्रा-2

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, हृदय, भुजाएँ, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र।

47. इक्षुचाप मुद्रा

एक प्रकार का धनुष, कमान इक्षुचाप कहलाता है। यह मुद्रा अस्त्र विशेष से सम्बन्धित है। इस मुद्रा का प्रयोग पूर्ववत विघ्न हर्त्ता, पाप संहर्त्ता एवं मंगलकर्त्ता है।

विधि

वामहस्तांगुलिचतुष्कं, मुष्टीकृत्य तदंगुष्ठं ऋजुतः ।
उर्ध्वीकृत्य वामपार्श्वे, इक्षुचापमुद्रां प्रदर्शयेत् ।

वही, पृ. 469

बायें हाथ की चार अंगुलियों से मुट्ठी बनाते हुए अंगूठे को सरल रूप से ऊपर की ओर रखें, फिर वाम पार्श्व में प्रदर्शित करने पर इक्षुचाप मुद्रा बनती है।

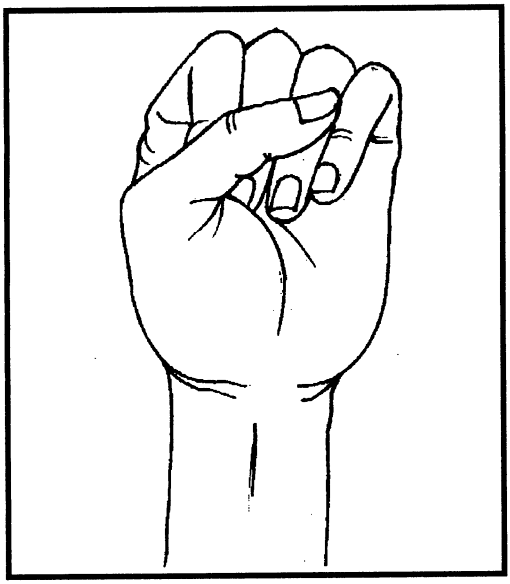

इक्षुचाप मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ीतंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, स्नायुतंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

48. पंचपुष्पबाण मुद्रा

पंचपुष्प अर्थात देवी पुराण के अनुसार चंपा, आम्र, शमी, कमल और कनेर ये पाँच फूल देवताओं को प्रिय हैं। पुष्पबाण अर्थात कामदेव।

यहाँ पर पंचपुष्पबाण से अभिप्राय कामदेव के द्वारा काम की जागृति के लिए की जाने वाली पुष्पों की बाण वर्षा हो सकता है।

इस मुद्रा को दिखाकर देवों को प्रसन्न किया जाता है।

विधि

हस्तद्वये सुरभिमुद्रोक्तलक्षण तदंगुल्यष्टकैः गृहीत्वा ।
अंगुष्ठद्वयमृजूकृतान्यो न्याग्रमा बध्यात् ।
एषा पंचपुष्पबाण मुद्रा दक्षिणभागे प्रदर्शयेत् ।

वही, पृ. 469

ऊपर कही गई सुरभि मुद्रा की आठों अंगुलियों के द्वारा दोनों अंगूठों के अग्रभाग को परस्पर बांधकर एवं उसे दाहिनी ओर प्रदर्शित करने पर पंचपुष्पबाण मुद्रा बनती है।

49. वर मुद्रा

अधोमुखो वामहस्तः, प्रसृतो वरमुद्रिका।

वही, पृ. 469

देखिए, शारदातिलक 18/13 की टीका

50. अभय मुद्रा

ऊर्ध्वीकृतो दक्षहस्तः प्रसृतोऽभयमुद्रिका ।।

वही, पृ. 469

देखिए, शारदातिलक 18/13 की टीका

51. अक्षमाला मुद्रा

अक्षमाला अर्थात रूद्राक्ष की माला। इस मुद्रा का सम्बन्ध रूद्राक्ष की माला से है।

विधि

अंगुष्ठतर्जनी द्वे तु, ग्रथयित्वां गुलित्रयम् ।
(प्रसा) रयेदक्षमाला, मुद्रेयं परिकीर्तिता ।।

वही, पृ. 469

दायाँ अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को संयुक्त कर शेष तीन अंगुलियों को प्रसारित करने पर अक्षमाला मुद्रा बनती है।

52. पुस्तक मुद्रा

वामहस्तं स्वाभिमुख्यं (खं) बद्धा पुस्तकमुद्रिका।

वही, पृ. 469

देखिए, शारदातिलक 6/4 की टीका

53. संहार मुद्रा

विधि

अधोमुखो वामहस्त, ऊर्ध्वास्यो दक्षहस्तकः ।
क्षिप्त्वांगुलीरंगुलीभिस्, संयोज्य परिकीर्तयेत् ।।

वही, पृ. 469

बायें हाथ को अधोमुख और दायें हाथ को ऊर्ध्वाभिमुख करें। फिर दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर गूंथकर घुमाना संहार मुद्रा है।

उपरोक्त अध्याय में हिन्दू परम्परा के क्रियाकांड मूलक प्रचलित ग्रन्थों से प्राप्त मुद्राओं का वर्णन किया गया है। इनमें मुख्य रूप से देवी-देवताओं की साधना-आराधना से सम्बन्धित मुद्राओं का वर्णन है। यह वर्णन दैविक साधना से आंतरिक जुड़ाव में सहयोगी बने, हमारी दैनिक उपासना में प्रगति करें तथा स्वस्थ तन और मन की प्राप्ति करवाए। इसी में इस अध्याय की सफलता है।

सन्दर्भ-सूची

1. *कुलार्णवतन्त्र, 17/32*
2. *क्रियापाद, 1/6*
3. *वही, 1/7*
4. *वही, 1/8-9*
5. *वही, 1/10*
6. *वही, 1/11-12*
7. *'देवं पूजार्थमाह्वानमावाहन मिति स्मृतम् ।' कुलार्णवतन्त्र, 17/90*
8. *हिन्दी शब्द सागर, भा. 1, पृ. 479*
9. *शारदातिलक तन्त्र, 23/107*
10. *'आसने सन्निवेशः स्यात् स्थापनं'। कुलार्णवतन्त्र, 17/90*
11. *शारदातिलक तन्त्र, 23/108*
12. *'अन्योन्यसम्मुखाकारः सन्निधापनमीरितम्।' कुलार्णवतन्त्र, 17/91*
13. *शारदातिलक तन्त्र, 23/108-109*
14. *'यत्र कुत्राप्यचलनं सन्निरोधनमीरितम् ।' कुलार्णवतन्त्र, 17/91*
15. *शारदातिलक तन्त्र, 23/109*
16. *वही, 23/110*

17. (क) शारदातिलक तन्त्र, 23/110 (ख) कुलार्णवतन्त्र 17/92
18. 'आच्छादनं समुद्दिष्टमवगुण्ठन मीरितम्।' कुलार्णवतन्त्र, 17/92
19. शारदातिलक तन्त्र, 23/111
20. वही, 23/112
21. वही, 23/113-114
22. हिन्दी शब्द सागर, भा. 8, पृ. 3982
23. शारदातिलक तन्त्र, 4/49 की टीका
24. वही, 4/49 की टीका
25. वही, 4/49 की टीका
26. वही, 4/49 की टीका
27. बुद्धिज्म एण्ड लामाइज्म ऑफ तिब्बत, पृ. 395-96
28. शारदातिलक तन्त्र, 4/49 की टीका
29. कुलार्णवतन्त्र, 17/73
30. शारदातिलक तन्त्र, 4/100-102 की टीका
31. हिन्दी शब्द सागर, भा. 4, पृ. 1817
32. शारदातिलक तन्त्र, 5/18-19 की टीका
33. वही 6/4 की टीका
34. वही, 6/4 की टीका
35. वही, 7/82 की टीका
36. हिन्दी शब्द सागर, भा. 8, पृ. 4231
37. शारदातिलक तन्त्र, 8/4 की टीका
38. वही, 8/4 की टीका
39. वही, 11/5 की टीका
40. वही, 13/4 की टीका
41. वही, 13/4 की टीका
42. वही, 14/36 की टीका
43. वही, 14/36 की टीका
44. वही, 14/95 की टीका
45. वही, 14/131 की टीका
46. वही, 15/8-10 की टीका

47. *हिन्दी शब्द सागर, भा.1, पृ. 4816*
48. *शारदातिलक तन्त्र, 15/22 की टीका*
49. *हिन्दी शब्द सागर, भा.2, पृ. 1081*
50. *शारदातिलक तन्त्र, 15/22 की टीका*
51. *हिन्दी शब्द सागर, भा.9, पृ. 4365*
52. *शारदातिलक तन्त्र, 15/22 की टीका*
53. *वही, 15/72 की टीका*
54. *वही, 16/7 की टीका*
55. *वही, 16/7 की टीका*
56. *वही, 16/7 की टीका*
57. *वही, 16/7 की टीका*
58. *वही, 16/7 की टीका*
59. *हिन्दी शब्द सागर, भा. 5, पृ. 2260*
60. *शारदातिलक तन्त्र, 16/50 की टीका*
61. *हिन्दी शब्द सागर, भा. 9, पृ. 4565*
62. *शारदातिलक तन्त्र, 17/72 की टीका*
63. *वही, 17/89 की टीका*
64. *हिन्दी शब्द सागर, भा. 9, पृ. 3511*
65. *शारदातिलक तन्त्र, 17/89 की टीका*
66. *वही, 17/120 की टीका*
67. *वही, 17/120 की टीका*
68. *वही, 18/13 की टीका*
69. *वही, 18/13 की टीका*
70. *वही, 18/13 की टीका*
71. *वही, 18/13 की टीका*
72. *वही, 18/13 की टीका*
73. *वही, 20/53 की टीका*

अध्याय-4

गायत्री जाप साधना एवं संध्या कर्म आदि में उपयोगी मुद्राओं की रहस्यमयी विधियाँ

संध्या कर्म, गायत्री जाप एवं मंत्र साधना आदि वैदिक परम्परा के प्रसिद्ध विधान है। सनातन धर्म का प्रत्येक आराधक प्राय: इनसे परिचित है। इसी प्रमुखता को ध्यान में रखते हुए चौथे अध्याय में गायत्री पूजन सम्बन्धी मुद्राओं का स्वतंत्र वर्णन किया गया है। गायत्री मंत्र के चौबीस वर्ण है, प्रत्येक वर्ण के लिए एक स्वतंत्र मुद्रा का निर्देश है। परन्तु सामान्यतया गायत्री साधना के समय 32 मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है जो गायत्री देवी की सिद्धि में सहायक होती हैं। इन मुद्राओं में 24 मुद्राएँ गायत्री जाप से पूर्व तथा 8 मुद्राएँ गायत्री जाप के पश्चात की जाती है। उन मुद्राओं का स्वरूप इस प्रकार है-

1. सुमुखम् मुद्रा 2. सम्पुटम् मुद्रा 3. विततम् मुद्रा 4. विस्तृतम् मुद्रा 5. द्विमुखम् मुद्रा 6. त्रिमुखम् मुद्रा 7. चतुर्मुखम् मुद्रा 8. पंचमुखम् मुद्रा 9. षण्मुखम् मुद्रा 10. अधोमुख मुद्रा 11. व्यापकांजलिकम् मुद्रा 12. शकटम् मुद्रा 13. यमपाशम् मुद्रा 14. ग्रथितम् मुद्रा 15. सन्मुखोन्मुखम् मुद्रा 16. प्रलम्ब: मुद्रा 17. मुष्टिक: मुद्रा 18. मत्स्य मुद्रा 19. कूर्म मुद्रा 20. वराहक: मुद्रा 21. सिंहक्रान्तम् मुद्रा 22. महाक्रान्तम् मुद्रा 23. मुद्‌गर मुद्रा 24. पल्लव मुद्रा।[1]

1. सुमुख मुद्रा

सुमुख का शाब्दिक अर्थ है सुंदर मुखवाला, मनोहर मुखवाला, प्रसन्न मुखवाला। यह मुद्रा दिखने में सुन्दर लगती है अत: इसे सुमुख मुद्रा कहा गया है।

योगतत्त्व मुद्रा विज्ञान की यौगिक परम्परा में यह मुद्रा श्रद्धालुओं एवं अनुयायियों के द्वारा धारण की जाती है। यह गायत्री जाप से पूर्व की जाने वाली 24 मुद्राओं में से एक है। यह रोग शमन में अधिक उपयोगी है। विशेष रूप से केन्सर रोग का निवारण करती है।

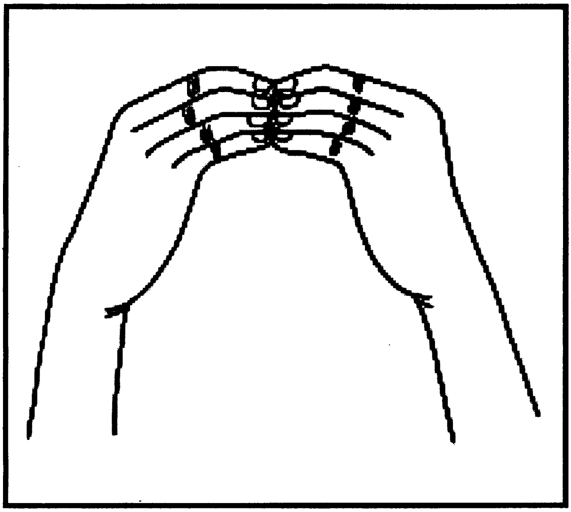

सुमुख मुद्रा

विधि

सुमुख मुद्रा के लिए दोनों हथेलियों को हृदय के अग्रभाग पर स्थिर करें। फिर तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को एक साथ हथेली की तरफ मोड़ते हुए हाथों को समीप में लाएँ ताकि अंगूठा और अंगुलियाँ अपने प्रतिरूप का स्पर्श कर सकें। इसमें अंगूठा तर्जनी के प्रथम पोर के पार्श्व भाग का स्पर्श करता हुआ रहे, इस तरह सुमुख मुद्रा बनती है।[2]

लाभ

• यह मुद्रा मुख्य रूप से अग्नि तत्त्व को प्रभावित करती है। इससे अन्य तत्त्व भी संतुलित रहते हैं।

• इसके द्वारा मणिपुर चक्र प्रभावित होता है जिससे मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस आदि पाचन सम्बन्धी विकृतियाँ दूर होती हैं।

• इसके द्वारा तैजस केन्द्र प्रभावित होता है जिससे शक्ति और तेज में वृद्धि होती है तथा भाव विशुद्धि होती है।

• यह मुद्रा ईर्ष्या, घृणा, भय, संघर्ष आदि विचारों का नियन्त्रण करती है इससे व्यक्ति का आध्यात्मिक उत्थान होता है।

• एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह बेहोशी, दौरा आदि पड़ने पर तत्काल लाभ देती है।

2. सम्पुट मुद्रा

सम्पुट शब्द अनेक अर्थों का सूचक है। यहाँ दर्शाए चित्र के अनुसार एक प्रकार का पात्र, जिसमें कुछ भरने के लिए रिक्त जगह हो वह सम्पुट कहलाता है।

सम्पुट का मध्य भाग फूला हुआ एवं खाली रहता है। इस मुद्रा में हथेलियों का मध्य भाग फूला हुआ है अत: इसका नाम सम्पुट मुद्रा है।

यह मुद्रा यौगिक परम्परा में भक्तों एवं अनुयायियों के द्वारा धारण की जाती है। यह गायत्री जाप से पूर्व की जाने वाली 24 मुद्राओं में से एक है। यह रोगशमन में उपयोगी है।

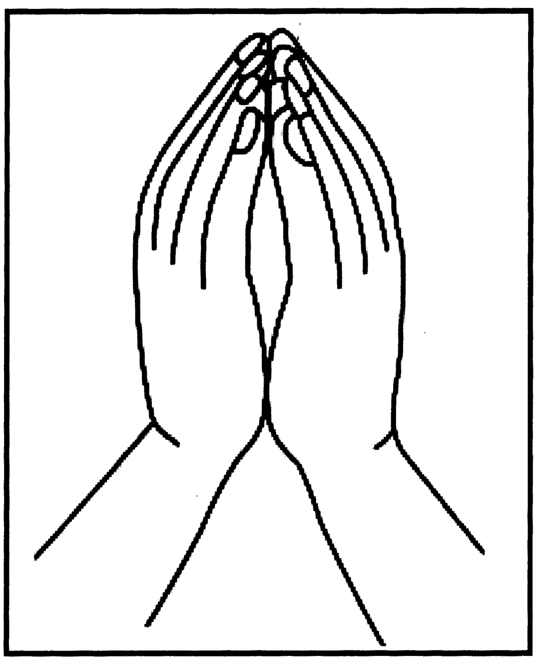

सम्पुट मुद्रा

विधि

हथेलियाँ हृदय के अग्रभाग पर रहें, अंगुलियाँ बाहर की तरफ फैली हुई हल्की सी मुड़ी हुई रहें तथा अंगुलियों के अग्रभाग और हथेलियों की एड़ियों को स्पर्शित करने से जो मुद्रा निष्पन्न होती है उसे सम्पुट मुद्रा कहते हैं।[3]

यह मुद्रा नमस्कार मुद्रा के समान है मात्र अंगुलियों की दिशा भिन्न है।

लाभ

• सम्पुट मुद्रा करने से शरीर में आकाश तत्त्व संतुलित रहता है।

• यह मुद्रा आज्ञा चक्र को प्रभावित करती है। जिससे बुद्धि कुशाग्र तथा पिच्युटरी एवं पिनियल ग्रंथियों का स्राव संतुलित होने से स्वभाव शांत एवं क्रोधादि कषाय नियंत्रित होते हैं।

• एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मुद्रा पीलिया, हाथों में कम्पन, कान के लिम्फ स्राव, मुँह में दुर्गंध आदि रोगों के निदान में लाभकारी है। इसी के साथ यह शिराओं एवं धमनियों के उपचार में भी सहयोगी है। इसके द्वारा व्यक्ति आन्तरिक जगत की ओर अभिमुख होता है।

3. वितत मुद्रा

वितत अर्थात फैला हुआ। वीणा अथवा उससे मिलता-जुलता अन्य वाद्य भी वितत कहलाता है, परन्तु निम्न चित्र में दोनों हाथ फैले हुए होने से यहाँ प्रसरित अर्थ इष्ट है। इस मुद्रा में दोनों हाथ नीचे की तरफ फैले हुए हैं अतः इसे वितत मुद्रा कहते हैं।

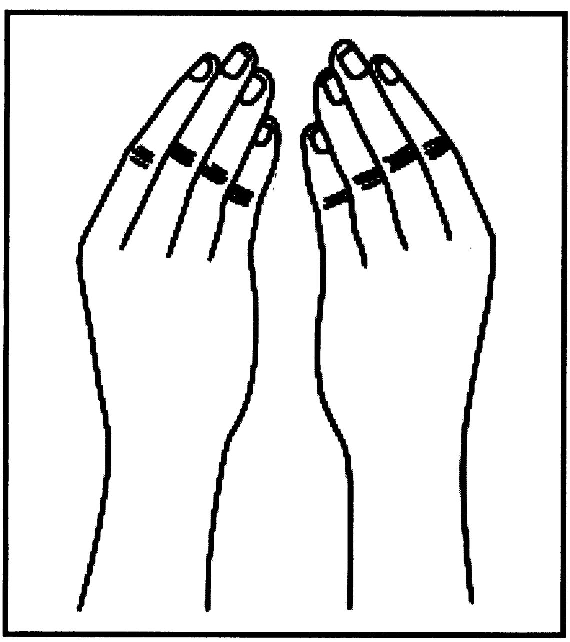

वितत मुद्रा

यह संयुक्त मुद्रा है। इसे रोग शमन एवं कैन्सर निवारण में उपयोगी माना है।

विधि

दोनों हथेलियों को शरीर के मध्यभाग में कुछ सेन्टीमीटर की दूरी पर एवं कमर के समभाग पर आगे स्थिर करें।

अंगुलियाँ और अंगूठें फैले हुए, शिथिल और हल्के से मुड़े हुए रहें, किन्तु अपने प्रतिरूप का अथवा दूसरे हाथ का स्पर्श करते हुए न रहने पर वितत मुद्रा कहलाती है।[4]

लाभ

- यह मुद्रा शरीरगत पृथ्वी एवं वायु तत्व को प्रभावित करती है।
- यह शरीर को बलिष्ट बनाती है तथा सन्धिवात, जोड़ों के दर्द आदि में राहत देती है।
- इस मुद्रा के द्वारा मूलाधार एवं अनाहत चक्र जागृत होते हैं। यह शक्ति केन्द्र एवं आनंद केन्द्र को भी प्रभावित करती हैं। इससे काम-वासनाएँ कम होकर आन्तरिक भावनाएँ निर्मल एवं परिष्कृत बनती है।
- एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मुद्रा एकाग्रता एवं बौद्धिक क्षमता को बढ़ाती है। साथ ही हृदय सम्बन्धी रोगों में विशेष लाभदायी है।

4. विस्तृत मुद्रा

हिन्दी कोश के अनुसार जो अधिक दूर तक फैला हुआ हो, लंबा चौड़ा हो उसे विस्तृत कहते हैं।

इस मुद्रा में दोनों हथेलियों के बीच वितत मुद्रा की अपेक्षा अधिक दूरी है अत: इसे विस्तृत मुद्रा कहा गया है। यह मुद्रा वितत मुद्रा के समान ही की जाती है मात्र दोनों हाथों को रखने की स्थिति में अंतर है।

यह गायत्री जाप से पूर्व करने योग्य 24 मुद्राओं में से चौथी है। इसे रोग शमन एवं कैन्सर रोग में अधिक उपयोगी माना है।

विधि

दोनों हथेलियों को शरीर के मध्य भाग में अर्थात आगे की तरफ लगभग एक फुट का अंतर रखते हुए कमर के सम भाग पर स्थिर करें। फिर अंगुलियों

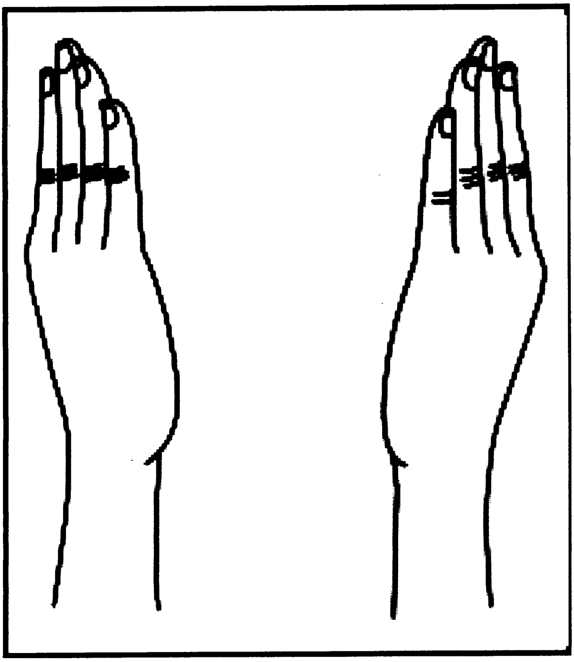

विस्तृत मुद्रा

और अंगूठों को एक साथ फैलाते हुए शिथिल एवं अन्दर की तरफ झुकाते हुए रखने पर विस्तृत मुद्रा बनती है।[5]

लाभ

• विस्तृत मुद्रा जल एवं अग्नि तत्त्व को प्रभावित करती हुई पित्त से उभरने वाली बीमारियों को उपशान्त तथा मूत्र दोष का परिहार करती है।

• स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए स्वशक्तियों का विकास करती है। इससे उदर सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।

• इसके प्रयोग से बैचेनी, पेडु का कैन्सर, कब्ज एवं एओरटिक वाल्व के कार्य को सुचारु रूप से करने में एवं अन्य रोगों को दूर करने में सहयोग मिलता है। इससे जिह्वा पर सरस्वती का वास होता है।

5. द्विमुख मुद्रा

द्विमुख का शाब्दिक अर्थ है दो मुख वाला। इस मुद्रा नाम के अन्य अर्थ भी व्यवहृत है। यहाँ द्विमुख मुद्रा से अभिप्राय लगभग प्रसव करती हुई गाय से है। जब गाय बछड़े को जन्म देती है उस समय पृष्ठ भाग से पहले बछड़े का मुँह निकलता है जिससे गाय दो मुख वाली दिखती है और इस गाय का विशेष महत्त्व होता है।

संभवतया इस मुद्रा का प्रयोजन द्विमुखी गाय से है क्योंकि वैदिक परम्परा में गाय को पूजनीय एवं गायत्री स्वरूप माना है।

योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की यौगिक परम्परा में यह मुद्रा भक्तों और आराधकों के द्वारा की जाती है। यह गायत्री जाप की 24 मुद्राओं में से एक है। इसे कैन्सर जैसे रोगों में बहुत उपयोगी बतलाया है।

विधि

दोनों हथेलियों को शरीर के मध्य भाग में कमर के समभाग पर स्थिर करें।

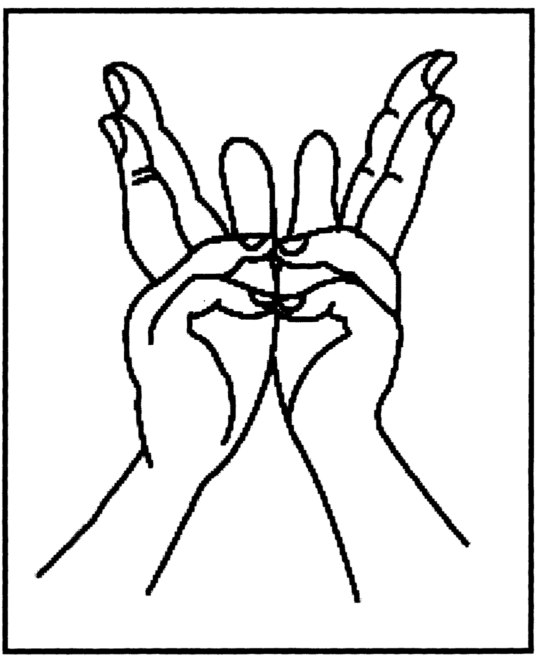

द्विमुख मुद्रा

फिर अंगुलियों को भूमि से समानान्तर सामने की ओर फैलाते हुए रखें। फिर अनामिका एवं कनिष्ठिका अंगुलियों के अग्रभाग को परस्पर मिलायें तथा अंगूठों को ऊपर की ओर करने पर द्विमुख मुद्रा बनती है।[6]

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** जल एवं पृथ्वी तत्त्व **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं शक्ति केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग, मेरूदण्ड एवं पाँव।

6. त्रिमुखम् मुद्रा

त्रिमुख का शाब्दिक अर्थ है तीन मुख वाला।

हिन्दी कोश में शाक्य मुनि को त्रिमुख वाला कहा गया है, बुद्ध की माता को त्रिमुखी बतलाया है, ब्रह्मा-विष्णु-महेश को त्रिदेव कहा जाता है। अनुमानतः यह मुद्रा तीन मुख को धारण करने वाले त्रिदेव की उपासना एवं उन्हें संतुष्ट करने के उद्देश्य से की जाती है।

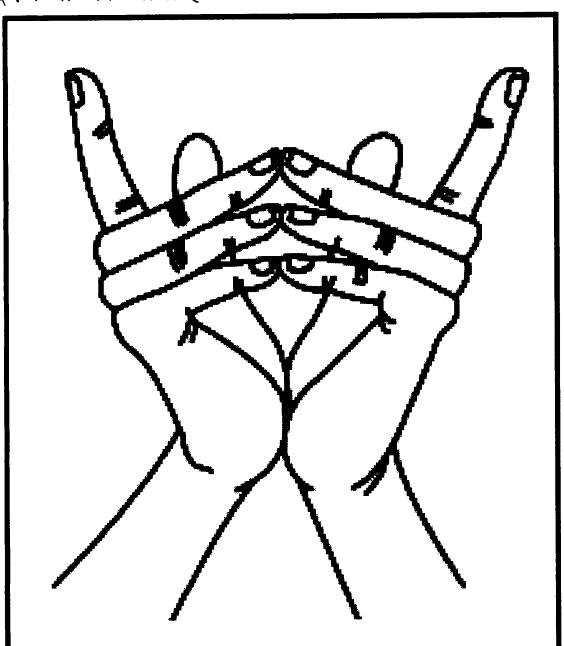

त्रिमुखम् मुद्रा

यौगिक परम्परा में यह मुद्रा श्रद्धालु उपासकों द्वारा धारण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा गायत्री जाप से सम्बन्धित 24 मुद्राओं में से एक है। यह रोग निवारण में उपयोगी सिद्ध हुई है।

विधि

दोनों हथेलियों को शरीर के मध्य भाग में, कमर के सम स्तर पर धारण करें।

फिर अंगुलियों को भूमि से समानान्तर सामने की तरफ पृथक्-पृथक् फैलाते हुए रखें।

तत्पश्चात मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठिका अंगुलियों के अग्रभागों को परस्पर सम्मिलित करें तथा अंगूठों को ऊपर की ओर उठाने पर त्रिमुख मुद्रा बनती है।[7]

लाभ

- अग्नि तत्त्व को संतुलित करने में त्रिमुखी मुद्रा बहु उपयोगी है। इससे मानसिक तनाव कम होता है। शरीर के तेज में वृद्धि होती है।
- यह मुद्रा मणिपुर चक्र के माध्यम से तैजस चक्र को प्रभावित करते हुए पाचन सम्बन्धी विकृतियों को दूर करती है।
- एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार यह मुद्रा आँख, नाक, कान सम्बन्धी रोगों को दूर करती है तथा शारीरिक प्रक्रियाओं को सुचारू करती है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा आत्मिक तेज को बढ़ाती है।

7. चतुर्मुखम् मुद्रा

सामान्यतया चार मुख वाला चतुर्मुख कहा जाता है। नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा को तथा एक प्रकार की ताल को भी चतुर्मुख कहते हैं। भगवान विष्णु चार मुख वाले माने जाते हैं। संभवतः यह मुद्रा विष्णु भगवान की आराधना एवं उनके समरूप बनने के प्रयोजन से की जाती है।

यह यौगिक परम्परा की मुद्रा गायत्री जाप से पूर्व करने योग्य 24 मुद्राओं में से सातवीं है तथा इसे बीमारियों के निवारण में उपयोगी सिद्ध किया है।

विधि

दोनों हथेलियों को शरीर के मध्यभाग, कमर के समभाग पर स्थिर करें।

फिर अंगुलियों को भूमि से समानान्तर सामने की तरफ पृथक-पृथक फैलाते हुए रखें।

तदनन्तर चारों अंगुलियों के अग्रभागों को विरोधी अंगुलियों के अग्रभागों से योजित करें तथा अंगूठों को ऊपर की तरफ रखने पर चतुर्मुख मुद्रा बनती है।[8]

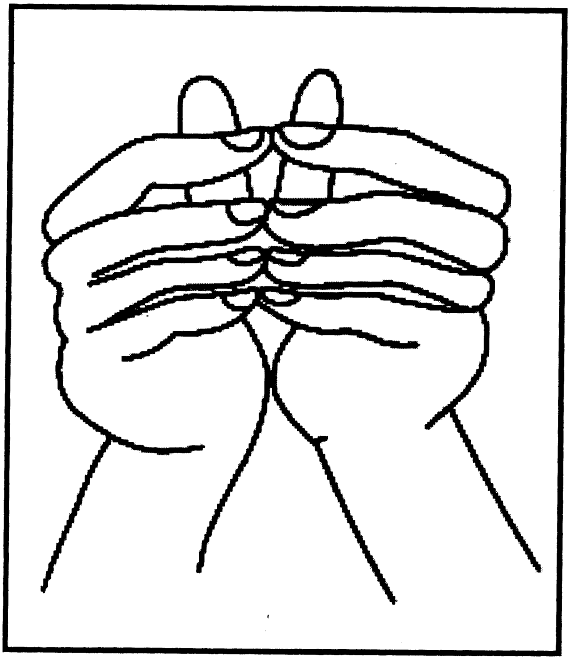

चतुर्मुखम् मुद्रा

लाभ

• पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए यह शरीर को बलिष्ठ बनाती है तथा जड़ता एवं भारीपन को दूर करती है।

• मूलाधार को प्रभावित करती हुई यह मुद्रा आरोग्य, दक्षता, कुशलता आदि में वृद्धि करती हैं।

• एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह जिह्वा में तनाव, भारीपन, दर्द आदि दूर करके बोलने सम्बन्धी समस्याओं को दूर करती है। यह शरीर की धमनियों पर कंट्रोल रखती है।

• यह बौद्धिक क्षमता एवं स्मृति का भी विकास करती है।

8. पंचमुखम् मुद्रा

पांच मुखवाला पंचमुखी कहलाता है।

एक प्रकार का रूद्राक्ष जिसमें पांच लकीरें होती है पंचमुखी कहा जाता है। शिव, गणेश और हनुमान के अनेक नामों में इनका एक नाम पंचमुख है। पार्वती को पंचमुखी कहा गया है।

पार्वती दुर्गा का एक रूप है और गायत्री का एक अर्थ दुर्गा होता है। इस आधार पर अनुमान किया जाता है कि यह मुद्रा पंचमुखी देव अथवा देवी को प्रसन्न करने एवं उसकी आराधना से संबंधित है।

यौगिक परम्परा में यह मुद्रा श्रद्धालु भक्तों द्वारा धारण की जाती है। इसे रोग शमन में विशेष उपयोगी माना गया है।

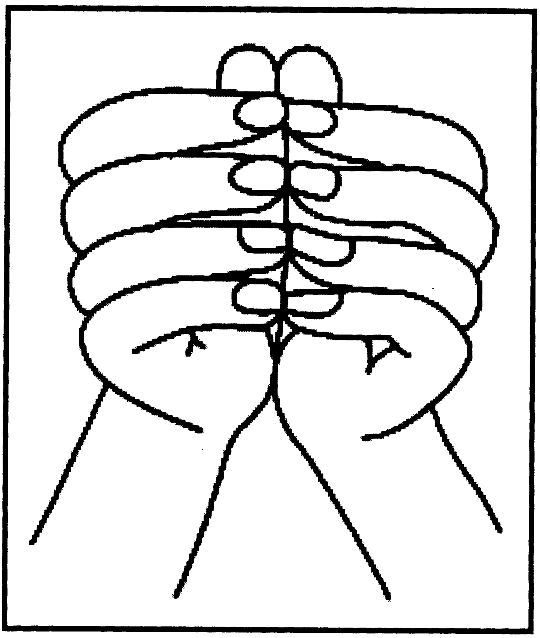

पंचमुखम् मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को पूर्ववत शरीर के मध्यभाग में, कमर के समस्तर पर धारण करें। तदनन्तर अंगुलियों को भूमि से समानान्तर सामने की तरफ अलग-अलग फैलाते हुए रखें।

तत्पश्चात अंगूठों एवं अंगुलियों के अग्रभागों को अपने अंगुलियों विरोधी के अग्रभागों से स्पर्शित करने पर जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे पंचमुखम् मुद्रा कहते हैं।[9]

लाभ

• पंचमुखी मुद्रा आकाश तत्त्व को नियंत्रित करते हुए भावधारा को निर्मल बनाती है तथा ध्यान को एकाग्र करती है।

• यह मुद्रा आज्ञा चक्र को प्रभावित करती है जिससे मन, दिमाग एवं स्वभाव शान्त रहता है।

• इस मुद्रा को 5-7 मिनिट तक करने मात्र से आमाशय की क्षमता एवं ऊर्जा बढ़ती है। गले की सूजन, (Transverse colon) और Sigmaid colon की समस्याएँ दूर होती है।

• इस मुद्रा को करने से मानसिक शान्ति प्राप्ति होती है।

9. षण्मुखम् मुद्रा

षण्मुख का सीधा सा अर्थ है छह मुख वाला। पार्वती, जो गायत्री देवी का एक अंश स्वरूप है उसका पुत्र कार्तिकेय षडानन अर्थात छह मुखवाला कहा जाता है।

संभवत: यह मुद्रा पार्वती सुत को प्रसन्न करने के उद्देश्य से की जाती है। इसमें गायत्री देवी स्वयमेव तुष्ट हो जाती है।

योगतत्त्व मुद्रा विज्ञान में यह मुद्रा भक्तों और अनुयायियों के द्वारा धारण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा गायत्री जाप से पूर्व की 24 मुद्राओं में से एक तथा रोग शमन के उपचारार्थ प्रयुक्त होती है।

इस मुद्रा के द्वारा छह मुख जैसी आकृति प्रतिभासित होती है इसलिए इसे षण्मुख मुद्रा कहते है।

विधि

दोनों हथेलियों को शरीर के मध्य भाग में, कमर के समभाग पर स्थिर करें।

फिर अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका के अग्रभागों को अपने विरोधी अंगुलियों के अग्रभागों से संयोजित करें। तत्पश्चात अंगूठों को ऊपर की ओर उठाते हुए तथा कनिष्ठिका अगुलियों को अलग-अलग करते हुए जो मुद्रा निष्पन्न होती है उसे षण्मुखम् मुद्रा कहते हैं।[10]

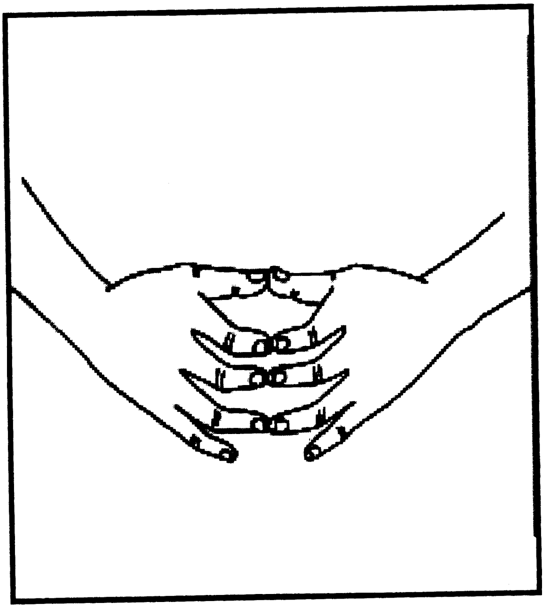

षष्ठमुखम् मुद्रा

लाभ

• इस मुद्रा को करने से शरीर का जल तत्व संतुलित रहता है। यह मुद्रा रक्तविकार, शरीर का रूखापन आदि दूर कर जल तत्त्व की आपूर्ति करती है।

• स्वाधिष्ठान चक्र जो कि पेडु के पास स्थित है, तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार इसके ध्यान से सृजन, पालन और निधन में समर्थता और जिह्वा पर सरस्वती का वास होता है।

• एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मस्तिष्क एवं ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों का उपचार करते हुए बौद्धिक क्षमता का वर्धन करती है तथा इससे बेहोशीपन दूर होता है।

• इस मुद्रा के द्वारा शारीरिक प्रभाव का आकर्षण बढ़ता है।

10. अधोमुखम् मुद्रा

अधोमुख के शाब्दिक अर्थ हैं अधोमुख किया हुआ, औंधा, उल्टा आदि। निम्न चित्र के अनुसार इस मुद्रा में हाथों की स्थिति उल्टी रहती है अत: इसे अधोमुख मुद्रा कहते हैं।

यह मुद्रा प्रतीकात्मक रूप से स्वयं की ओर अभिमुख होने का सूचन करती है।

संसारी मनुष्य की आत्मा गर्भावास काल में अधोमुख रहती है कहा भी गया है कि **'गरभावास दस मास अधोमुख तहँ न भयो विसहम।'** उस समय चेतना परवस्था में असह्य कष्टों को भोगती है। संकेततः यह मुद्रा गर्भदुःख से मुक्त होने अर्थात जन्म-मरण की परम्परा को विनष्ट करने का बोध देती है।

गायत्री का एक अभिप्रेत गंगा है वह नदी रूप में शिव की जटाओं से नीचे गिरती है। तदनुसार भी इस मुद्रा का नाम अधोमुख संभव है।

यह यौगिक परम्परा की गायत्री से सम्बन्धित 24 मुद्राओं में से एक तथा हर प्रकार की बीमारी से राहत पाने हेतु रामबाण औषधि के समान है।

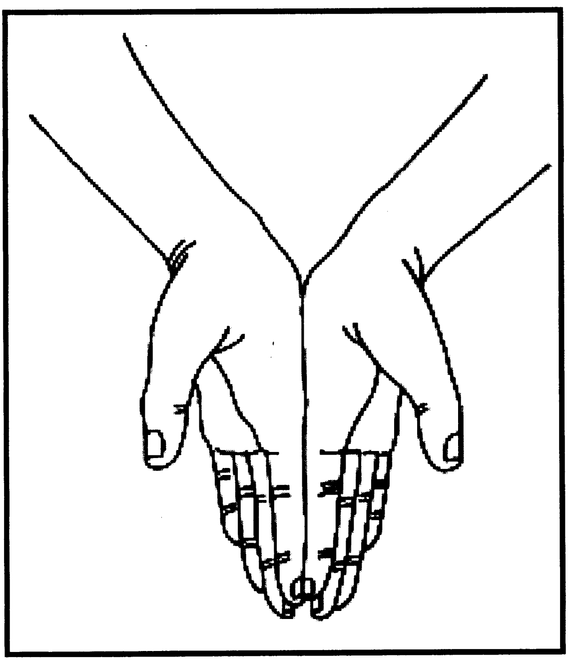

अधोमुखम् मुद्रा

विधि

सर्वप्रथम दोनों हाथों की अंगुलियों को हथेली की तरफ अंदर मोड़कर अंगूठों को ऊपर की ओर स्थिर रखने एवं अंगुलियों के बाह्य पौरवों को मिलाते हुए रखने पर जो मुद्रा बनती है, उसे अधोमुख मुद्रा कहते हैं।[11]

यह संयुक्त मुद्रा कमर के स्तर पर धारण की जाती है।

लाभ

• यह मुद्रा अग्नि तत्त्व को संतुलित करती है जिससे तैजस शरीर का तेज बढ़ता है एवं पाचन क्षमता विकसित होती है।

• मणिपुर चक्र जागृत्त होने से शरीर को शक्ति प्राप्त होती है तथा मधुमेह, कब्ज, अपच आदि समस्याएँ दूर होती हैं।

• यह शरीर के मेटाबोलिज्म प्रणाली का संतुलन करती है। निर्माणशील ऊर्जा (Structive energy) को पूरे शरीर में संचारित करती है। इससे मुँह में थूक का बहाव सुचारू रूप से होता है ऐसा एक्युप्रेशर विशेषज्ञों का मत है।

11. व्यापकांजलिकम् मुद्रा

इस मुद्रा नाम में व्यापक + अंजलि इन दो शब्दों का योग है। अंजलि मुद्रा प्राय: अर्पणार्थ की जाती है। तदनुसार व्यापक अंजलि पूर्वक अथवा व्यापक (अत्यधिक) द्रव्य चढ़ाने के भाव से जो मुद्रा बनाई जाती है उसे व्यापकांजलि मुद्रा कहते हैं।

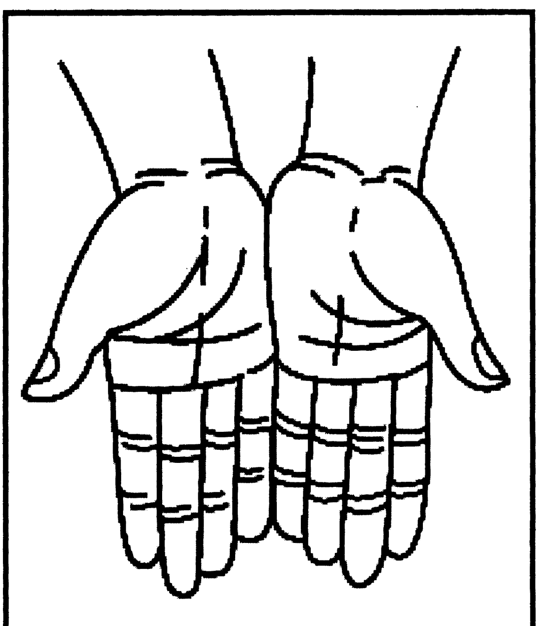

व्यापकांजलिकम् मुद्रा

इस मुद्रा में अंजलि विस्तृत रूप से फैली हुई है अत: यह मुद्रा नामोचित गुणवाली है।

यौगिक परम्परा द्वारा मान्य इस मुद्रा को गायत्री जाप से पूर्व की विधि में करते हैं।

विधि

सर्वप्रथम हथेलियों को आकाश की तरफ रखते हुए अंगुलियों को बाहर की ओर फैलायें। अंगूठों को हथेली से पृथक रखते हुए बाहर की तरफ फैलाए रखें। फिर हथेलियों की बाह्य किनारियों का एक-दूसरे से स्पर्श करवाते हुए करयुगल को युगपद् रखने पर जो मुद्रा बनती है, वह व्यापकांजलि मुद्रा कहलाती है।[12]

लाभ

• व्यापकांजलि मुद्रा शरीरगत वायु तत्त्व को प्रभावित करते हुए वायु सम्बन्धी विकार जैसे कुपित वायु, गठिया, वायुशूल आदि का निवारण करती है।

• अनाहत चक्र जागृत होने से वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय नियंत्रण आदि की शक्तियों में विकास होता है।

• यह मुद्रा आँख में दर्द, जाला आना आदि को दूर करती है, ऐसा एक्युप्रेशर परीक्षणों से स्पष्ट हो चुका है।

• इस मुद्रा के प्रयोग से हृदय मजबूत बनता है।

12. शकटम् मुद्रा

छकड़ा या बैलगाड़ी को शकट कहते हैं। शकट का आगे का भाग पतला और पीछे का भाग मोटा होता है। इस मुद्रा में हाथों की आकृति इसी तरह की बनती है अत: इसका नाम शकट मुद्रा है। शकट का एक अर्थ रोहिणी नक्षत्र है। पुराणों के अनुसार रोहिणी दक्ष की कन्या और चन्द्रमाँ की पत्नी है। दक्ष ब्रह्मा पुत्र और पार्वती के पिता है। यहाँ रोहिणी ब्रह्म की सन्तान परम्परा से सम्बन्धित होने के कारण उसे लक्षित कर यह मुद्रा की जा सकती है।

यह संयुक्त मुद्रा गायत्री जाप सम्बन्धी 24 मुद्राओं में से एक है तथा रोगोपशमन हेतु प्रमुख मानी गई है।

विधि

दोनों हथेलियों को कमर के समभाग पर अर्थात आगे की तरफ स्थिर करें। तदनन्तर भूमि से समानान्तर तर्जनी अंगुलियों को नीचे की ओर फैलाते हुए रखें, मध्यमा-अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को हथेली की तरफ मोड़ते हुए रखें तथा अंगुलियों से 90^0 का कोण बनाते हुए द्वयांगुष्ठों के अग्रभागों को परस्पर स्पर्शित करने पर शकट मुद्रा बनती है।[13]

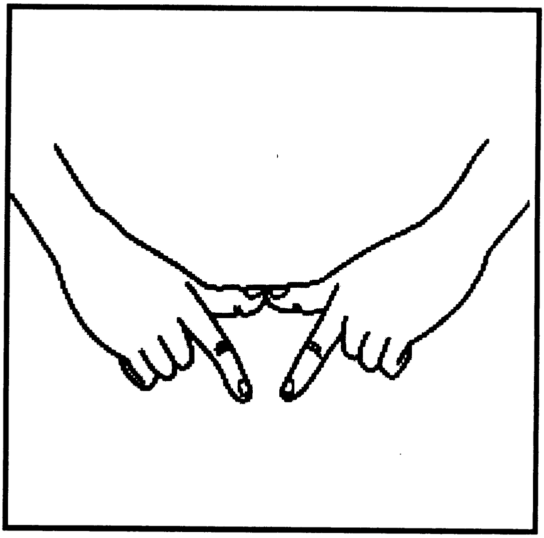

शाकटम् मुद्रा

लाभ

• शकट मुद्रा के प्रयोग से जल एवं आकाश तत्त्व का संयोग एवं संतुलन होता है। इससे हृदय एवं रक्त सम्बन्धी समस्याओं का निवारण होता है।

• स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह कण्ठ को मधुर एवं प्रभावी बनाता है। ज्ञान को विकसित करता है। शरीर निरोगी होकर दीर्घजीवी बनता है।

• एक्युप्रेशर स्पेशलिस्ट के अनुसार यह एक पक्षीय लकवा, बेहोशी मिरगी, कान में आवाज आना, नसों में तनाव आदि से राहत देती है तथा शंकालु वृत्ति को कम करती है।

• इस मुद्रा के प्रयोग से मानसिक शान्ति एवं एकाग्रता को प्राप्त किया जा सकता है।

13. यमपाशम् मुद्रा

यम और पाश इन दो शब्दों के संयोग से यमपाशम् शब्द निष्पन्न है।

यम शब्द से अनेक अर्थों का बोध होता है। भारतीय आर्य परम्परा में यम, दक्षिण दिशा के दिक्पाल (दिशारक्षक) देव हैं। वैदिक काल में इसे देवता, ऋषि और मंत्रकर्त्ता माना जाता था। इन्द्रिय-मन को वश में रखना यम कहलाता है। मनु के अनुसार नित्य पालन योग्य कर्त्तव्य यम कहलाते हैं।

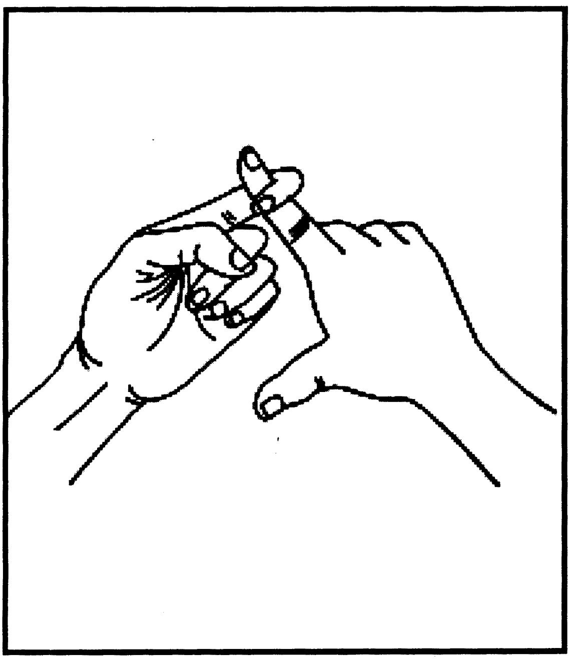

यमपाशम् मुद्रा

पंतजली के अष्टांग योग में प्रथम यम योग का उल्लेख आता है। यम कालसूचक भी है पाश शब्द बंधन सूचक है। इस वर्णन के आधार पर यमपाश के दो अभिप्राय होते हैं- प्रथम अर्थ की अपेक्षा साधारण मानव जन्म-मृत्यु के बंधन में जकड़ा हुआ है उससे मुक्त होने की प्रार्थना स्वरूप यह मुद्रा की जाती है। द्वितीय अर्थ के अनुसार जो नित्य पालन एवं धारण करने योग्य यम-नियम

आदि हैं उन क्रियाकलापों से जुड़े रहें, इस तरह की भावाभिव्यक्ति स्वरूप यह मुद्रा की जाती है।

यौगिक परम्परा में यह मुद्रा श्रद्धानिष्ठ अनुयायियों के द्वारा की जाती है। यह गायत्री जाप से पूर्व की जाने वाली 24 मुद्राओं में से एक तथा रोग निवारण में विशेष रूप से (Cancer) में उपयोगी है।

विधि

इस मुद्रा में दाहिनी हथेली स्वयं की तरफ मुड़ी हुई, अंगूठा ऊपर की तरफ फैला हुआ, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियाँ हथेली में मुड़ी हुई एवं तर्जनी का प्रथम पोर बायीं तर्जनी से आक्रमित रहें।

बायीं हथेली शरीर के मध्य भाग में छाती के स्तर पर धारण की हुई, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियाँ हथेली में मुड़ी हुई, तर्जनी दाहिनी तर्जनी को आक्रमित करती प्रथम पोर से मुड़ी हुई तथा अंगूठा अंगुलियों की तरफ अन्दर मुड़ा हुआ रहे। (इसमें दोनों हाथ की तर्जनी अंगुलियाँ परस्पर ग्रथित रहे) इस तरह यमपाश मुद्रा बनती है।[14]

लाभ

• यह मुद्रा वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए वायु विकारों को दूर करती है।

• अनाहत चक्र को प्रभावित करते हुए यह भावों को निर्मल एवं परिष्कृत करती है तथा थायमस ग्रंथि के स्राव को संतुलित रखती है।

• एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार इस मुद्रा के उपयोग से पायरिया, स्वर तंत्र, गले में सूजन, दाँत, कान, आँख, नाक, मुँह सम्बन्धी रोगों में लाभ होता है।

14. ग्रथितम् मुद्रा

ग्रथित शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है जैसे- कठिन गांठवाला, बंधा हुआ, रचा हुआ, गांठ युक्त, जमा हुआ आदि। निम्न मुद्रा स्वरूप के अनुसार इसमें अंगुलियाँ एक-दूसरे से बंधी हुई (गंथी हुई) रहती है अत: इसका नाम ग्रथित मुद्रा है। आबद्ध वस्तु मजबूत होती है इस नियम के अनुसार यह मुद्रा दृढ़ता- अटलता की सूचक है।

जब हम किसी को विश्वास दिलाते हैं अथवा किसी सत्य का समर्थन करते हैं तो इस प्रकार की मुद्रा सहज निर्मित होती है।

इस मुद्रा के माध्यम से इष्ट के प्रति दृढ़ संकल्प एवं विश्वास जागृत किया जाता है।

योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान से सम्बन्धित गायत्री मुद्राओं में से यह एक मुद्रा है। यह रोग शमन में विशेष रूप से Cancer में लाभदायी है।

इसे शुद्धता और उदारता का परिचायक माना गया है। यह जापान में 'गे-बुक केन इन' के नाम से जानी जाती है।

विधि

दोनों हाथों की अंगुलियों को एक-दूसरे में इस तरह ग्रथित करते हुए रखें कि वे हाथ के पृष्ठ भाग पर फैली हुई रह सकें तथा दाहिने अंगूठे को बायें अंगूठे पर क्रोस करते हुए रखने पर ग्रथित मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा छाती के अग्रभाग पर धारण की जाती है।[15]

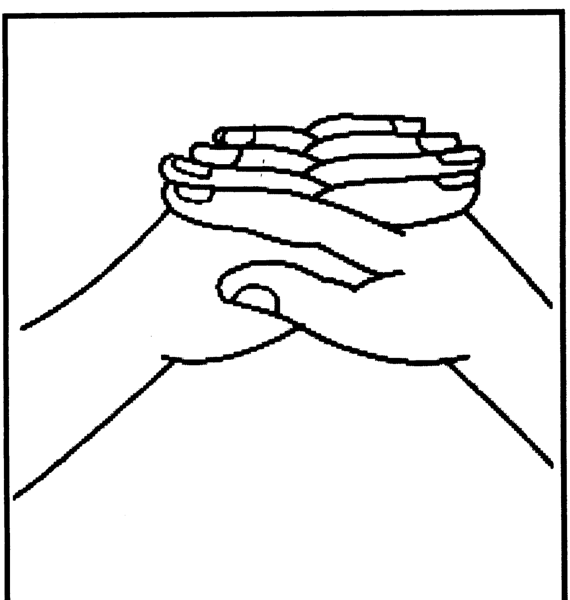

ग्रथितम् मुद्रा

लाभ

• इस मुद्रा को करने से शरीरगत पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व संतुलित रहता है। इससे शरीर को बलिष्ठ एवं शक्तिशाली बनाते हुए अन्तर में अनहद भावों का विकास किया जा सकता है।

• यह मुद्रा मूलाधार एवं अनाहत चक्र को जागृत करती है, जिससे शारीरिक निरोगता, कौशल्य, ओजस्विता आदि में वृद्धि होती है तथा हृदय को मजबूत बनाते हुए वक्तृत्व, कवित्व आदि शक्ति का विकास करती है।

• एक्युप्रेशर विशेषज्ञों का अभिमत है कि इस मुद्रा के प्रयोग से वात दोष, विष दर्द (Allergy) आदि में लाभ होता है तथा किडनी (Areterics) आदि की रूकावट (Blockage) दूर होती है।

15. सन्मुखोन्मुखम् मुद्रा

यह शब्द सन्मुख और उन्मुख का सामासिक पद है। सन्मुख अर्थात सामने, उन्मुख अर्थात नीचे मुख किये हुए। दर्शाये चित्र के अनुसार इस मुद्रा में दाहिना हाथ बायें हाथ के सन्मुख एवं बायां हाथ दाहिने हाथ की तरफ मुख किया हुआ रहता है अत: यह मुद्रा नामोचित स्वरूप से युक्त है।

यह मुद्रा प्रतीक रूप में सूचित करती है कि हमारे समक्ष गायत्री अथवा इष्ट तत्व का जो स्वरूप है हमें उसकी ओर उन्मुख होना चाहिए।

भारत में यह मुद्रा "चोन मुखमुखम्" और "उन्मुखोन् मुखम्" के नाम से प्रचलित है।

सामान्यतया यौगिक परम्परा में धर्मगुरुओं एवं धर्मपालकों द्वारा की जाती है। गायत्री जाप से पूर्व की जाने वाली 24 मुद्राओं में से एक तथा रोग प्रशान्ति के लिए प्रमुख मानी गई है।

विधि

यह मुद्रा दो तरह से बनायी जा सकती है।

प्रथम प्रकार के अनुसार बायीं हथेली की अंगुलियों को किंचित मोड़ते हुए ऊपर की ओर करें एवं दायीं हथेली की अंगुलियों को कुछ मोड़ते हुए नीचे की ओर करें, फिर दोनों हाथों की परस्पर अभिमुख अंगुलियों के अग्रभाग को स्पर्शित करने से जो मुद्रा निष्पन्न होती है उसे सन्मुखोन्मुखम् मुद्रा कहते हैं।

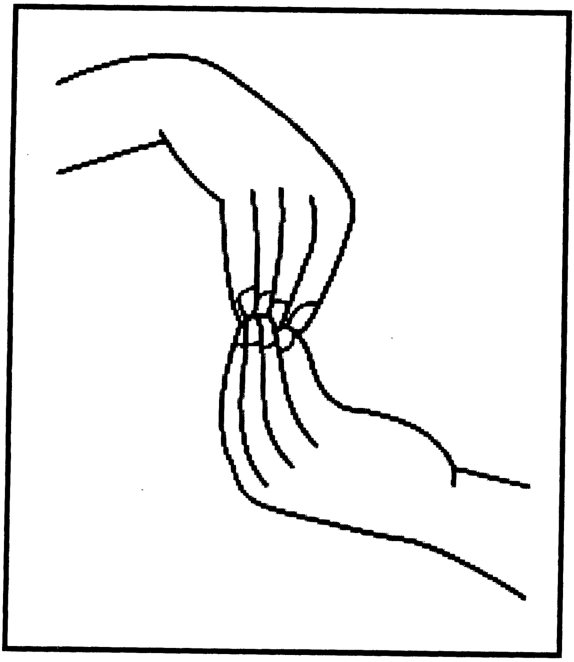

सन्मुखोन्मुखम् मुद्रा

द्वितीय प्रकार में बायें हाथ की मुड़ी हुई अंगुलियाँ नीचे की ओर एवं दायें हाथ की मुड़ी हुई पाँचों अंगुलियाँ ऊपर की ओर रहती है शेष वर्णन पूर्ववत समझें।[16]

यह मुद्रा छाती के अग्रभाग पर धारण की जाती है।

लाभ

- यह मुद्रा आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए भीतरी कोलाहल को समाप्त कर मानसिक एवं आन्तरिक शक्ति देती है।
- विशुद्धि चक्र पर प्रभाव डालते हुए यह मुद्रा शोकहीन, दीर्घजीवी एवं चित्त को शान्त रखती है तथा वाणी को मधुर एवं प्रभावी बनाती है।
- एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारियों जैसे बेहोशी, सायनस, मासिक धर्म सम्बन्धी असंतुलन आदि का निवारण करती है।
- इस मुद्रा से त्याग एवं अध्यात्म भाव में वृद्धि होती है।

16. प्रलम्बः मुद्रा

प्रलम्ब शब्द कई अर्थों को ज्ञापित करता है। यहाँ नीचे की ओर लटकता हुआ ऐसा अर्थ अभिप्रेत है।

दर्शाए चित्र के अनुसार इस मुद्रा में दोनों हाथ नीचे की तरफ लटकते हुए रखे जाते हैं अत: इस मुद्रा का नाम यथोचित मालूम होता है।

यह मुद्रा प्रतीक रूप में जीवन को उदात्त एवं व्यापक बनाने की प्रेरणा देती है। इसी के साथ आराध्य के प्रति अपनी श्रद्धा को उत्तरोत्तर बढ़ाये रखने का सूचन करती है।

यौगिक परम्परा में यह मुद्रा अनेक भक्तों द्वारा ग्रहण की जाती है। यह गायत्री जाप की आवश्यक एवं रोगोपशमन की अद्‌भुत मुद्रा है।

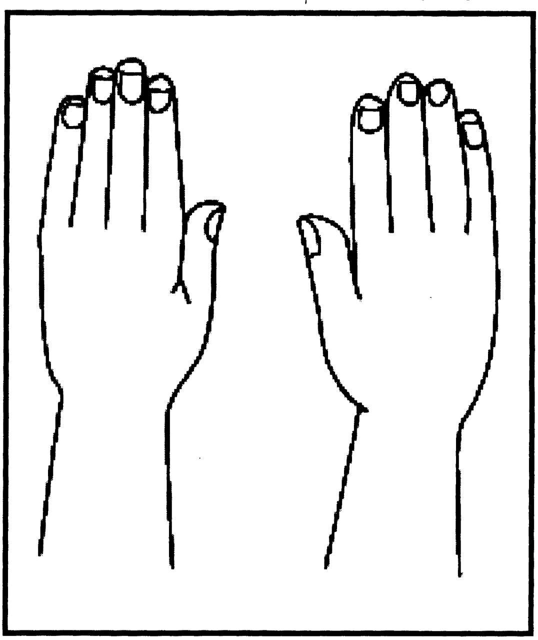

प्रलम्बः मुद्रा

विधि

इस मुद्रा को बनाते वक्त दोनों हथेलियों को कमर के नीचे मध्य भाग पर स्थिर करें। फिर दोनों हाथों की अंगुलियों को नीचे की ओर करने एवं दोनों हाथों को एक-दूसरे के निकट रखने पर प्रलम्ब मुद्रा बनती है।[17]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं वायु तत्त्व **केन्द्र**– तैजस एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र, नाड़ी संस्थान आदि।

17. मुष्टिक मुद्रा

मुष्टिक का सीधा सा अर्थ होता है मुट्ठी। इस मुद्रा में दोनों हाथ मुट्ठी के रूप में बांधे जाते हैं इसलिए इसे मुष्टिक मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा दृढ़ संकल्प की सूचक है।

इस मुद्रा के माध्यम से संकल्पित कार्य के प्रति आत्म सजगता को बढ़ाया जाता है।

यौगिक परम्परा में यह मुद्रा श्रद्धालु आराधकों द्वारा धारण की जाती है। यह गायत्री जाप में प्रयुक्त 24 मुद्राओं में से एक है। इसे कैन्सर सदृश बीमारियों में भी लाभकारी बतलाया है। यह मुद्रा पद्ममुष्टि मुद्रा की भाँति दोनों हाथों से की जाती है।

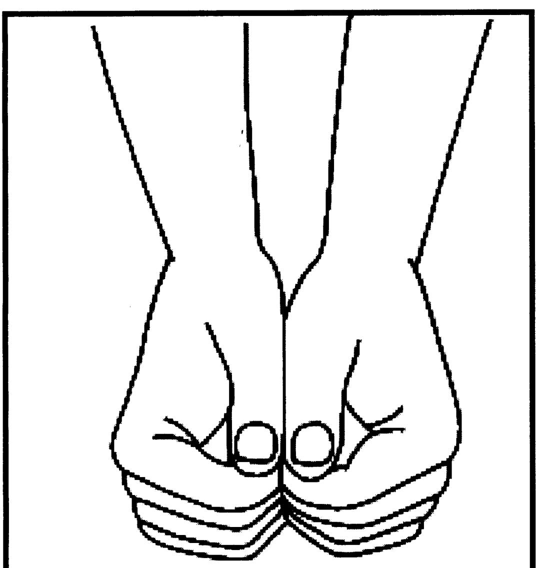

मुष्टिक मुद्रा

विधि

सर्वप्रथम दोनों हाथों को मुट्ठी रूप में बांधें। फिर अंगूठों को तर्जनी के बाह्य भाग पर स्थिर रखें तथा सभी अंगुलियों के दूसरे पोरों को एक दूसरे से स्पर्शित करते हुए रखने पर जो मुद्रा बनती है उसे मुष्टिक मुद्रा कहा जाता है।[18]

लाभ

• मुष्टिक मुद्रा आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए हृदय सम्बन्धी विकारों का शमन करती हैं।

• इसके द्वारा विशुद्धि चक्र जागृत होता है और यह जीव की ज्ञान ग्रन्थियों को जागृत करते हुए मन को शान्त रखता है तथा शोकहीन एवं दीर्घजीवी बनाता है।

• यह मुद्रा पूर्व संचित ज्ञान का स्मरण करवाती है। इससे गले में सूजन, सिरदर्द (Eczema), चर्म रोग आदि के उपचार में सहयोग प्राप्त होता है, ऐसा एक्युप्रेशर विशेषज्ञों का मानना है।

18. मत्स्य मुद्रा

मत्स्य संस्कृत का मूल रूप है इसे मछली कहते हैं। यह मुद्रा मत्स्याकार के समान निर्मित की जाती है अतः इसे मत्स्य मुद्रा कहा गया है।

यह विष्णु के मत्स्यावतार की सूचक मुद्रा है। मत्स्य हमेशा जल प्रवाह को विपरीत गति देता है वैसे ही यह मुद्रा संसार में परिभ्रमण कर रहे प्राणियों को उसके विपरीत आध्यात्मिक जगत की ओर गति करने का संकेत करती है।

यौगिक परम्परा से संबंधित यह तांत्रिक मुद्रा बौद्ध और हिन्दू दोनों परम्पराओं में धर्मगुरुओं और श्रद्धालुओं द्वारा ग्रहण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा नाटकों में भी प्रयुक्त होती है।

विधि

इस मुद्रा में दायीं हथेली नीचे की तरफ अर्थात हथेली का सीधा भाग भूमि तरफ, अंगुलियाँ सीधी फैली हुई और अंगूठा 90^0 कोण की दूरी पर रहें। बायीं हथेली भी भूमि की ओर, अंगुलियाँ एक साथ बाहर आती एवं फैली हुई और अंगूठा 90^0 कोण पर स्थिर रहें। इस प्रकार दाहिने हाथ को बाएं हाथ के ऊपर स्पर्शित करते हुए रखने पर मत्स्य मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कमर के स्तर पर धारण की जाती है।[19]

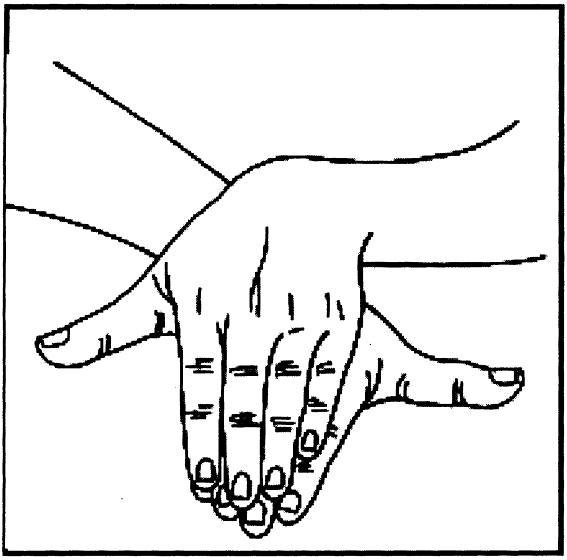

मत्स्य मुद्रा

लाभ

• मत्स्य मुद्रा आकाश एवं जल तत्त्व का संतुलन करती है। इससे हृदय में रक्त प्रवाह सम्बन्धी गड़बड़ियां जैसे (Blocking या Blockage) रक्त के प्रवाह आदि में आई परेशानी दूर होती है।

यह आज्ञा चक्र एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए बुद्धि, स्वास्थ्य केन्द्र एवं ज्योति केन्द्र को प्रभावित करती है जिससे दिमाग शान्त रहता है और वाणी प्रभावी बनती है।

• एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार इससे पेट एवं पेडु सम्बन्धी विकृत्तियाँ, शारीरिक एलर्जी, पेशाब आदि की एलर्जी दूर होती है।

• यह मुद्रा व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों को मजबूत करती है।

19. कूर्म मुद्रा

संस्कृत शब्द कूर्म का अर्थ कच्छप, कछुआ है। कूर्म अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त होता है।

ब्रह्मा का एक अवतार कूर्म माना जाता है, एक वायु जिसका निवास आँखों में हैं और जिसके प्रभाव से पलके खुलती और बंद होती है, दस प्राणों में से एक प्राण का नाम कूर्म है, विष्णु का दूसरा अवतार कूर्मावतार है। तंत्र विज्ञान के अनुसार एक मुद्रा, जिसका व्यवहार देवता के ध्यान के समय किया

जाता है। यहाँ कूर्म मुद्रा से तात्पर्य इष्ट देव की स्मृति है।

कूर्म की सर्वाधिक खासियत यह है कि वह अपने अंगोपांगों का संकोचन करके रहता है अतः यह मुद्रा इन्द्रिय संयम की सूचक है। वैदिक परम्परा में भगवान विष्णु के प्रथम पाँच (पशु) अवतार की सूचक भी है।

योग परम्परा में इसे आराधकों द्वारा ग्रहण की जाती है। गायत्री जाप से पूर्व की जाने वाली 24 मुद्राओं में से एक है। यह कैन्सर जैसी भयंकर बीमारी में लाभकारी है।

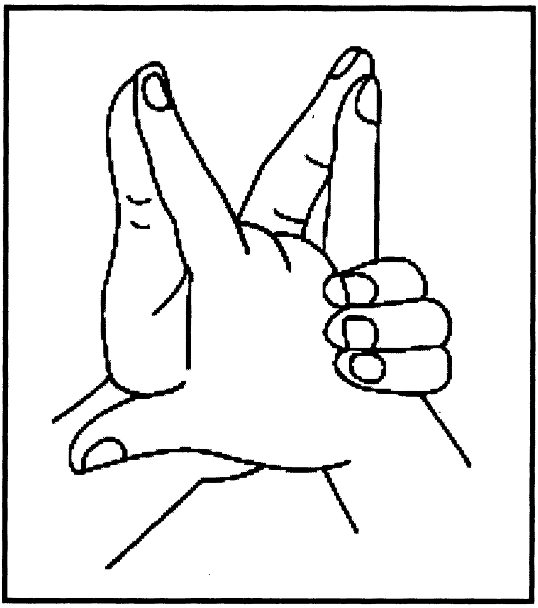

कूर्म मुद्रा

विधि

इस मुद्रा में दायीं हथेली नीचे की तरफ (अर्थात हथेली का पृष्ठ भाग भूमि की ओर रहे), तर्जनी एवं कनिष्ठिका बाहर सीधी फैली हुई, मध्यमा और अनामिका हथेली के अन्दर मुड़ी हुई रहें। बायीं हथेली दायीं हथेली के ऊपर की तरफ मुख किये हुए रहे, तर्जनी को मध्यभाग की तरफ फैलाएं जो भूमि से समानान्तर हो, अंगूठा तर्जनी से 90^0 कोण की दूरी पर स्थित रहें, मध्यमा और अनामिका हथेली के भीतर मुड़ी हुई रहें।

स्पष्टत: दायीं हथेली बायीं हथेली के ऊपर रहे, दायीं तर्जनी का अग्रभाग बायें अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्शित तथा दायें हाथ की कनिष्ठिका का अग्रभाग बायीं तर्जनी के अग्रभाग से स्पर्श करती हुई रहें। गायत्री जाप हेतु कूर्म मुद्रा उक्त विधि के अनुसार बनती है।[20]

लाभ

• यह मुद्रा अग्नि तत्त्व को संतुलित करती है। इससे जठर, तिल्ली, यकृत, स्वादुपिंड, एड्रीनल आदि में अग्निरस एवं पित्तरस उत्पन्न होता है। इससे पाचन तंत्र मजबूत, सक्रिय एवं संतुलित रहता है।

• मणिपुर एवं ललाट चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा शरीर में रक्त और शर्करा की मात्रा, जल तत्त्व और सोडियम का नियंत्रण करती है। व्यक्ति को तनावों से मुक्तकर कार्यशक्ति एवं चरित्र विकास करती है।

• दर्शन केन्द्र एवं तैजस केन्द्र को जागृत करते हुए कषाय नियंत्रण, वासना शमन एवं हृदय परिवर्त्तन में सहयोगी बनती है। इससे बाह्य एवं आभ्यंतर तेज का वर्धन होता है।

• एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार इस मुद्रा के प्रयोग से अनैतिक प्रवृत्तियों का उपशमन होता है। व्यक्ति निर्भीक, साहसी एवं संघर्षशील बनता है। इससे मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति आदि का भी वर्धन होता है।

20. वराहक मुद्रा

संस्कृत शब्द वराह विविध अर्थों का बोधक है। विष्णु का तीसरा अवतार वराहावतार माना जाता है। यहाँ गायत्री शक्ति स्वरूप विष्णु भगवान को लक्षित कर इस मुद्रा का नाम वराहक मुद्रा रखा गया मालूम होता है। कुछ विद्वानों ने इसे विष्णुअवतार की सूचक मुद्रा कहा है।

यह संयुक्त मुद्रा गायत्री जाप से पूर्व की जाने वाली 24 मुद्राओं में से एक है। यह रोग निवारण में विशेष उपयोगी है।

विधि

वराहक मुद्रा को बनाते वक्त दायीं हथेली शरीर के मध्य भाग में (हृदय के आगे) स्थिर रहें, अंगुलियाँ नीचे की तरफ हथेली की ओर मुड़ी हुई रहें तथा अंगूठा ऊपर उठा हुआ रहें।

बायीं हथेली मध्यभाग के सन्मुख, अंगुलियाँ बाहर की तरफ, किन्तु हथेली की ओर मुड़ी हुई रहें तथा अंगूठा मध्यभाग की तरफ फैलता हुआ रहे।

स्पष्टतया इस मुद्रा में बायें हाथ की मुड़ी हुई अंगुलियाँ दायें हाथ की मुड़ी हुई अंगुलियों को प्रतिबद्ध करती है और दोनों अंगूठों के अग्रभाग परस्पर स्पर्श करते हैं।[21]

वराहक मुद्रा पूर्व विधि से विपरीत स्थिति में भी की जा सकती है उस समय दायीं हथेली ऊपर और बायीं हथेली नीचे रहेगी।

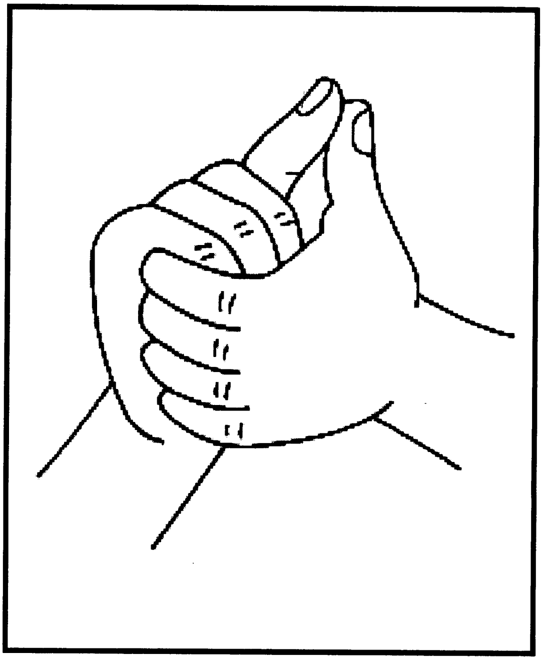

वराहकः मुद्रा

लाभ

• इस मुद्रा की साधना अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करती है। इससे शरीर एवं नाड़ी का शोधन, रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास, क्रोधादि कषायों का दमन तथा हृदय में अनहद आनंद की अनुभूति होती है।

• यह मुद्रा मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को प्रभावित करती है। इससे ज्ञान शक्ति का विकास, शान्त मन की प्राप्ति एवं शोकहीन दीर्घ जीवन प्राप्त होता है।

• तैजस केन्द्र एवं विशुद्धि केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा जीवन को उदात्त, तेजस्वी और निर्मल बनाती है।

• एक्यूप्रेशर स्पेशलिस्ट के अनुसार इससे हिचकी, स्नायुओं की ऐंठन, विजातीय तत्त्वों के निष्कासन में सहयोग मिलता है।

21. सिंहक्रान्तम् मुद्रा

इस मुद्रा नाम में सिंह + क्रान्त दो शब्दों का सुमेल है। सामान्यतया सिंह एक पराक्रमी पशु है, क्रान्त का अर्थ है ग्रस्त होना अथवा गमन करना।

दुर्गा, गायत्री का एक रूप है इसका वाहन सिंह है अत: सिंह के साथ गमन करने वाली दुर्गा देवी की तुष्टि हेतु यह मुद्रा की जाती है।

निम्न चित्र के अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि जब कोई व्यक्ति भय से क्रान्त (ग्रस्त) हो तो वह हाथ ऊपर करके अपने से बलवान के समक्ष अपनी पराजय स्वीकार कर लेता हैं अथवा स्वयं को समर्पित कर देता है।

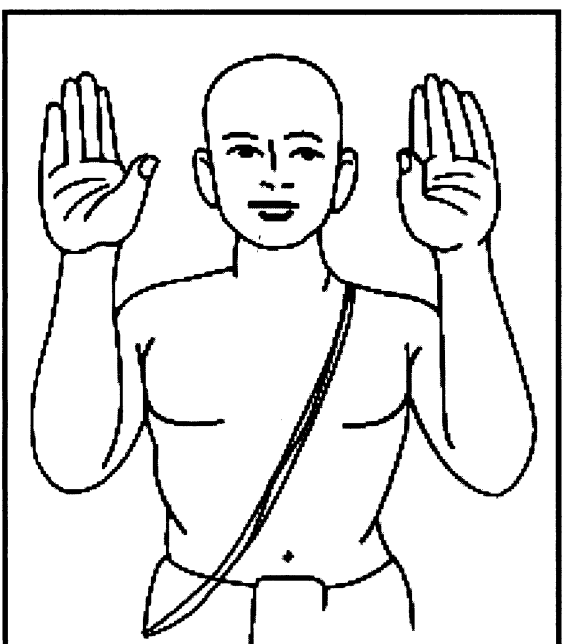

सिंहक्रान्तम् मुद्रा

यह मुद्रा दिखाकर भक्त भी इष्ट के प्रति सर्वात्मना अर्पित होता है। दूसरी दृष्टि से यह अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है कि हम आपकी कृपा से सकुशल हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार यह विष्णु के सिंह अवतार की सूचक है।

यह मुद्रा गायत्री जाप की आवश्यक मुद्राओं में से एक है और इसे रोग निवृत्ति में मुख्य माना है।

विधि

कन्धों के दोनों ओर एक-एक हाथ को स्थिर करें, अंगुलियाँ ऊपर (आकाश की तरफ) उठी हुई, हल्की सी झुकी हुई रहें, हथेलियों का भाग सामने की ओर रहे, इस तरह अभय मुद्रा के समान सिंहक्रान्त मुद्रा बनती है।[22]

लाभ

• सिंह मुद्रा करने से आकाश तत्त्व संतुलित होता है। इससे भावधारा निर्मल होती है और निःस्वार्थ भावों का निर्माण होता है।

• यह मुद्रा विशुद्धि चक्र एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर शरीर के तापमान और कैल्शियम का संतुलन करके शक्ति उत्पादन का कार्य करती है। इसी के साथ शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास करते हुए बुद्धि एवं चित्त को शांत, तीव्र एवं एकाग्र बनाती है।

• यह मुद्रा विशुद्धि केन्द्र एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित करती है। जिससे काम, क्रोध आदि कषायों का नियंत्रण होता है और जीवन उदात्त एवं निर्मल बनता है।

• एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार इससे हिचकी, स्नायुओं का ऐंठन, सुस्ती आदि दूर होती है। यह मुद्रा कैल्शियम, फास्फोरस आदि का संतुलन भी करती है। इस मुद्रा की निरंतर साधना साधक को बुद्धिशाली, लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञ आदि बनाती है।

22. महाक्रान्तम् मुद्रा

यह मुद्रा नाम महा + क्रान्त इन दो शब्दों से निर्मित है।

महा शब्द अत्यंतता एवं गाय सूचक है। अभिप्रायतः आत्मा के अनन्त गुणों से आबद्ध पुरुष महाक्रान्त कहलाता है। इस मुद्रा के द्वारा आराध्य की महिमा को व्यक्त किया जाता है। यह मुद्रा भक्ति या गुणगान से सम्बन्धित है। भक्ति योग के वक्त दोनों हाथों की स्थिति स्वयमेव चित्रानुसार बन जाती है।

इससे सुनिश्चित है कि महाक्रान्त मुद्रा से गायत्री की अपूर्व शक्ति का स्मरण एवं गुणगान किया जाता है। यह यौगिक परम्परा की रहस्य प्रधान मुद्रा है। इसे जाप साधना से पूर्व करते हैं। इससे शरीर निरोगी तथा मन स्वस्थ एवं साधना योग्य बनता है।

विधि

दोनों कन्धों के दोनों ओर अधिक दूरी न रखते हुए एक-एक हाथ को स्थिर करें, हाथ ऊपर की तरफ उठे हुए, अंगुलियाँ आकाश की तरफ फैली हुई तथा हथेलियाँ स्वयं की ओर अभिमुख रहें, इस तरह महाक्रान्त मुद्रा बनती है।[23]

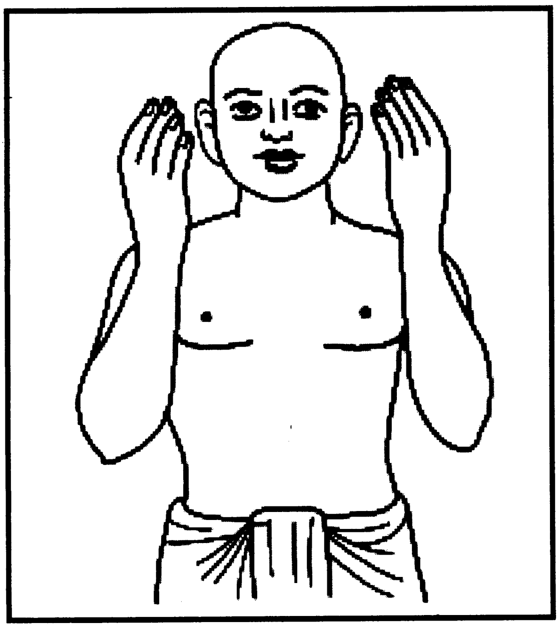

महाक्रान्तम् मुद्रा

लाभ

• महाक्रान्त मुद्रा आकाश तत्त्व को प्रभावित कर मानसिक चेतनाओं का पोषण करती है। इससे नि:स्वार्थ वृत्ति, भावुकता, प्रेम भाव का निर्माण होता है।

• यह मुद्रा मुख्यरूप से लघु मस्तिष्क को प्रभावित करती है। शरीर में चलने वाली अज्ञात क्रियाओं का नियंत्रण, चलते-दौड़ते समय स्नायुओं का संकलन एवं गर्भ की सभी क्रियाओं का नियंत्रण करने में भी सहायक बनती है।

उक्त दोनों मुद्राएँ शक्ति प्रदायिनी मुद्राएँ हैं। इन मुद्राओं के अभ्यास से साधक के मुखमंडल पर विशेष आकर्षण पैदा होता है। नियमित अभ्यास से साधक के भीतर अज्ञात शक्तियों का प्रादुर्भाव होने लगता है तथा इनका त्रैकालिक अभ्यास करने पर दिव्य शक्तियाँ एवं आभ्यन्तर शक्तियाँ प्रत्यक्ष सिद्ध हो सकती हैं।

इन मुद्राओं के दीर्घ अभ्यास के परिणाम स्वरूप सम्मोहन शक्ति, मैस्मेरिक एवं हिप्नोटिक शक्तियों का विकास होता है। इन मुद्राओं का प्राण विनिमय विद्या के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। इनका अभ्यास साधक में ओज, तेज और दिव्यता की अभिवृद्धि करता है।

सिंहक्रान्त मुद्रा के निरन्तर अभ्यास से सिंह की भाँति साहस और पराक्रम का जन्म होता है। महाक्रान्त मुद्रा के प्रयोग से मुखमंडल के चारों ओर सूक्ष्म रूप से सर्वदा एक दिव्य ओरा (तेज) विद्यमान रहने लगता है। इससे शरीरस्थ सूक्ष्म स्नायुगुच्छ, स्नायु मंडल तथा शक्ति पुंज यौगिक चक्रों में एक अद्भुत कम्पन का अहसास होता है।

23. मुद्‌गर मुद्रा

मुद्‌गर एक प्रकार का शस्त्र है जिसे पाप नाश एवं शत्रु दमन के लिए दुर्गा देवी धारण करती है। यहाँ संभवतः उसी रूप का स्मरण करते हुए यह मुद्रा निष्पन्न की जाती है।

यौगिक परम्परा में प्रचलित मुद्‌गर मुद्रा गायत्री जाप से पूर्व की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा रोग उपशान्ति के लिए महत्त्वपूर्ण मानी गयी है।

विधि

बायें हाथ को हृदय के अग्रभाग पर स्थिर करें, हथेली आकाश की ओर रहे, अंगुलियाँ सीधी फैली हुई रहें।

दायें हाथ की कोहनी बायीं हथेली पर स्थिर रहें, हाथ ऊपर की ओर उठा हुआ, बायीं हथेली से 90^0 कोण की दूरी पर रहें तथा अंगुलियाँ मुट्ठी रूप में बंधी हुई हो, इस तरह मुद्‌गर मुद्रा बनती है।[24]

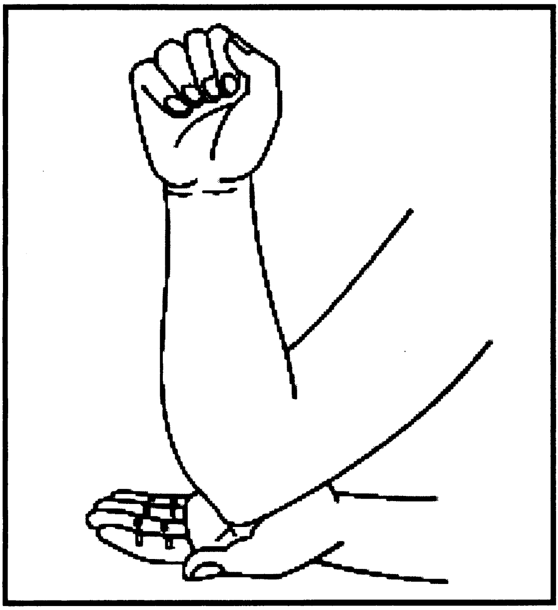

मुद्गर मुद्रा

लाभ

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को प्रभावित करती हुई शरीर को तंद्रुस्त एवं शक्तिशाली बनाने में सहायक है। इससे काम क्रोधादि कषायों का नियंत्रण तथा चिंताओं का निरोध होता है।

• मूलाधार एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा जल, फास्फोरस आदि का संतुलन करती है। शारीरिक विकास, मस्तिष्क और स्मरण शक्ति का भी संतुलन करती है।

• यौन ग्रन्थियों एवं पिच्युटरी पर प्रभाव डालते हुए यह मुद्रा शरीर की गर्मी का संतुलन, प्रजनन कार्य में सहुलियत करती है तथा बालकों में कुसंस्कारों के वर्धन को रोकती है।

24. पल्लव मुद्रा

पल्लव शब्द विशिष्ट अर्थों को सूचित करता है। सामान्यत: नए निकले हुए कमल के पत्तों का समूह पल्लव कहलाता है। यहाँ पल्लव का यही अर्थ औचित्य पूर्ण है।

यह गायत्री जाप से पूर्व की जाने वाली अंतिम मुद्रा है। इस मुद्रा को करते वक्त साधक के भीतर यह विचार उठना स्वाभाविक है कि अब हम साधना प्रारम्भ के निकट पहुँच चुके हैं उस समय भक्त का अन्तर्मन नवीन विकसित किसलय पत्तों की भाँति सहज ही प्रफुल्लित एवं उत्साहित हो जाता है।

पल्लव का एक अर्थ किनारा है। इस अर्थ के अनुसार इस मुद्रा के द्वारा गायत्री जाप से पूर्व विधि का अन्तिम छोर आता है।

पल्लव मुद्रा साधना की ओर बढ़ती हुई रूचि का संकेत करती हैं। योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान में यह मुद्रा साधनाशील भक्तों द्वारा धारण की जाती है। यह गायत्री जाप से पूर्व की जाने योग्य 24 मुद्राओं में से अंतिम है। इस मुद्रा से कैन्सर रोग भी ठीक हो जाता है।

विधि

दाहिने हाथ को कंधे के समान स्तर पर रखते हुए, हथेली को सामने की ओर तथा पाँचों अंगुलियों को आकाश की तरफ ऊपर करने पर जो मुद्रा निष्पन्न होती है उसे पल्लव मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा आशीर्वाद मुद्रा के समान प्रतीत होती है।

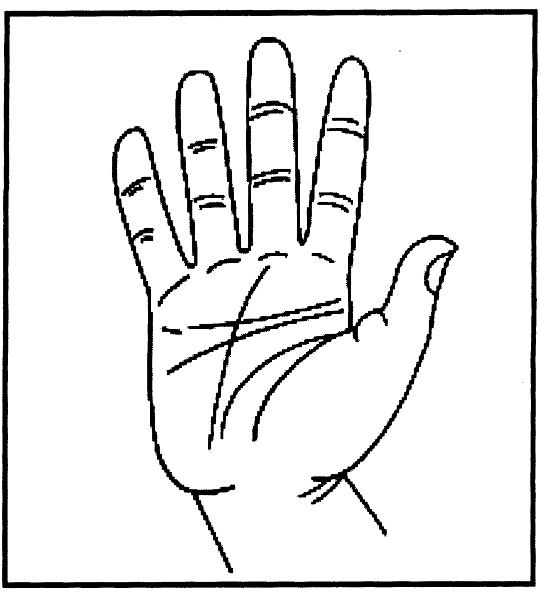

पल्लव मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

गायत्री जाप के पश्चात की जाने वाली मुद्राएँ

25. सुरभि मुद्रा

सुरभि शब्द के कई अर्थ हैं जैसे कि पृथ्वी, गायों की अधिष्ठात्री देवी, गो जाति की जननी आदि।

यहाँ सुरभि का अभिप्राय देवी विशेष से होना चाहिए। पृथ्वी भी एक तरह से देवी है, क्योंकि उसे माता कहा जाता है। गाय को माता स्वरूप माना गया है। कार्तिकेय की माता पार्वती देवी भी अभिप्रेत हो सकती है। गायत्री जाप समाप्ति के तुरन्त पश्चात यह मुद्रा गायत्री स्वरूप को आत्मस्थ करने के उद्देश्य से भी की जा सकती है।

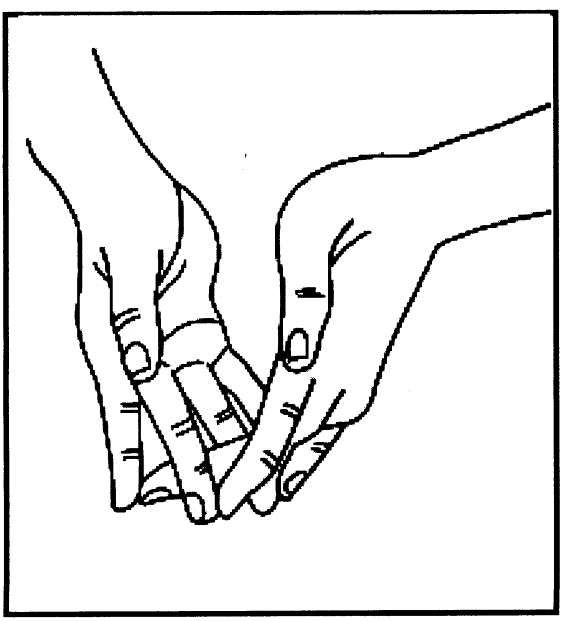

सुरभि मुद्रा

यौगिक परम्परा की यह तथ्यभूत मुद्रा उपासकों द्वारा की जाती है। यह गायत्री जाप के पश्चात की जाने वाली 8 मुद्राओं में से प्रथम है। इसे पित्त, कफ और आभ्यंतर संतुलन बनाये रखने में सहयोगी माना गया है।

विधि

दर्शाए चित्रानुसार इस मुद्रा में दोनों हाथों को भूमि से समानान्तर रखते हुए दाहिने हाथ की अनामिका को बायें हाथ की कनिष्ठिका के अग्रभाग से तथा दाहिने हाथ की कनिष्ठिका को बायें हाथ की अनामिका के अग्रभाग से योजित करें।

इसी तरह दाहिने हाथ की मध्यमा को बायें हाथ की तर्जनी के अग्रभाग से तथा दाहिने हाथ की तर्जनी को बायें हाथ की मध्यमा के अग्रभाग से स्पर्शित करने पर सुरभि मुद्रा बनती है।[26]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल मूत्र अंग, प्रजनन अंग एवं गुर्दे।

26. ज्ञानम् मुद्रा

ज्ञान शब्द आत्मबोध, सत्य प्रतीति, यथार्थज्ञान, आत्मज्ञान का सूचक है।

प्रस्तुत प्रसंग में यह मुद्रा इस रहस्य को उद्घाटित करती है कि गायत्री जाप के द्वारा साधक को जो यथार्थ अनुभूति हुई है उसे वह स्वयं में अवधारित करना चाहता है, ज्ञान मुद्रा से अभीष्ट भावों को शीघ्रमेव पूर्ण किया जा सकता है।

योगतंत्र मुद्रा विज्ञान में यह मुद्रा श्रद्धालुओं द्वारा की जाती है। गायत्री की 32 मुद्राओं में से एक है। यह नामानुरूप मस्तिष्क शक्ति को बढ़ाती है।

विधि

दाहिने हाथ को ऊपर की ओर उठाते हुए, अंगूठा एवं तर्जनी के अग्रभागों को परस्पर योजित करें, शेष अंगुलियों को एक-दूसरे से पृथक रखते हुए एवं आकाश की तरफ ऊपर उठाते हुए ढ़ीला छोड़ने पर ज्ञान मुद्रा बनती है।[27]

ज्ञानम् मुद्रा

लाभ

चक्र– सहस्रार, आज्ञा एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**– आकाश एवं वायु तत्त्व **केन्द्र**– ज्ञान, ज्योति एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि**– पीयूष, पिनियल एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– मस्तिष्क, आँखें, स्नायु तंत्र, हृदय, फेफड़ें एवं रक्त संचरण तंत्र।

27. वैराग्य मुद्रा

संसार से विरक्ति होना वैराग्य कहलाता है। शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार मन की वह वृत्ति जिसके प्रभाव से सांसारिक भौतिक सम्पदाएँ एवं विषय वासनाएँ तुच्छ प्रतीत हो उसे वैराग्य कहा जाता है।

गायत्री जाप की मुद्राओं के अन्तर्गत ज्ञान मुद्रा के पश्चात वैराग्य मुद्रा दिखाने का प्रयोजन यह है कि जब साधक ज्ञान मुद्रा के माध्यम से सत्य स्वरूप को पहचान लेता है तब उसके मन में संसार विरक्ति का भाव स्वतः जागृत हो उठता है। इस मुद्रा के माध्यम से वैराग्यमयी स्थिति को परिपुष्ट किया जाता है।

गायत्री जाप के पश्चात की जाने वाली 8 मुद्राओं में से यह एक है। यह मुद्रा मानसिक तनाव, अवनति (Depression) हिचकिचाहट, अनिश्चय जैसे मानसिक रोगों में लाभकारी है।

विधि

दोनों हाथों को घुटनों पर अथवा घुटनों की तरफ स्थिर करते हुए हथेलियों को आकाश की ओर रखें, अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को परस्पर संयुक्त करें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को हल्की सी अलग करते हुए बाहर की ओर फैलाने पर जो मुद्रा निष्पन्न होती है उसे वैराग्य मुद्रा कहते हैं।[28]

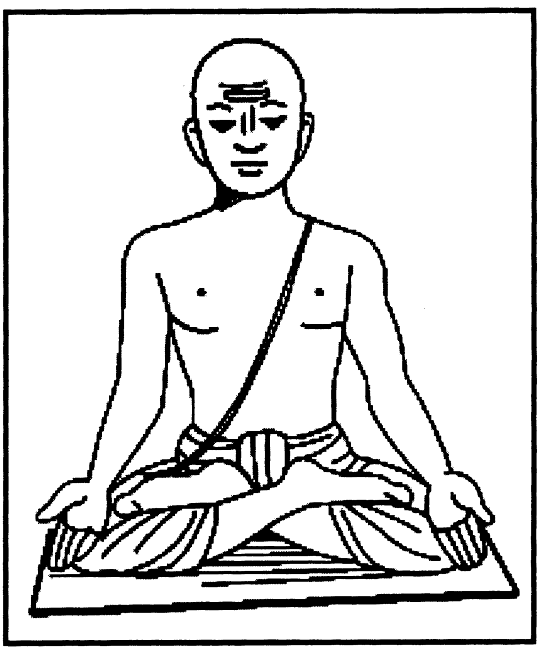

वैराग्य मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं प्रजनन **केन्द्र–** तैजस, आनंद एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी

संस्थान, रक्त संचरण तंत्र, हृदय, फेफड़ें, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे आदि।

28. योनि मुद्रा

योनि शब्द विविध अर्थों का बोधक है। योनि को उत्पादक कारण, उत्पत्ति स्थान,जननेन्द्रिय, अंत:करण आदि कहते हैं। योनि का एक अर्थ गोपनीय भी है क्योंकि योनि गुप्त रहती है। जैन साहित्य एवं पुराण शास्त्रों के अनुसार सम्पूर्ण लोक में चौरासी लाख जीव योनियाँ है।

प्रस्तुत प्रकरण में योनि का अभिप्राय अंत:करण से होना चाहिए, क्योंकि गायत्री जाप के द्वारा जो ज्ञान और वैराग्य साधक में आविर्भूत हुआ है वह उसके अन्त:करण में समाहित हो जाये।

इस मुद्राभिव्यक्ति के माध्यम से साधक अंत:करण को निर्मल, इन्द्रियों को संयमित एवं प्राप्त शक्ति को संग्रहित कर रखने का संकल्प दर्शाता है।

यौगिक परम्परा में गायत्री जाप के पश्चात की जाने वाली 8 मुद्राओं में से

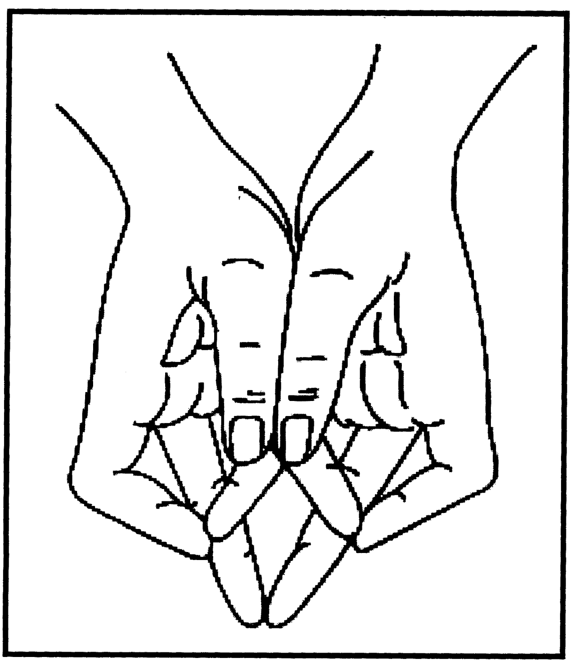

योनि मुद्रा

एक है। यह रोग शमन में विशेष रूप से कैन्सर को ठीक करने में उपयोगी मुद्रा है।

विधि

दोनों हथेलियाँ आकाश की ओर अभिमुख हो, हथेलियाँ और कनिष्ठिका की बाह्य किनारी परस्पर मिलती हुई, दोनों अंगूठे कनिष्ठिका अंगुलियों के मूल भाग पर, दायें हाथ की अनामिका बायें हाथ की मध्यमा के नीचे से होती हुई बायीं तर्जनी के प्रथम पोर का स्पर्श करें तथा बायें हाथ की अनामिका दायें हाथ की मध्यमा के नीचे से होती हुई दायीं तर्जनी के प्रथम पोर का स्पर्श करने पर योनि मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कमर के स्तर पर धारण की जाती है।[29]

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मल-मूत्र अंग एवं प्रजनन अंग।

29. शंख मुद्रा

शंख, समुद्र में पाया जाने वाला बेइन्द्रिय जीव है। पुराणों के अनुसार विष्णु के चार हाथों में से एक हाथ में शंख होता है। वैद्यक के अनुसार यह नेत्रों के लिए हितकारी, पित्त, कफ, रूधिर विकार, विष विकार, संग्रहणी, वायु, श्वास रोग को नष्ट करने वाला है।

यहाँ शंख मुद्रा अपने समस्त गुणों को अभिव्यक्त एवं साधक में उन विशेषताओं को रूपान्तरित करने की सूचक है। दूसरे दृष्टिकोण से जिस प्रकार पूजा आदि के वक्त शंख ध्वनि प्रसरित कर हर्ष की अभिव्यक्ति एवं वातावरण को निर्मल किया जाता है। उसी प्रकार जाप साधना के अनन्तर इस मुद्रा द्वारा आत्मीय आनन्द को व्यक्त करते हैं।

यौगिक परम्परा में यह मुद्रा गायत्री जाप के पश्चात अनुयायियों द्वारा सम्पन्न की जाती है। यह रोग शमन में विशेष उपयोगी है।

विधि

बाएं हाथ के अंगूठे को दायीं मुट्ठी में रखें, फिर दायीं मुट्ठी को ऊर्ध्वमुख

रखते हुए उसके अंगूठे को फैला दें। फिर बाएं हाथ की सभी अंगुलियों को एक-दूसरे के साथ सटाते हुए फैलाएं। तदनन्तर बाएं हाथ की फैली अंगुलियों को दायीं ओर घुमाकर दाएं हाथ के अंगूठे का स्पर्श करने पर जो आकृति बनती है वह शंख मुद्रा है।

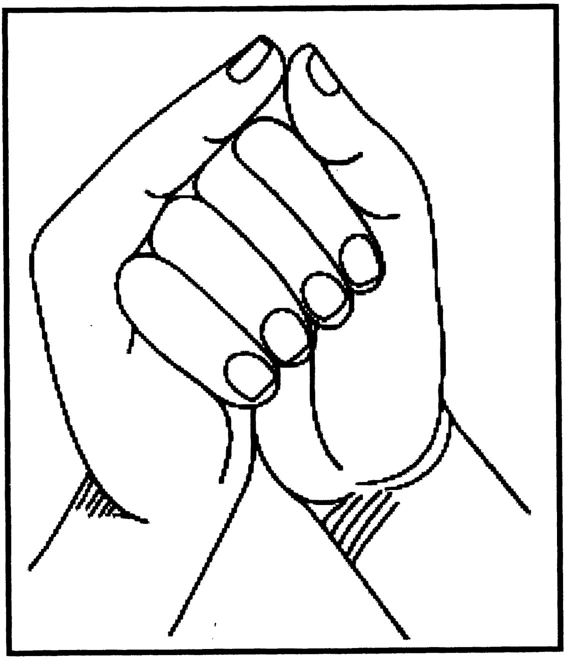

शंख मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, आँख एवं ऊपरी मस्तिष्क।

30. पंकज मुद्रा

पंकज का अभिप्राय कमल से है। कमल को अर्पण करने के लिए श्रेष्ठ पुष्प माना गया है। यह कई देवी-देवताओं का आसन भी है तथा कीचड़ में रहकर उससे निर्लिप्त रहना इसकी अनुपम विशेषता है।

इस मुद्रा के द्वारा साधक स्वयं को कमल की भाँति श्रेष्ठ बनाने एवं सांसारिक प्रपंचों से मुक्त रहने की प्रार्थना करता है।

यह मुद्रा योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की परम्परा में श्रद्धालुओं द्वारा धारण की जाती है। यह गायत्री जाप के अनन्तर की जाने वाली 8 मुद्राओं में से एक संयुक्त मुद्रा है।

विधि

इस मुद्रा को बनाते वक्त दोनों हथेलियों की एड़ी अथवा निचला हिस्सा स्पर्श करता हुआ रहे, अंगूठे बाह्य किनारियों से एवं कनिष्ठिकाएँ प्रथम पोर (अग्रभाग) से स्पर्श करती हुई रहें तथा शेष अंगुलियों को पृथक्-पृथक् बाहर की तरफ अभिमुख करने पर पंकज मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा अष्टदल मुद्रा के समान कमर के स्तर पर धारण की जाती है।[31]

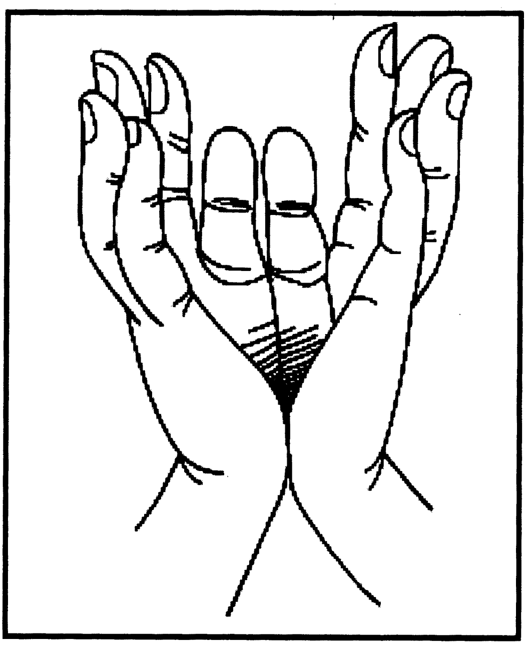

पंकज मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र आदि।

31. लिंग मुद्रा

सामान्य तौर पर जिससे किसी वस्तु की पहचान हो उसे लिंग कहते हैं। वेदान्त दर्शन के अनुसार सूक्ष्म शरीर, ईश्वर का प्रतीक चिह्न लिंग कहलाता है।

चित्रानुसार लिंग मुद्रा ईश्वर शक्ति सम्पन्न स्व-स्वरूप की प्रतीति एवं पौरुषत्व की अनुभूति करने का प्रतीक है।

चित्रांकित अंगूठा शिवलिंग का सूचन करता है।

एक अपेक्षा से यह मुद्रा लिंग मुक्त होने के अभिप्राय से भी की जा सकती है।

यौगिक परम्परा में लिंग मुद्रा दोनों हाथों से जाप साधना के पश्चात की जाती है। यह मुद्रा सर्दी, जुकाम, बलगम आदि से राहत पाने के लिए अधिक उपयोगी है।

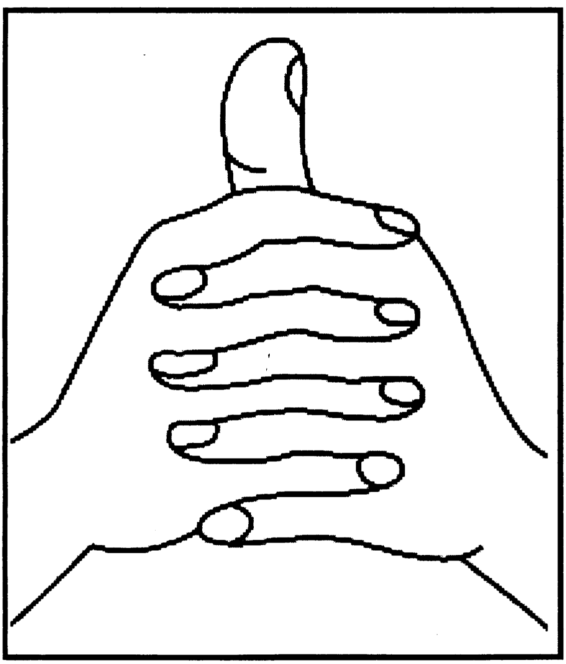

लिंग मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के अभिमुख करते हुए परस्पर संयुक्त कर दें, फिर सभी अंगुलियों को एक-दूसरे में गूंथकर हथेली के पृष्ठ भाग की तरफ जाने

दें, बायें हाथ को ऊपर (बाहर) की तरफ रखें और दायें अंगूठे को आकाश की ओर ऊर्ध्वस्थित करने से लिंग मुद्रा बनती है।[32]

यह मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है।

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र**– शक्ति एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

32. निर्वाण मुद्रा

निर्वाण शब्द समाप्ति, शांति, मुक्ति, मोक्ष आदि अर्थों का वाचक है। यहाँ निर्वाण का मुख्य अभिप्राय मोक्ष प्राप्ति है। प्रत्येक जीव का लक्ष्य अंततोगत्वा मोक्षगमन ही है।

इस मुद्रा के द्वारा व्यक्ति निर्वाण पद की कामना करता है अथवा इष्ट तत्त्व को निर्वाण स्वरूपी मानता हुआ स्वयं के लिए उसकी याचना करता है।

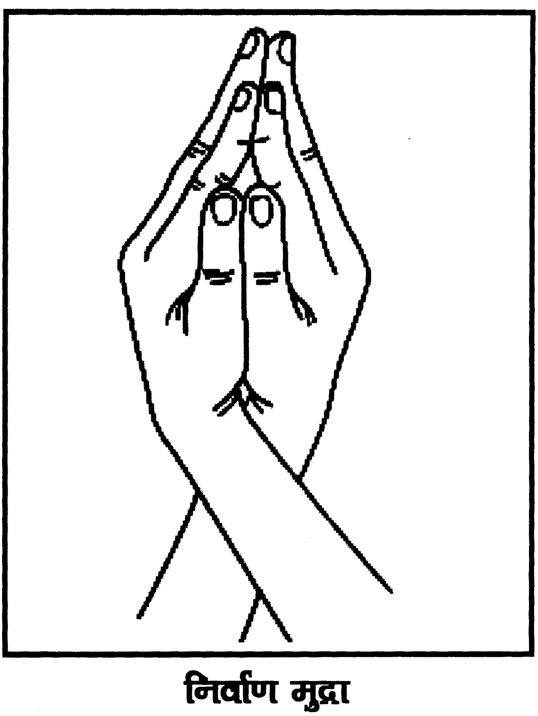

निर्वाण मुद्रा

निर्वाण मुद्रा अपने नाम के अनुसार फलदायी है।

योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की यौगिक परम्परा में यह मुद्रा श्रद्धालु भक्तों द्वारा की जाती है। यह गायत्री जाप संबंधी मुद्राओं में से सबसे अन्तिम मुद्रा है। यह संयुक्त मुद्रा रोग से मुक्त होने के लिए प्रभावशाली मानी गयी है।

विधि

बायीं हथेली बायीं तरफ और दायीं हथेली दायीं तरफ रहें, अंगुलियाँ और अंगूठें आकाश की तरफ उठे हुए एवं थोड़े से झुके हुए रहें, दोनों हाथ कलाई पर क्रोस करते हुए निकट लाए जाएं, इस तरह निर्वाण मुद्रा बनती है।[33]

यह मुद्रा नमस्कार मुद्रा के समान हैं किन्तु इसमें अंगूठें आगे होते हैं।

लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** विशुद्ध एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुंह, स्वर यंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

गायत्री पूजन में प्रयुक्त उपरोक्त 32 मुद्राएँ तांत्रिक एवं आध्यात्मिक साधना में विशेष महत्त्व रखती है। भारतीय ऋषियों ने आंतरिक कल्याण के लिए इसे जितना महत्त्वपूर्ण माना है, बाह्य विकास में भी यह उतनी ही सहयोगी है। ये मुद्राएँ विभिन्न चक्रों, केन्द्रों एवं ग्रन्थियों आदि को प्रभावित करते हुए शारीरिक एवं मानसिक संतुलन स्थापित करती हैं। इस मुद्रा वर्णन के माध्यम से प्रत्येक आराधक दैहिक स्वस्थता, वैचारिक ऊर्ध्वता चारित्रिक सम्पन्नता को प्राप्त करते हुए सर्वोच्च आत्मिक स्वरूप को प्राप्त करें यही प्रयास किया है।

सन्दर्भ-सूची

1. *समुखं संपुटं चैव, विततं विस्तृतं तथा।*
द्विमुखं त्रिमुखं चैव, चतुः पंचमुखं तथा॥
षण्मुखाधोमुखं चैव, व्यापकांजलिकं तथा।
शकटं यमपाशं च, ग्रथितं संमुखोन्मुखम्॥
बिलंबं मुष्टिकं चैव, मत्स्यं कूर्मं वराहकम्।
सिंहाक्रांतं महाक्रांतं, मुद्गर पल्लवं तथा॥

त्रिशूलयोनी सुरभिश्चाक्षमाला च लिंगकम्।
अंबुजं च महामुद्रास्तुर्यरूपाः प्रकीर्तिताः ।।
इत्येताः कीर्तिता मुद्रा, वर्णानां ते महामुने।
महापापक्षयकराः, कीर्तिदा कांतिदा मुने ।।

(क) देवी भागवत (द्वितीय खण्ड) गायत्री का स्वरूप, श्लोक 40-44

अथातो दर्शयेन्मुद्राः, सुमुखं सम्पुटं तथा।
ततो विततविस्तीर्णे, द्विमुखत्रिमुखे ततः ।।
चतुर्मुखं पंचमुखं, षण्मुखाधोमुखे ततः ।
व्यापकांजलिकाख्यं च, शकटं तदनन्तरम् ।।
यमपाशं च ग्रथितं, ततः स्थात्संमुखोन्मुखम्।
प्रलम्बो मुष्टिको मीनः, कूर्मो वाराह एव च ।।
सिंहक्रान्तं महाक्रान्तं, ततो मुद्गरपल्लवौ ।।

(ख) वीरमित्रोदय, आह्निक प्रकाश (भाग 3) पृ. 298-99, श्लो. 11,17,99-101

2. (क) *सुमुखं सन्धितौ हस्तावुत्तानौ कुंचितांगुली।*
वीरमित्रोदय, आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99
   (ख) *मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, केशवदेव, पृ. 79*
   (ग) *नित्यकर्म पूजा प्रकाश, रामबवन ए मिश्रा लाल बिहारी मिश्रा, पृ. 70*
3. (क) *सम्पुटं पद्मकोशाभौ, करावन्योयन्यसंहतौ। आह्निकप्रकाश, पृ. 298-99*
   (ख) *मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 80*
   (ग) *नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 70*
4. (क) *विततं संहतौ हस्ता वुत्तानावायतांगुली। आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99*
   (ख) *मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 80*
   (ग) *नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 70*
5. (क) *विस्तीर्णं संहतौ पाणी, मिथो मुक्तांगुलीद्वयौ। आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99*
   (ख) *मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 80*
   (ग) *नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 70*
6. (क) *संमुखासक्तयोः पाण्योः, कनिष्ठाद्वययोगतः।*
शोषांगुलीनां वैकल्ये, द्विमुखत्रिमुखादयः।।
आह्निकप्रकाश, पृ. 298-99

(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 81
(ग) नित्यकर्म पूजा प्रकाश, पृ. 70

7\. (क) आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 81
(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 70

8\. (क) आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 81
(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 72

9\. (क) आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 82
(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 72

10\. (क) शेषांगुलीनां संयोगात्, पूर्व संयोगनाशनम् ।
तिर्यक्संयुज्यमानाग्रौ, संयुक्तांगुलि मण्डलौ।
हस्तौ षण्मुखमित्युक्ता, मुद्रा मुद्राविशारदैः ॥
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्राविज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 82
(ग) नित्यकर्म पूजा प्रकाश, पृ. 72

11\. (क) आकुचिताग्रौ संयुक्तौ, न्युब्जौ हस्तवधोमुखम्। आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 82
(ग) नित्य कर्म पूजा, प्रकाश, पृ. 72

12\. (क) उत्तानौ तादृशावेव व्यापकाकुंचितौ करौ। आह्निकप्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 83
(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 72

13\. (क) अधोमुखौ बद्धमुष्टी, मुक्ताग्रांगुष्ठकौ करौ ।
शकटं नाम कथितं, यमपाशमतः परम् ॥
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, 83

14\. (क) बद्धमुष्टिकयोः पाण्योरूत्ताना वामतर्जनी।
कुंचिताग्रान्यया मुक्ता तर्जन्या न्युब्जवक्रया॥
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99

(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 83

(ग) नित्यकर्म पूजा प्रकाश, पृ. 73

15. (क) उत्तानसन्धि-संलीन, बद्धांगुलि दलौ करौ।
संमुखौ घटितौ दीर्घाङ्गुष्ठौ ग्रथितामुच्यते ।।
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99

(ख) मुद्रा विज्ञान, ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 84

(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 73

16. (क) सन्धितोर्ध्वांगुलि र्वामस्तादृशा दक्षिणेन तु।
अधोमुखेन संयुक्तः संमुखोन्मुखमुच्यते।।
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99

(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 84, 107

17. उत्तानोन्नतकोटी च प्रलम्बः कथितौ करौ। आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99

18. (क) "मुष्टी चान्योन्यसंयुक्ता वुत्तानौ मुष्टिको भवेत्"। आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99

(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 85

(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 73

19. (क) मत्स्यस्तु संमुखी भूतौ, युक्तानामिकनिष्ठिकौ।
ऊर्ध्वसंयुक्तवक्राग्रा, शेषांगुलिदलौ करौ ।।
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99

(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 85

(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 73

20. (क) अधोमुखः करो वामस्तादृशा दक्षिणेन तु।
पृष्ठदेशे समाक्रान्तः, कूर्मो नामाभिधीयते ।।
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99

(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 86

(ग) नित्यकर्म पूजा प्रकाश, पृ. 74

21. (क) ऊर्ध्वमध्ये वामभुजः, कक्षाभ्यामाश्रयेत्करे।
वराहः कथ्यते कक्ष, समीपाश्रयके करे ।।
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99

(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 86, 108

(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 74

22. (क) सिंहक्रान्तं समाख्यातं, कर्णार्पित करावुभौ।
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 86, 108
(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 74
23. (क) किंचितदाकुंचिताग्रौ च महाक्रान्तं ततः परम्।
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्रा विज्ञान, केशवदेव, पृ. 108
(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 74
24. (क) ऊर्ध्वं किंचिद् गतौ पाणी, मुद्‌गरो नाम तर्जनी।
ग्रस्ता दक्षिणहस्तेनेत्याहु र्मुद्रा विशारदाः ॥
आह्निक प्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्रा विज्ञान, केशवदेव, पृ. 87, 108
(ग) नित्यकर्म पूजा प्रकाश, पृ. 74
25. (क) अधोमुखः स्थितो मूर्ध्नि, पल्लवो दक्षिणः करः।
आह्निकप्रकाश, पृ. 298-99
(ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 108
(ग) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 74
26. मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 43
27. वही, पृ. 22
28. वही, पृ. 27, 108
29. वही, पृ. 89, 108
30. (क) वही, पृ. 89, 108
(ख) नित्यकर्म पूजा प्रकाश, पृ. 77
31. (क) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 89, 108
(ख) नित्य कर्म पूजा प्रकाश, पृ. 77
32. मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 60, 90, 108
33. (क) वही, पृ. 90, 108
(ख) नित्यकर्मपूजा प्रकाश, पृ. 77

●

अध्याय-5

पूजोपासना आदि में प्रचलित मुद्राओं की प्रयोग विधियाँ

हिन्दू उपासना में अंगन्यास, पूजा, होम आदि क्रियाओं को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। कुछ क्रियाएँ शारीरिक रक्षा कवच के रूप में की जाती है तो कुछ क्रियाएँ आन्तरिक उन्नति के लिए। इन सभी का एक मुख्य भाग होता है मुद्रा प्रयोग। प्रस्तुत अध्याय में पूजा-उपासना से सम्बन्धित कुछ मुद्राएँ प्रामाणिक सन्दर्भ के साथ एवं कुछेक अर्वाचीन संकलित पुस्तकों के आधार पर उल्लिखित की जा रही है। हिन्दू उपासना पद्धति में इन मुद्राओं का प्रयोग लगभग होता ही है।

षडंग न्यास सम्बन्धी मुद्राएँ

षट् चक्रों को जागृत करने हेतु की जाने वाली एक तान्त्रिक क्रिया, न्यास कहलाती है। शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में निर्धारित अंगुलियों का स्पर्श करते हुए भिन्न-भिन्न देवताओं का ध्यान एवं तद्योग्य मन्त्रों का स्मरण करना अंगन्यास मुद्रा है।

पूजा आदि मांगलिक कार्यों में आसुरी शक्तियों द्वारा उपद्रव होने की पूर्ण संभावना रहती हैं जिससे शरीर के अवयव भी क्षत-विक्षत हो सकते हैं। करन्यास मुद्राओं के द्वारा उपद्रवों का निवारण किया जाता है। इस प्रक्रिया में छह मुद्राएँ बताई गई हैं और इन मुद्राओं का हिन्दू एवं बौद्ध दोनों परम्पराओं में समान स्थान हैं।

1. हृदयाय मुद्रा

यह मुद्रा हृदय को पवित्र करने के उद्देश्य से की जाती है अत: हृदयाय मुद्रा कहलाती है।

दायें हाथ को हृदय के मध्य रखकर **"ऐं हृदयाय नमः"** मन्त्र का

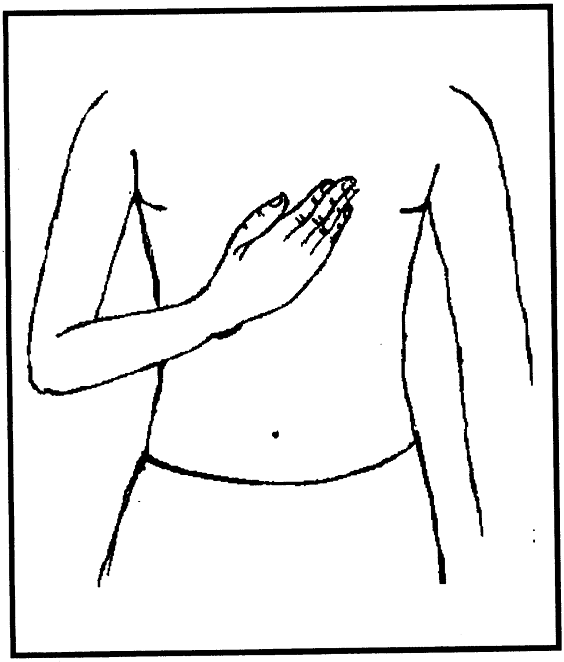

हृदयाय मुद्रा

उच्चारण करना हृदयाय मुद्रा है।[1]

सुपरिणाम

इस मुद्रा से निम्न चक्रादि प्रभावित होते हैं- **चक्र**- अनाहत, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**- वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र**- आनंद, ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि**- थायमस, पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**- हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली, मस्तिष्क, आँख एवं स्नायुतंत्र।

2. कवचाय मुद्रा

कवच अर्थात आवरण। इस मुद्रा के द्वारा सम्पूर्ण शरीर पर रक्षा कवच बनाया जाता है अत: कवचाय मुद्रा नाम है।

दोनों हाथों को cross करते हुए हथेलियों के द्वारा द्वय भुजाओं का स्पर्श करना कवच मुद्रा है।[2]

इसका मन्त्र है— **''ओम् सहु कवचाय हुं।''**

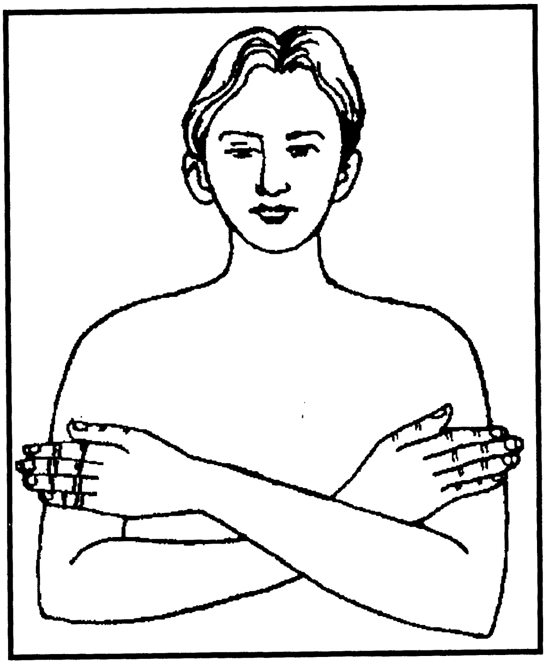

कवचाय मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँखें।

3. नेत्रत्रोयेय मुद्रा

यह मुद्रा नेत्रों की रक्षा एवं पवित्रीकरण के उद्देश्य से की जाती है। इस मुद्रा के पीछे अन्तर चक्षुओं को जागृत करने के भाव भी छुपे रहते हैं।

तर्जनी और मध्यमा के द्वारा आवृत्त चक्षुओं को स्पर्शित करना नेत्रत्रोयेय मुद्रा है।[3]

इसका मन्त्र है— **"ओम् भुवः नेत्रत्रोयैय वौषट्।"**

नेत्रत्रोयेय मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– विशुद्धि, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र**– विशुद्धि, ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि**– थायरॉइड, पेराथायरॉइड, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– नाक, कान, गला, मुँह, ऊपरी एवं निचला मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

4. फट् मुद्रा

फट् एक तान्त्रिक मन्त्र है, इसे अस्त्र मंत्र भी कहते हैं। इस मन्त्र का प्रयोग पात्र प्रक्षालन, अघमर्षण प्रक्षेपन, विघ्नोत्त्रासन, करांगन्यास, अग्न्याहवान आदि में होता है।

यहाँ फट् मुद्रा का अभिप्राय विघ्नोत्त्रासन, करांगन्यास अथवा पाप प्रक्षालन कुछ भी हो सकता है।

दायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा के द्वारा बायीं हथेली का स्पर्श करना फट् मुद्रा है।[4]

इसका मन्त्र है— **"ओम् भुर्भुवः फट्।"**

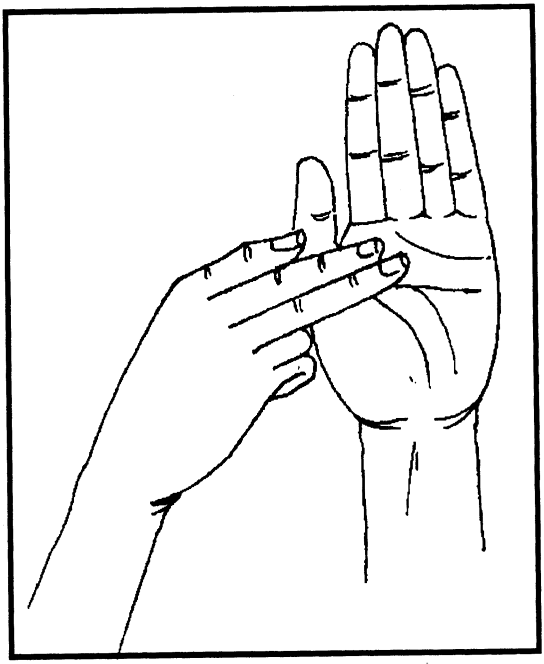

फट् मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र**– तैजस, ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, स्नायु तंत्र, मस्तिष्क एवं आँखें।

5. शिखायै मुद्रा

यह मुद्रा शिखा (चोटी) स्थान को जागृत एवं सुरक्षित रखने के प्रयोजन से की जाती है अत: इसका नाम शिखायै मुद्रा है।

दायें अंगूठे के अग्रभाग से मस्तक के अग्रभाग का स्पर्श करना शिखायै मुद्रा है।[5]

इसका मन्त्र है— **"ओम सहु शिखायै हुं।"**

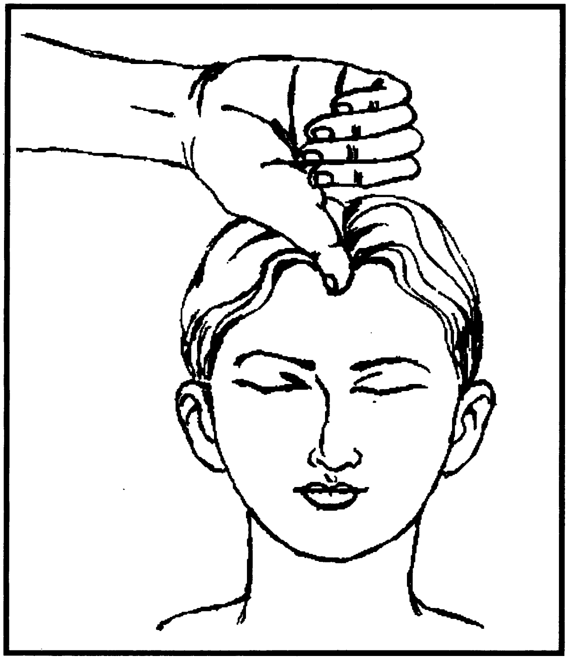

शिखायै मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– सहस्रार एवं विशुद्ध चक्र **तत्त्व**– आकाश एवं वायु तत्त्व **केन्द्र**– ज्ञान एवं विशुद्धि केन्द्र **ग्रन्थि**– पिनियल, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– ऊपरी मस्तिष्क, आँखें, नाक, कान, गला, मुंह एवं स्वर यंत्र।

6. शिरसी मुद्रा

यह मुद्रा मस्तिष्कीय शक्ति को जागृत करने एवं तद्स्थान की रक्षा करने हेतु की जाती है अत: इसे शिरसी मुद्रा कहते हैं।

दायें हाथ की चतु: अंगुलियों के अग्रभाग से ललाट भाग को स्पर्श करना शिरसी मुद्रा है।[6]

इसका मन्त्र है **''ओम क्लिं शिरसी स्व:।''**

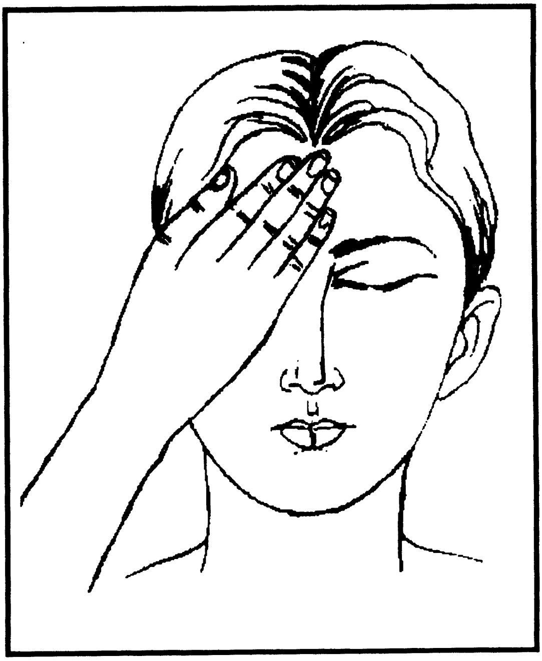

शिरसी मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **केन्द्र–** ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, निचला मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

जीवन्यास सम्बन्धी मुद्राएँ

जीव अर्थात चेतना, न्यास अर्थात आरोपित करना। चेतनात्मक केन्द्रों पर मंत्रों अथवा शुभ परिणामों को तदनुरूप हाव-भाव सहित आरोपित करना जीवन्यास मुद्रा कहलाती है। तन्त्र साधना में जीवन्यास संबंधित छह मुद्राएँ कही गई हैं वे इस प्रकार हैं–[7]

1. बीज मुद्रा

बीज शब्द के अनेक अर्थ हैं जीवाणु, तत्त्व, मूल स्रोत, कारण, मन्त्र का प्रथम अक्षर इत्यादि। यहाँ बीज से तात्पर्य मूल स्रोत, प्रथम मन्त्राक्षर आदि है। जिस प्रकार मंत्रों में बीज मंत्र महत्त्वपूर्ण हैं उसी प्रकार मुद्राओं में यह बीज मुद्रा है।

इस बीज मुद्रा का उद्देश्य चेतना के मूल स्वभाव की उपलब्धि है।

विधि

किसी भी योग्य आसन में बैठ जाएँ। तदनन्तर दोनों हाथों को अर्धचन्द्र के आकार में परिवर्तित कर दोनों तर्जनी अंगुलियों एवं दोनों अंगूठों को परस्पर मिलाएँ। फिर उनके नीचे के भाग में दोनों मध्यमा अंगुलियों को दोनों कनिष्ठिका अंगुलियों से जोड़ें। फिर सबसे नीचे अनामिका अंगुलियों को लगाने पर बीज मुद्रा बनती है।

निर्देश– 1. इस मुद्रा का अभ्यास ध्यानोपयोगी आसन में ही करें। 2. बीज मुद्रा को प्रारम्भ में यथाशक्ति कितनी भी अवधि तक कर सकते हैं, किन्तु थोड़े दिनों के पश्चात 48 मिनट का समय पूर्ण होना चाहिए। 3. इस मुद्रा सिद्धि के लिए दिन अथवा रात्रि का कोई भी समय निश्चित कर सकते हैं। 4. पूज्य पुरुषों का कहना है कि ये मुद्राएँ प्रसंग विशेष पर ही की जाती हैं। योगी पुरुष ही इन मुद्राओं की साधना करते हैं। सामान्य औषधोपचार के रूप में इसका प्रयोग नहींवत होता है।

सुपरिणाम

यह समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली अति महत्त्वपूर्ण मुद्रा है। इस मुद्रा में अग्नि तत्त्व (अंगूठा) और वायु तत्त्व (तर्जनी) का संयोग हुआ है। इन दोनों तत्त्वों के मिलने से वायु सम्बन्धी तकलीफों में राहत मिलती है, गैस की विकृतियाँ दूर होती हैं, उदर जनित रोगों में भी फायदा होता है। इस मुद्रा में आकाश तत्त्व (मध्यमा) और जल तत्त्व (कनिष्ठिका) का संयोजन होने से शरीर में रासायनिक परिवर्तन होते हैं और संतुलित व्यक्तित्व का विकास होता है।

मानसिक तौर पर एकाग्रता का विकास होता है, मस्तिष्क के स्नायु शक्तिशाली बनते हैं और मन: स्थैर्य में वृद्धि होती है।

आध्यात्मिक तौर पर सम्यक विचारों का आविर्भाव होता है जिससे साध्य उपलब्धि का मार्ग सहज बनता है।

2. लेलिहा मुद्रा

संस्कृत के लिह् धातु से 'लेलिहा' शब्द की रचना हुई है। लेलिहा साँप को कहते हैं। इस मुद्रा का दूसरा नाम लेलिहान भी है जिसका एक अर्थ शिव का

विशेषण भी किया गया है। शिव भगवान सर्पधारी देखे जाते हैं।

शिव शक्ति को जागृत करने के प्रयोजन से यह मुद्रा की जाती है।

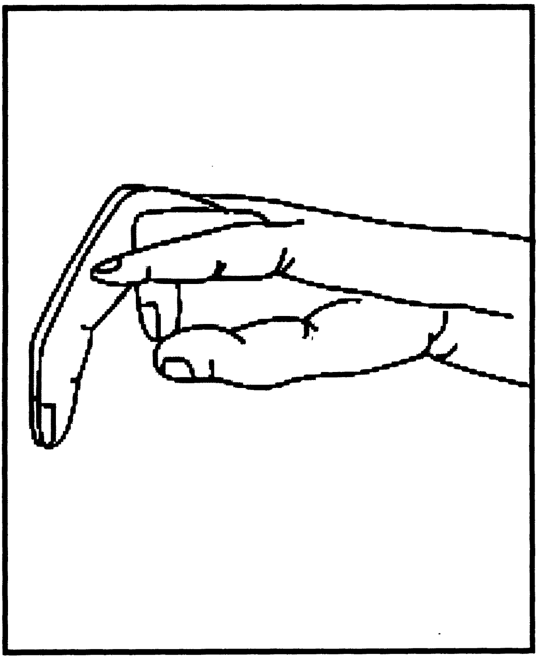

लेलिहा मुद्रा

विधि

आरामदायक स्थिति में बैठ जायें। तत्पश्चात तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को समान रूप से अधोमुखी करें, कनिष्ठिका अंगुली को सीधा रहने दें। फिर अंगूठे के अग्रभाग को अनामिका के अग्रभाग से जोड़ दें, इसे लेलिहा मुद्रा कहते हैं।

निर्देश– बीज मुद्रावत समझें।

सुपरिणाम– जानकारी के अनुसार इस मुद्रा का प्रयोग जीवन्यास के अतिरिक्त तारा साधना के समय भगवती तारा को प्रसन्न करने हेतु किया जाता है। कहा जाता है कि यह मुद्रा अत्यन्त रहस्यमयी एवं आनन्दमयी प्रभाव को उत्पन्न करती है जिससे देवी तारा प्रसन्न होती है।

इस मुद्रा को करते समय अग्नि (अंगूठा) और पृथ्वी तत्त्व (अनामिका) का योग होता है इससे पृथ्वी और सूर्य मुद्रा के सभी लाभ प्राप्त होते हैं। विशेष तौर

पर शारीरिक और मानसिक तनाव दूर होते हैं तथा आंतरिक उत्साह, देहस्फूर्ति, वैचारिक स्वस्थता में अभिवृद्धि होती है।

इस मुद्रा से निम्न चक्रादि के प्रभाव भी हासिल होते हैं-

चक्र- स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व**- जल एवं अग्नि तत्त्व **केन्द्र**- स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र **ग्रन्थि**- प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**- मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली एवं आँतें।

3. त्रिखण्डा मुद्रा

त्रिखण्ड का शाब्दिक अर्थ होता है तीन खण्ड (भाग) से युक्त। जिस मुद्रा में अंतस्थ भावों को तदनुरूप हावभाव के साथ तीन खण्ड के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है उसे त्रिखण्डा मुद्रा कह सकते हैं।

सांकेतिक अर्थ की दृष्टि से तीन लोकों में पूजनीय वीतराग पद की प्राप्ति के निमित्त यह मुद्रा की जाती है।

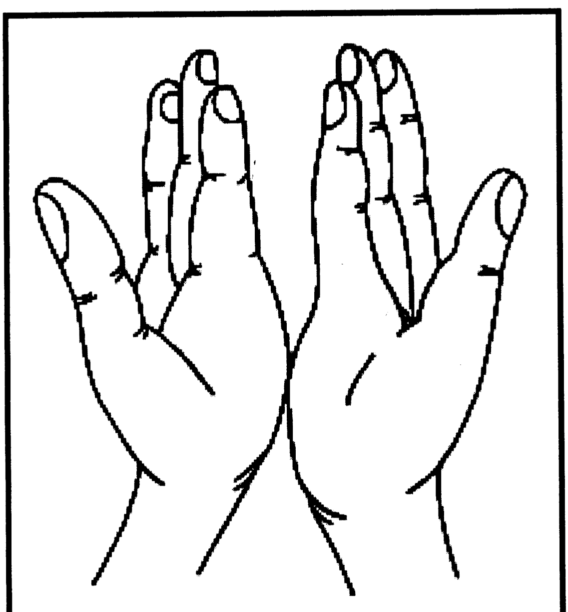

त्रिखण्डा मुद्रा

विधि

किसी भी आरामदायक योग्य आसन में बैठ जाएँ। तत्पश्चात दोनों हाथों को पलट कर हथेलियों के पृष्ठ भागों को संयुक्त करें। अंगुष्ठों को सीधा रहने दें। दोनों तर्जनी अंगुलियों को किंचित टेढ़ी कर उनसे दोनों अनामिकाओं को पकड़ें और कनिष्ठिका से योजित कर दें इसे त्रिखण्डा मुद्रा कहते हैं।

निर्देश– बीज मुद्रावत समझें।

सुपरिणाम– जीवन्यास की यह मुद्रा अत्यन्त गोपनीय है। इस मुद्रा के प्रयोग में वायु एवं आकाश तत्त्व अत्यधिक प्रभावित होते हैं। किंचित रूप से जल तत्त्व पर भी असर पड़ता है। परिणामस्वरूप वायुजनित, हृदय जनित, त्वचा एवं रक्त जनित सभी तरह की बीमारियाँ आसानी से ठीक हो जाती हैं।

मानसिक दृष्टि से चंचल प्रवृत्तियाँ समाप्त होती है। साधना की दृष्टि से चेतना ऊर्ध्वगामी बनती है।

4. नाद मुद्रा

नाद का शाब्दिक अर्थ है ध्वनि या शब्द। संस्कृत कोश के अनुसार दहाड़ना, गरजना, उच्च स्वर से आवाज करना आदि नाद कहलाता है। योगशास्त्र के निर्देशानुसार वह अनुनासिक ध्वनि जिसे हम चन्द्र बिन्दु ँ द्वारा प्रकट करते हैं नाद कहा जाता है। यहाँ योग मूलक अर्थ ही अभिप्रेत है।

इस मुद्रा को बनाते वक्त जिस तरह की हाथ की आकृति बनती है वह बजाते हुए डमरू की भाँति प्रतीत होती है। धीमे स्वर में बजते हुए डमरू से अनुनासिक ध्वनि प्रकट होती है इसलिए इसे नाद मुद्रा कहते हैं।

इस मुद्राभ्यास का मुख्य उद्देश्य ऐसी अवस्था में पहुँचना है कि जहाँ बाह्य जगत की अनुभूतियाँ, विशेषत: ध्वनियों के प्रति हमारी इन्द्रियाँ इस प्रकार अभ्यस्त एवं अनासक्त हो जायें कि इन्द्रियों का विषयों के प्रति आकर्षण ही समाप्त हो जाये। ऐन्द्रिक विषयानुराग का अभाव ही अतीन्द्रिय शक्ति के अनुभव का मूल स्रोत है।

विधि

किसी भी एक आसन में सुखपूर्वक बैठ जायें। पश्चात दाहिने हाथ की मुट्ठी बांधकर अंगूठे को खड़ा रखें और हाथ को कुछ ऊँचा उठाने पर नाद मुद्रा बनती है।

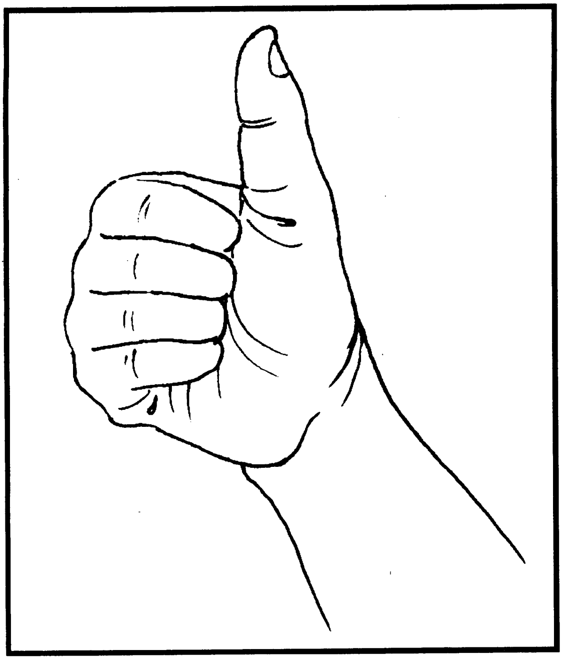

नाद मुद्रा

निर्देश– बीज मुद्रावत समझें।

सुपरिणाम– जीवन्यास मुद्राओं में नाद मुद्रा अत्यन्त रहस्यमयी है। यह मुद्रा अध्यात्म दिशा की ओर अग्रसर होने के लिए संजीवनी औषधि का कार्य करती हैं। इसका अभ्यासी साधक नाद प्रवाह से चेतना प्रवाह की ओर अभिमुख होता है।

शारीरिक तौर पर आज्ञा, विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र प्रभावित होते हैं। जिसके फलस्वरूप अध्यात्म शक्ति का जागरण होता है और स्वर सम्बन्धी रोगों में फायदा होता है।

एक्यूप्रेशर के अनुसार इसके दाब केन्द्र बिन्दू साइनस, कर्ण, चक्षु, कंधा, श्वास नली, उदर सम्बन्धी विकारों का शमन करते हैं।

5. बिन्दु मुद्रा

संस्कृत का बिन्दु शब्द बिंद् धातु से बना है। यह धातु खण्ड-खण्ड करना अथवा बांटना अर्थ में प्रयुक्त होती है। बिन्दु का एक अर्थ शून्य है। शून्य का

प्रतीकात्मक भाव समग्रता है। अध्यात्म दृष्टि से जहाँ कुछ नहीं होता वहाँ सब कुछ होता है। इस वाक्य में गूढ़ार्थ निहित है।

यौगिक क्रियाओं में अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनि, जिसे अनुभूति के स्तर पर ही पहचाना जा सकता है उसे बिन्दु कहा है। उत्तम कोटि के साधक ही बिन्दु अनुभव की साधना करते हैं। वे बिन्दु का अहसास करते-करते शब्दातीत अवस्था को उपलब्ध कर लेते हैं। बिन्दु मुद्रा का उद्देश्य देहातीत-वचनातीत स्थिति के निकट पहुँचना है।

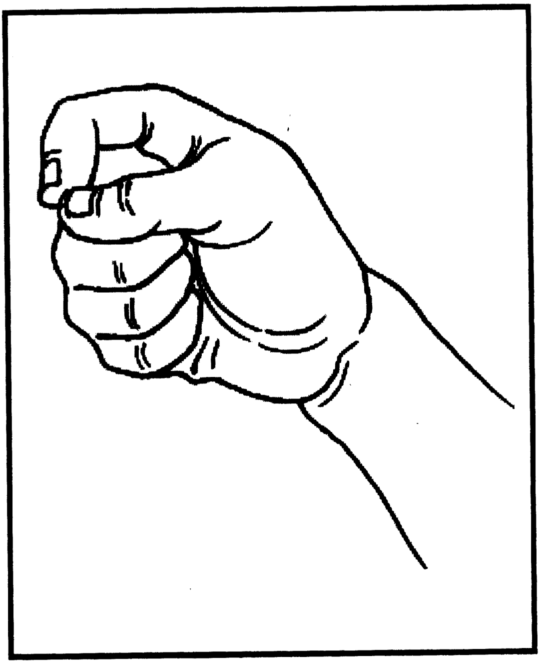

बिन्दु मुद्रा

विधि

किसी भी सुयोग्य आसन में आराम पूर्वक बैठ जायें। फिर नाद मुद्रा की भाँति दाहिने हाथ की मुट्ठी बांधकर तर्जनी और अंगूठे को परस्पर संयुक्त कर देना बिन्दु मुद्रा है।

सुपरिणाम– हठयोग प्रदीपिका में बिन्दु के महत्त्व को व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि जो बिन्दु की चरम सीमा को रोक सकता है वही मृत्यु पर

विजय पाता है और योगी कहलाता है। बिन्दु का अनुभव न होने से साध्य सिद्धि में बाधा उत्पन्न होती है।

बिन्दु स्तम्भन (बिन्दु अनुभव की उत्तरोत्तर साधना) से ओजस्विता, उत्साह, सामर्थ्य, बल और एकाग्रता की वृद्धि होती है।

वज्रोली मुद्रा की साधना करने वाले साधक के शरीर से सुगंध आती है। यदि मन बिन्दु पर स्थिर रहने लगे तो उसे मृत्यु भय से छुटकारा हो जाता है। इस अभ्यास में मन:शक्ति नियंत्रित होने से जीवनदान मिलता है इसलिए सावधानीपूर्वक बिन्दु पर केन्द्रित रहना चाहिए। यह अध्यात्म जगत की बात हुई।

भौतिक जगत के आधार पर ज्ञान मुद्रा के बहुत से फायदे इसमें होते हैं। इसके सिवाय आकाश, पृथ्वी एवं जल तत्त्व असंतुलन से होने वाले रोगों का शमन होता है। इस मुद्राभ्यास द्वारा निम्न चक्रादि के असन्तुलन से होने वाली गड़बड़ियाँ भी दूर होती हैं।

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं सहस्रार चक्र **केन्द्र–** तैजस, आनंद एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** ऐड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, ऊपरी मस्तिष्क एवं आंख।

6. सौभाग्यदायिनी मुद्रा

जिस मुद्रा के माध्यम से सौभाग्य का उदय होता है अथवा वह मुद्रा जो अच्छे भाग्य का निर्माण करती है, सुकृत कर्म के लिए उत्प्रेरित करती है, श्रेष्ठ भाग्य प्रदान करती है सौभाग्यदायिनी मुद्रा कहलाती है।

सौभाग्य की दो कोटियाँ होती है– **1. बाह्य सौभाग्य–** भौतिक वैभव, ऐश्वर्य, सत्ता-सम्पत्ति की समुपलब्धि बाह्य सौभाग्य है तथा **2. आभ्यन्तर सौभाग्य–** आत्म शक्ति रूप अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र की सम्प्राप्ति आभ्यन्तर सौभाग्य है।

इस मुद्रा का अभ्यास आभ्यन्तर साम्राज्य की उपलब्धि के लिए किया जाता है।

विधि

किसी भी योग्य आसन में मन एवं तन को सुस्थिर कर लें। तदनन्तर चित्रानुसार बाएँ हाथ की मुट्ठी बांधते हुए तर्जनी अंगुली को सीधी रखें। फिर

तर्जनी अंगुली को कान की ओर इंगित करते हुए उसके समीप ले जाएँ। फिर कान से स्पर्श करवाते हुए अंगुली को गोलाकार घुमाएँ यह सौभाग्यदायिनी मुद्रा कहलाती है।

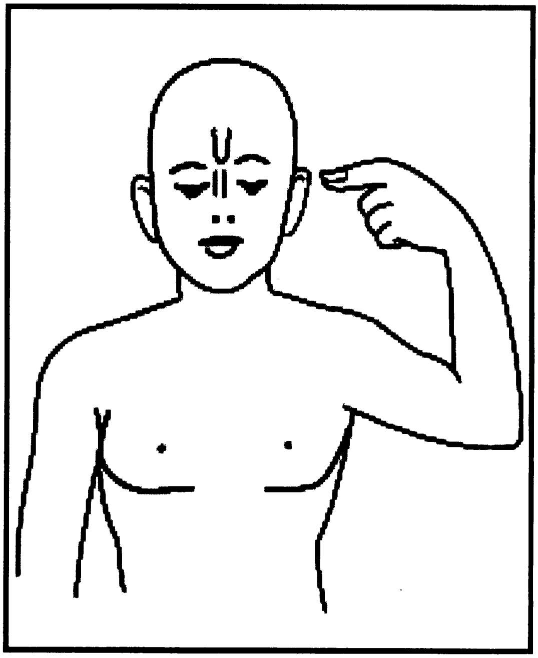

सौभाग्यदायिनी मुद्रा

सुपरिणाम– इस मुद्रा प्रभाव से भाग्य चमकता है, उत्तम भाग्य का उद्भव होता है, पुण्य कर्म के नये-नये आयाम खुलते हैं पुण्योदय से पुण्यसर्जन की परम्परा प्रवर्तित रहती है। अन्ततः पुण्य की पराकाष्ठा के रूप में स्वशक्ति को समग्र रूप से उद्घाटित कर लेता है।

तर्जनी अंगुली को गोलाकार घुमाने से विशिष्ट प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं और धीरे-धीरे मस्तिष्क के चारों ओर विशुद्ध आभामण्डल निर्मित हो जाता है।

इस मुद्रा में अग्नि तत्त्व का आकाश तत्त्व के साथ विशिष्ट संयोजन होने से हृदय विकार में फायदे होते हैं। हृदय सम्बन्धी बीमारियाँ ठीक होती हैं।

इस मुद्रा के प्रयोग से निम्नोक्त चक्र आदि भी प्रभावित होते हैं और उसके अच्छे फायदे भी देखे जाते हैं **चक्र–** मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **केन्द्र–** तैजस

एवं विशुद्धि केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, नाक, कान, गला, मुँह एवं स्वर तंत्र।

कर न्यास सम्बन्धी मुद्राएँ

कर अर्थात हाथ, न्यास अर्थात स्थापित करना। विशिष्ट मंत्रों के उच्चारण करते हुए एक हाथ का दूसरे हाथ से स्पर्श करना अथवा दोनों हाथों को अधिवासित करने के लिए मन्त्र विशेष का स्थापन करना करन्यास मुद्रा है।

इस मुद्रा के द्वारा हस्तयुगल की रक्षा की जाती है क्योंकि पूजा-यज्ञादि शुभ कार्यों में हाथ की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती हैं। करन्यास मुद्रा के माध्यम से करयुगल को अभिमन्त्रित करने का अभिप्राय यह है कि इसे किसी तरह की हानि न पहुँच पायें। हिन्दू परम्परा में तत्सम्बन्धी छः मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। जो सचित्र निम्न हैं[8]–

प्रथम

दायें अंगूठे से बायें अंगूठे का स्पर्श करना अंगुष्ठ न्यास मुद्रा है।

सुपरिणाम– सभी चक्र एवं पाँच तत्त्व समान रूप से प्रभावित होते हैं।

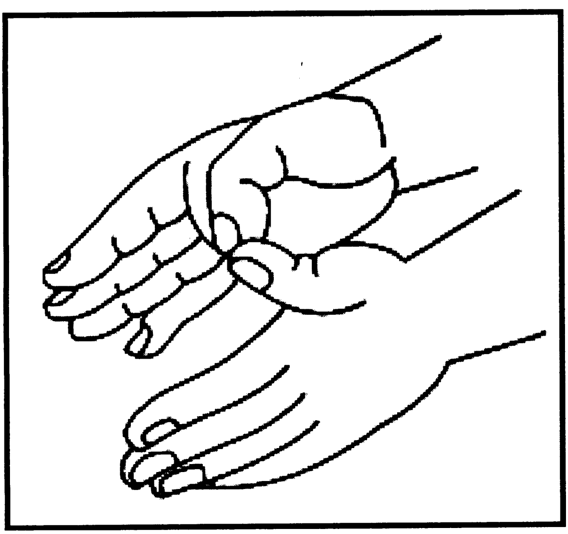

प्रथम

द्वितीय

दायीं तर्जनी से बायीं तर्जनी का स्पर्श करना तर्जनी न्यास मुद्रा है।

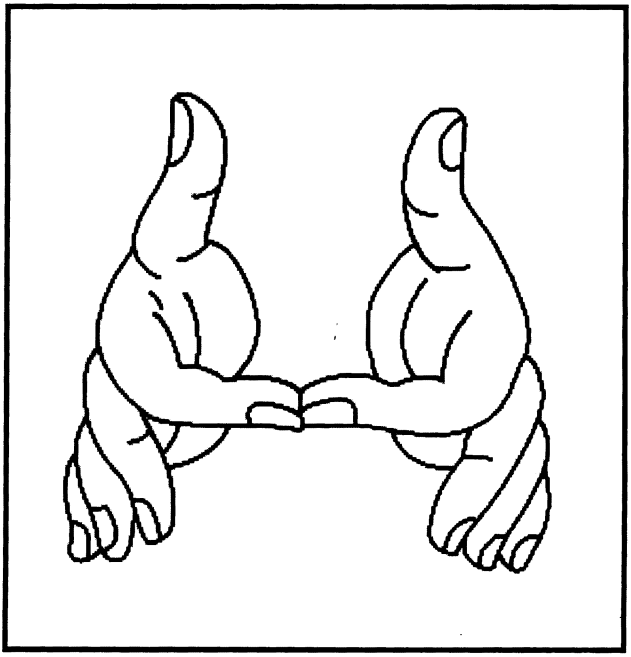

द्वितीय

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार, सहस्रार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, आकाश एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति, ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

तृतीय

दायीं मध्यमा से बायीं मध्यमा का स्पर्श करना मध्यमा न्यास मुद्रा है।

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं शक्ति केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष**

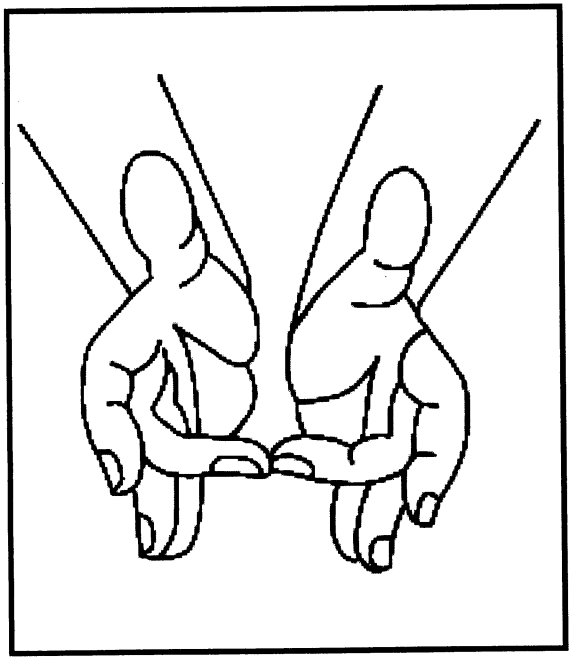

तृतीय

प्रभावित अंग– पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मेरूदण्ड, गुर्दे एवं पाँव।

चतुर्थ

दायीं अनामिका से बायीं अनामिका का स्पर्श करना अनामिका न्यास मुद्रा है।

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार, मणिपुर एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति, तैजस एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल,

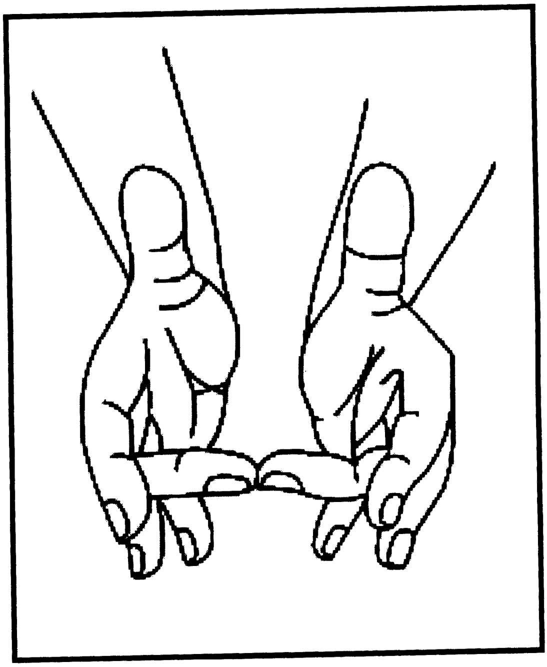

चतुर्थ

पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, गुर्दे, पैर, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

पंचम

दायीं कनिष्ठिका के अग्रभाग को बायीं कनिष्ठिका के अग्रभाग से संयुक्त करना, कनिष्ठिका न्यास मुद्रा है।

सुपरिणाम

चक्र– स्वाधिष्ठान, मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** जल, अग्नि एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** स्वास्थ्य, तैजस एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल,

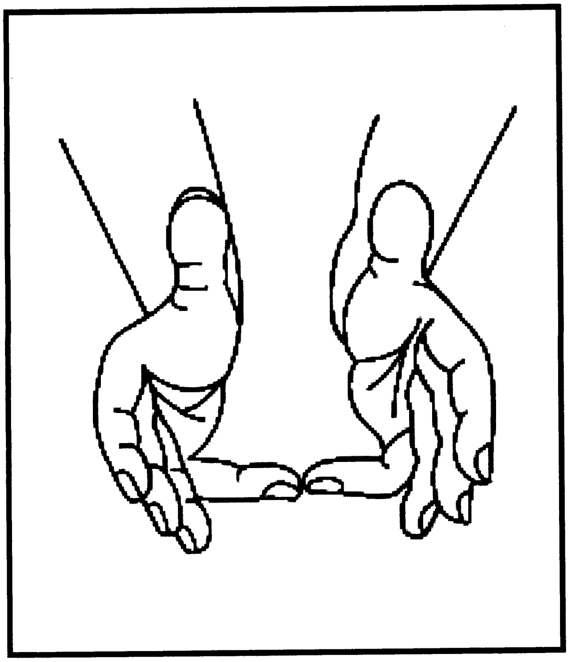

पंचम

पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र आदि।

षष्ठम

दायीं हथेली को बायीं हथेली से मिलाना सम्पूर्णतः करन्यास मुद्रा है।

सुपरिणाम

चक्र– सहस्रार, आज्ञा एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** ज्ञान, ज्योति एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** पिनियल, पीयूष एवं थायमस

ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँख, स्नायु तंत्र, हृदय, भुजाएं, फेफड़ें एवं रक्त संचरण तंत्र।

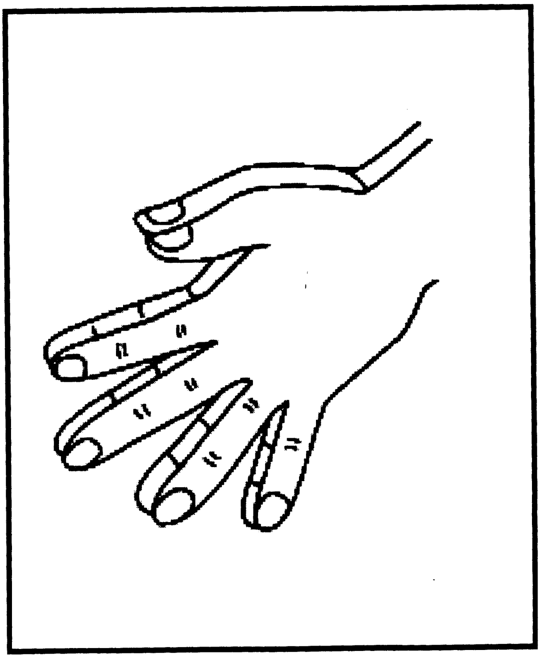

षष्ठम

मातृका न्यास सम्बन्धी मुद्राएँ

मातृका शब्द से कई अर्थों का बोध होता है जैसे– माता, वर्णमाला की बारहखड़ी, तान्त्रिकों की सात देवियाँ– ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुंडा आदि। यहाँ मन्त्र के वर्णों को मातृका कहा गया है। इन वर्णों अथवा वर्ण समूहों का शरीर के विविध अंगों में न्यास करना मातृका न्यास है। इस न्यास मुद्रा में कुछ मुख्य अंगों पर मन्त्र का उच्चारण करते हुए विधि पूर्वक अंगुलियों का स्पर्श करते हैं। यही मातृका न्यास की मुद्राओं का रहस्य है।

पहली मातृका न्यास मुद्रा

ऊर्ध्वस्थित मुद्रा में मध्यमा और अनामिका अंगुलियों के द्वारा ललाट का स्पर्श करना मातृकान्यास की पहली मुद्रा है।

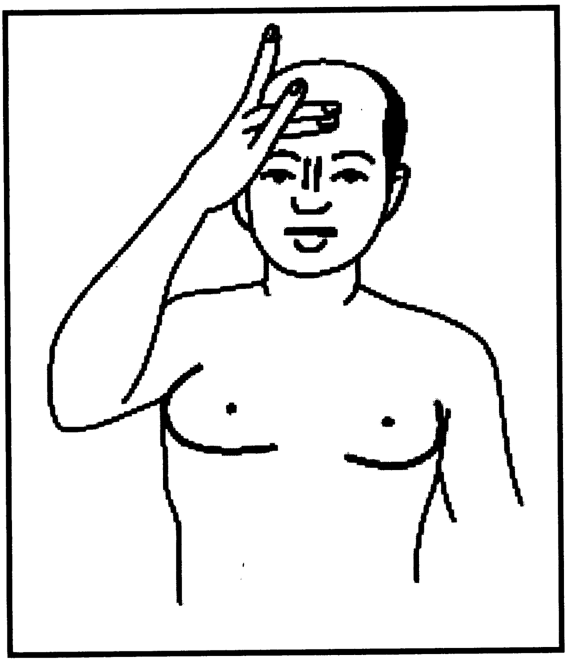

प्रथम मुद्रा

सुपरिणाम– इस मुद्रा के द्वारा निम्न तत्त्वादि संतुलित होने से अनेक समस्याओं का निवारण होता है–

चक्र– आज्ञा, सहस्रार एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** ज्ञान, ज्योति एवं विशुद्धि केन्द्र **ग्रन्थि–** पीयूष, पिनियल, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँख, स्नायु तंत्र, कान, नाक, गला, मुँह एवं स्वर यंत्र।

दूसरी मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर अंगूठे और अनामिका अंगुली से नेत्र युगल का स्पर्श करना मातृका न्यास की दूसरी मुद्रा है।

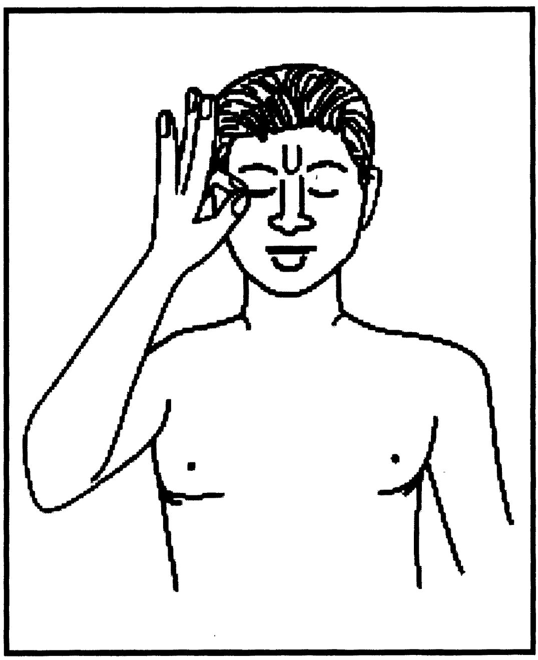

द्वितीय मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– अनाहत एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** आनंद एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँखें।

तीसरी मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर दायें हाथ की सम्पूर्ण संधियों से मस्तक एवं होठ का स्पर्श करना, मातृका न्यास की तीसरी मुद्रा है।

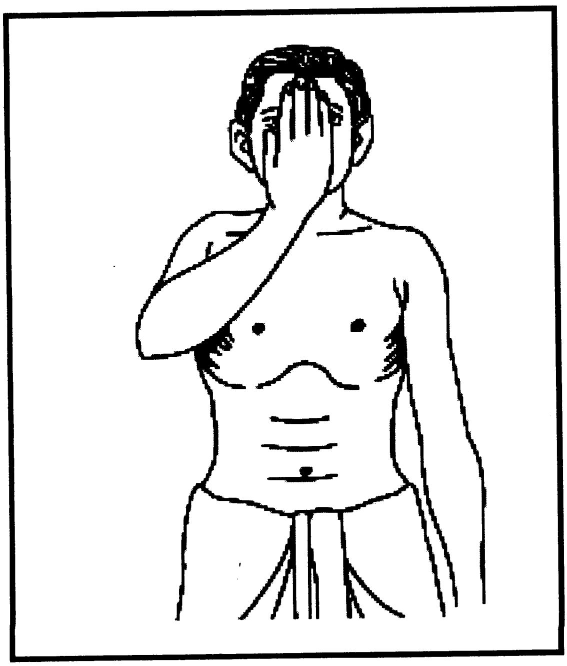

तृतीय मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र—सहस्रार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व**— आकाश एवं अग्नि तत्त्व **केन्द्र**— ज्ञान एवं तैजस केन्द्र **ग्रन्थि**— पिनियल, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**— ऊपरी मस्तिष्क, आँख, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें एवं नाड़ी तंत्र।

चौथी मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर दायीं मध्यमा अंगुली से बायें पार्श्व का स्पर्श करना, मातृका न्यास की चौथी मुद्रा है।

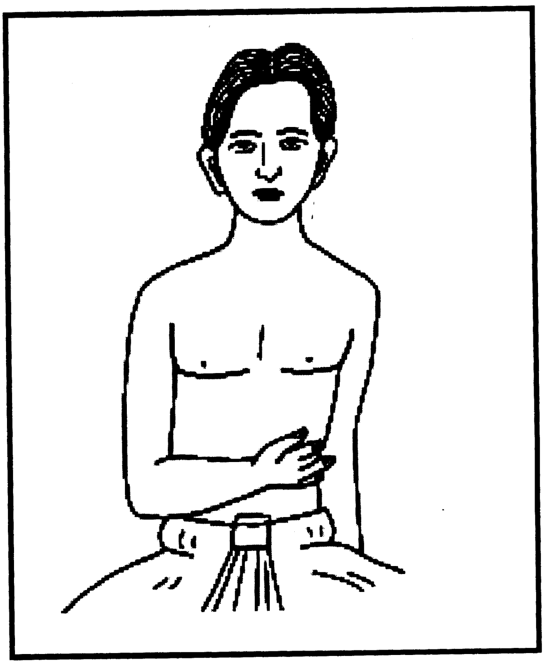

चतुर्थ मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** तैजस, ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, ऊपरी मस्तिष्क, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र एवं आँख।

पांचवीं मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर दायें अंगूठे से कान का स्पर्श करना, मातृका न्यास की पांचवीं मुद्रा है।

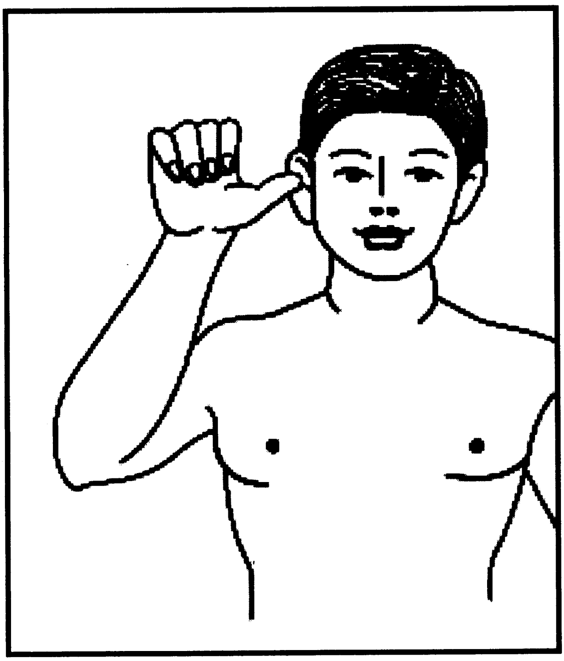

पंचम मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **केन्द्र–** ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, निचला मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

छठवीं मातृका न्यास मुद्रा

ऊर्ध्वस्थित होकर दायीं कनिष्ठिका और अंगूठे के द्वारा नासिका छिद्र का स्पर्श करना, मातृका न्यास की छठवीं मुद्रा है।

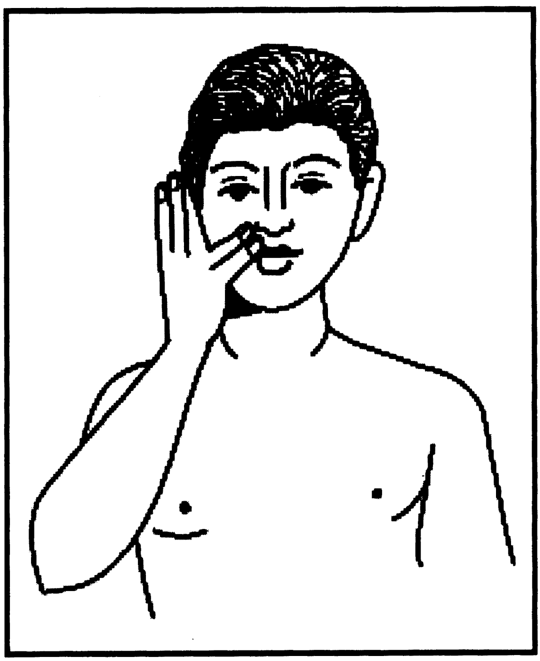

षष्ठम मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, गुर्दे, मल-मूत्र अंग एवं प्रजनन अंग।

सातवीं मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर दायीं तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से मुख एवं गाल का स्पर्श करना, मातृका न्यास की सातवीं मुद्रा है।

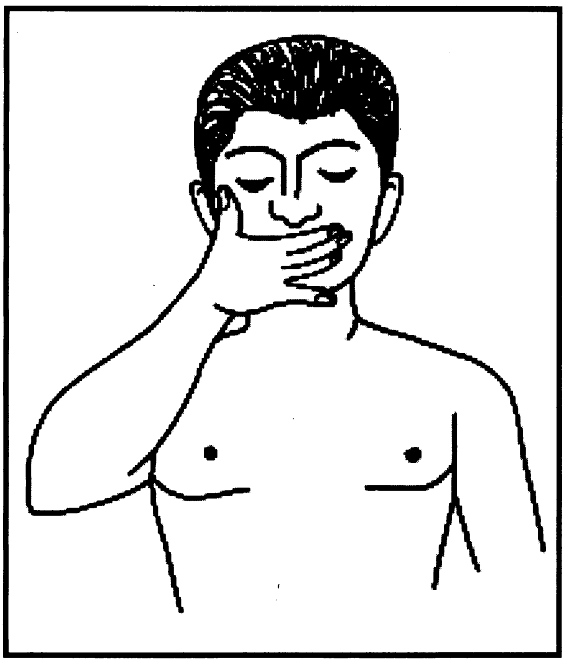

सप्तम मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार, अनाहत एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति, आनंद एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचार प्रणाली, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

आठवीं मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर दायीं अनामिका से दाँत एवं जीभ का संस्पर्श करना, मातृका न्यास की आठवीं मुद्रा है।

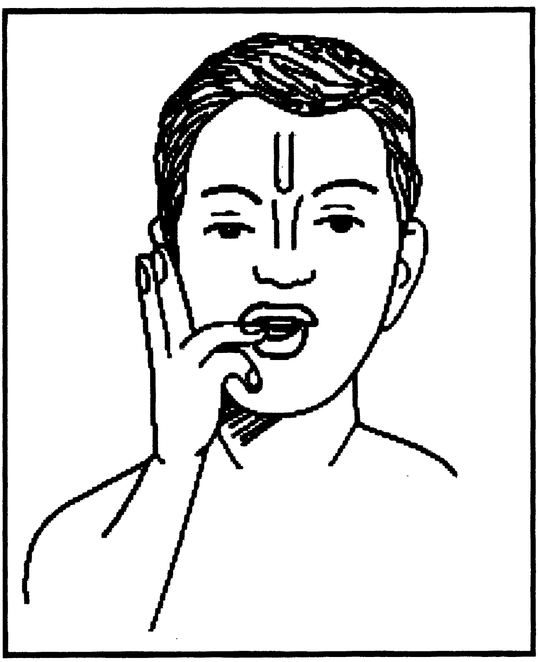

अष्टम मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार, आज्ञा, एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति, ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

नौवीं मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर दायीं कनिष्ठिका और अनामिका से पीठ का स्पर्श करना, मातृका न्यास की नौवीं मुद्रा है।

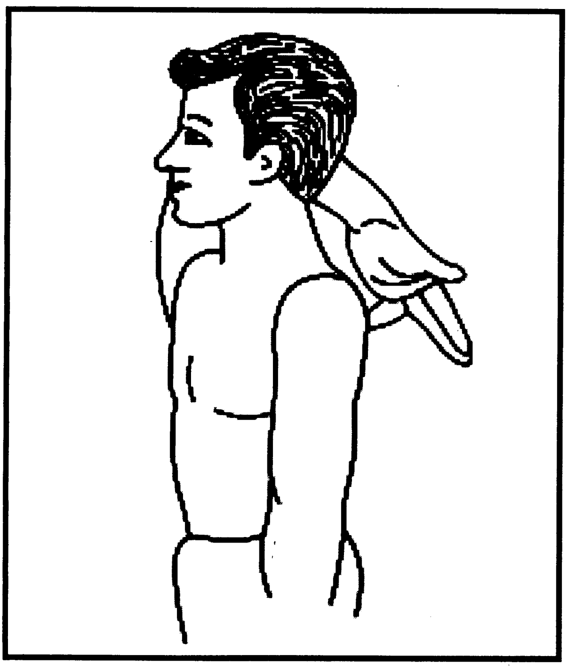

नौवीं मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं रक्त संचरण तंत्र।

दसवीं मातृका न्यास मुद्रा

ऊर्ध्वस्थित मुद्रा में दायें अंगूठे से नाभि का स्पर्श करना, मातृका न्यास की दसवीं मुद्रा है।

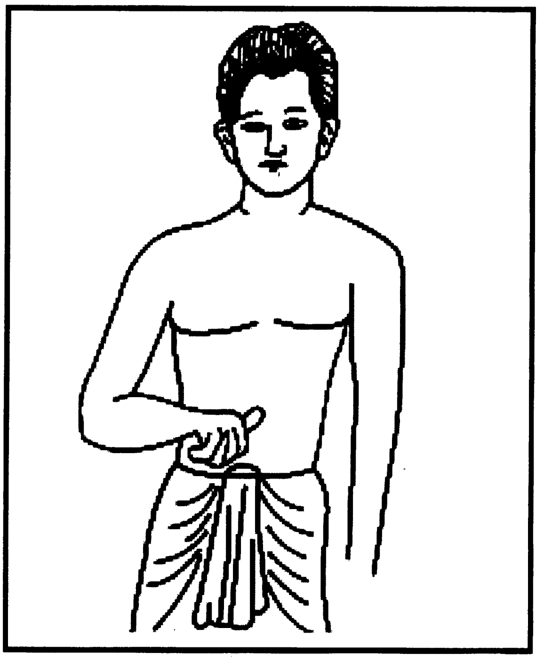

दसवीं मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं शक्ति केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, मेरूदण्ड, गुर्दे।

ग्यारहवीं मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर दायीं मध्यमा से नाभि का स्पर्श करना मातृका न्यास की ग्यारहवीं मुद्रा है।

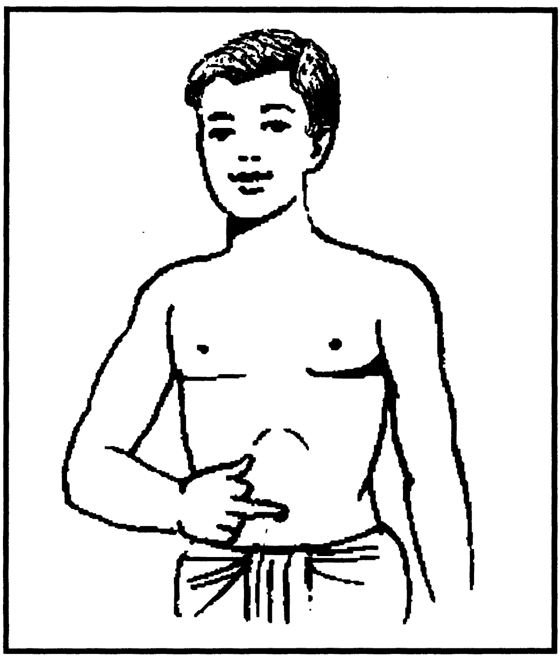

ग्यारहवीं मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **केन्द्र**–शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, मल-मूत्र अंग एवं प्रजनन अंग।

बारहवीं मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर दायीं अनामिका से नाभि का स्पर्श करना, मातृका न्यास की बारहवीं मुद्रा है।

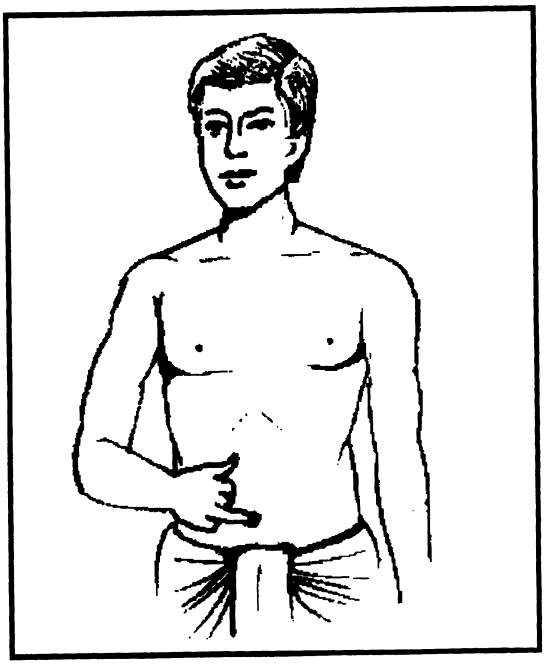

बारहवीं मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र**– तैजस, आनंद एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– यकृत, तिल्ली, आँतें, पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, रक्त संचरण संस्थान, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

तेरहवीं मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर दाहिनी कनिष्ठिका से नाभि का स्पर्श करना, मातृका न्यास की तेरहवीं मुद्रा है।

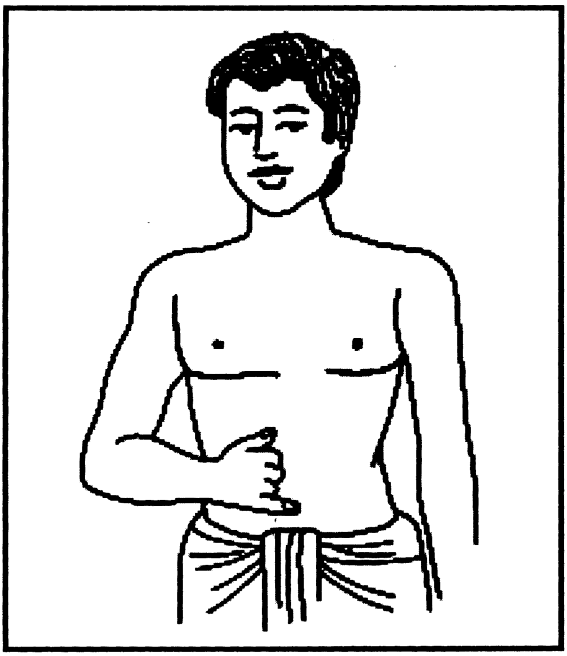

तेरहवीं मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व**– जल एवं वायु तत्त्व **केन्द्र**– स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र **ग्रन्थि**– प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– मलमूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, नाक, कान, गला, मुँह एवं स्वरयंत्र।

चौदहवीं मातृका न्यास मुद्रा

खड़ी मुद्रा में दायें हाथ की चारों अंगुलियों के द्वारा उदर का स्पर्श करना, मातृका न्यास की चौदहवीं मुद्रा है।

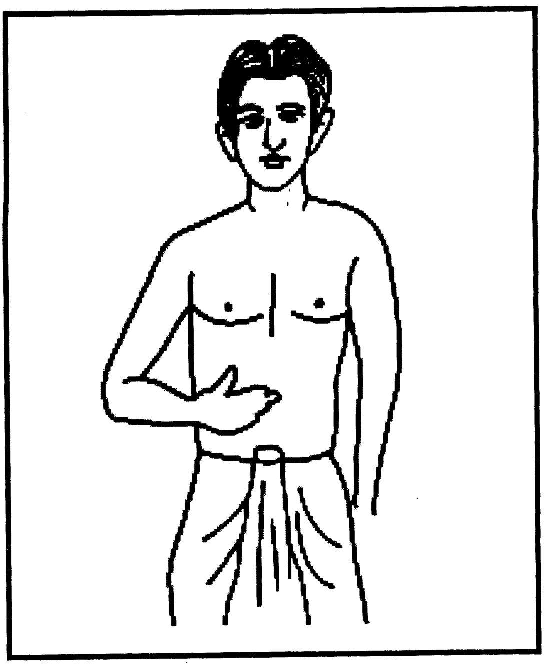

चौदहवीं मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

पन्द्रहवीं मातृका न्यास मुद्रा

खड़े होकर दाहिनी हथेली से हृदय का स्पर्श करना, मातृका न्यास की पन्द्रहवीं मुद्रा है।

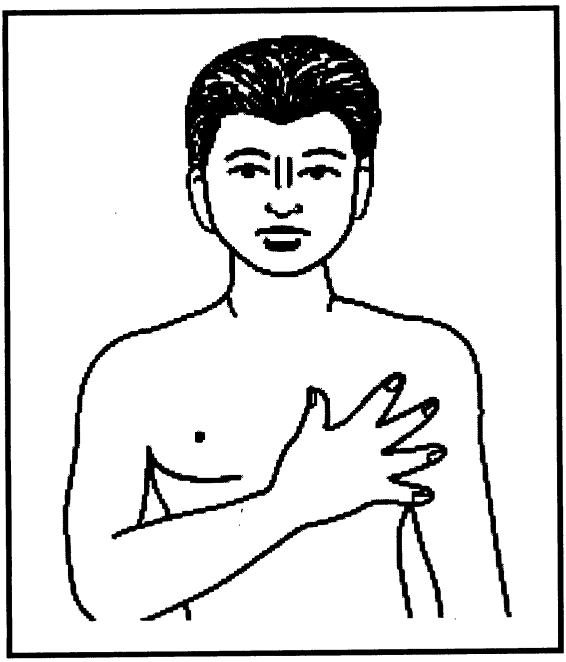

पन्द्रहवीं मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– अनाहत चक्र **तत्त्व**– वायु तत्त्व **केन्द्र**– आनंद केन्द्र **ग्रन्थि**– थायमस **विशेष प्रभावित अंग**– हृदय, छाती एवं फेफड़ें।

नित्य पूजा सम्बन्धी मुद्राएँ

हिन्दू परम्परा के अनुसार प्रतिदिन पूजा-अर्चना करने वाले साधकों को निम्न पाँच मुद्राएँ अवश्यमेव करनी चाहिए। उनका वर्णन निम्न हैं–[10]

1. प्रार्थना मुद्रा 2. अंकुश मुद्रा 3. कुन्त मुद्रा 4. कुम्भ मुद्रा 5. तत्त्व मुद्रा।

उपर्युक्त अंकुश, कुन्त एवं तत्त्व ये तीन मुद्राएँ पूजा निमित्त स्नान के लिए उपयोगी कही गई हैं।

1. प्रार्थना मुद्रा

दोनों हाथों की दसों अंगुलियों को प्रसरित करें। फिर हृदय पर आमने-सामने रखते हुए मस्तक झुकाना प्रार्थना मुद्रा कहलाता है।

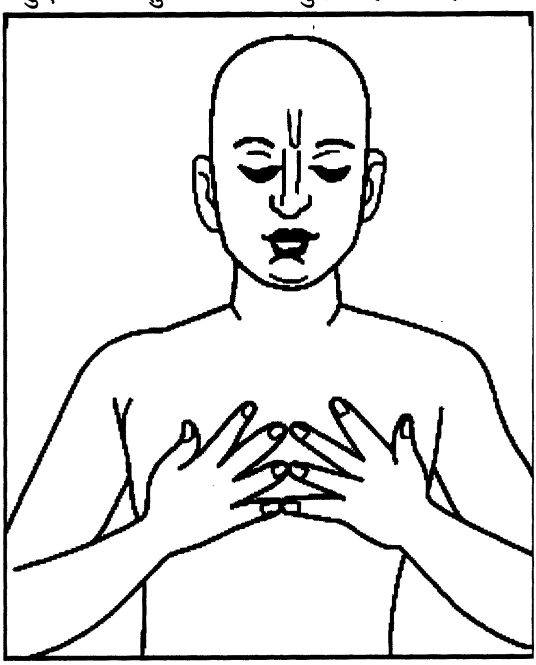

प्रार्थना मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं रक्त संचरण तंत्र।

2. अंकुश मुद्रा

एक प्रकार के लोहे का कांटा, जिसके द्वारा किसी वस्तु को खींचा जा सकता हो अंकुश कहलाता है। इस मुद्रा में हस्तांगुलियों की आकृति अंकुश की तरह बनती है अत: इसे अंकुश मुद्रा कहते हैं।

इस मुद्रा प्रयोग के द्वारा बाह्यमल के साथ-साथ आभ्यन्तर मल को निष्कासित करने का प्रयत्न किया जाता है।

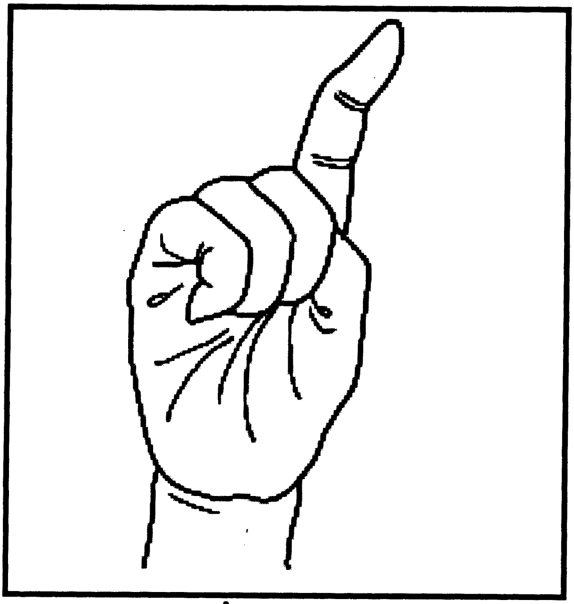

अंकुश मुद्रा

विधि

सर्वप्रथम सुखासन में बैठ जाएँ। फिर दाहिने हाथ की मुट्ठी बांधकर तर्जनी अंगुली को अंकुश के समान किंचित मोड़ने से अंकुश मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम– यह त्रैलोक्य का आकर्षण करने वाली एक महत्त्वपूर्ण मुद्रा है। इस मुद्रा का प्रयोग आकर्षण मन्त्रों एवं मोहिनी मंत्रों की साधना करते समय किया जाए तो नि:सन्देह उसमें सफलता मिलती है। साथ ही साधक का आकर्षण तीन लोक में प्रसरित होता है।

बहुश: व्यक्ति आकर्षण मन्त्रादि का जाप करते हैं परन्तु उन मन्त्रों को सिद्ध करने में सफलता नहीं मिलती है, उसका एक मात्र कारण यह माना जाता है कि उनका प्रयोग सही मुद्राओं के साथ नहीं किया जाता है।

इस मुद्रा की खास विशेषता यह है कि जिसका प्रयोग बिना मंत्रों के भी किया जा सकता है। इस मुद्रा से निम्न चक्रादि सम्बन्धी रोगों का शमन होता है। **चक्र–** मणिपुर एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँखें।

3. कुन्त मुद्रा

शस्त्र का एक प्रकार, भाला अथवा पंखदार बाण, जिसके द्वारा अनिष्ट का निवारण और इष्ट का संरक्षण किया जा सकता हो कुन्त कहलाता है। इस मुद्रा को करते वक्त हाथों की आकृति कुन्त सदृश प्रतीत होती है अत: इसे कुन्त मुद्रा कहते हैं।

इस मुद्रा प्रयोग के द्वारा आसुरी शक्तियों का हनन एवं उपद्रव कारक शत्रुओं को भयभीत किया जाता है। यह भगवान श्रीकृष्ण की प्रिय मुद्राओं में से एक है। कृष्ण भगवान के रौद्र रूप को इसी मुद्रा में देखा गया है। सुदर्शन चक्र का प्रयोग करते वक्त भी यह मुद्रा देखी जाती है।

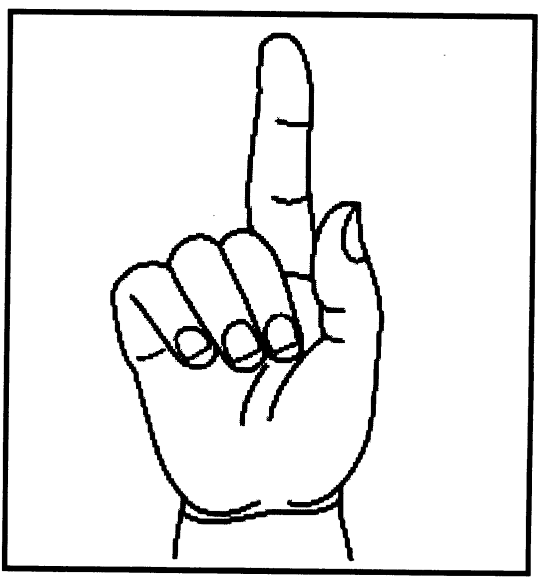

कुन्त मुद्रा

इस मुद्रा को सर्व प्रकार से रक्षा करने वाली मुद्रा के रूप में माना गया है। इसका दूसरा नाम माला मुद्रा भी है।

विधि

उपासना के लिए श्रेष्ठ एवं स्वयं के लिए अनुकूल आसन में बैठ जाएँ। तदनन्तर बाएँ हाथ को मुट्ठी के रूप में बाँधते हुए तर्जनी अंगुली को सीधी खड़ी रखें। फिर उसके अग्रभाग से अंगूठे के अग्रभाग को संस्पर्शित करने पर कुन्त मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति, विशुद्धि एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

4. कुम्भ मुद्रा

दायें अंगूठे को बायें अंगूठे से संयुक्त कर शेष अंगुलियों की शिथिल मुट्ठी बांधना कुम्भ मुद्रा है।

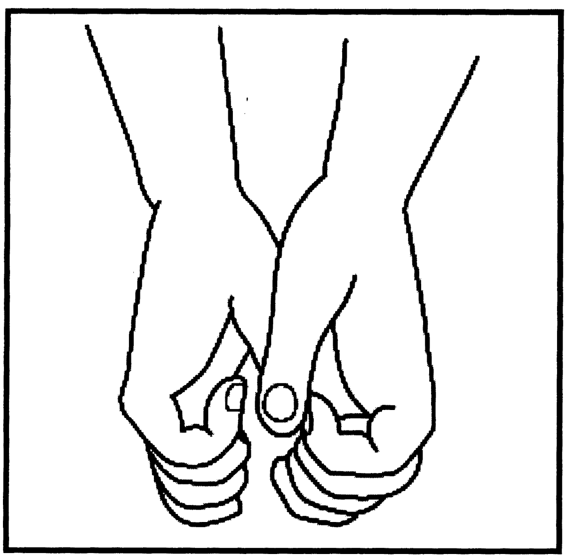

कुम्भ मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि, जल एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** तैजस, स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रिनल, पैन्क्रियाज, प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

5. तत्त्व मुद्रा–

यहाँ तत्त्व शब्द से तात्पर्य पंच महाभूत से हैं। पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश और जल इन पाँच तत्त्वों से सृष्टि का निर्माण हुआ है ऐसा माना जाता है। हमारे शरीर की पाँचों अंगुलियाँ भी इन तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं। सृष्टि रचना के अनुसार यह शरीर भी पंचभूतों से निष्पन्न है। शरीरस्थ पंच तत्त्वों में किसी तरह का दोष या विकार पैदा हो जाए तो अंगुलियों की चिकित्सा के माध्यम से उद्गम दोषों को दूर किया जा सकता है।

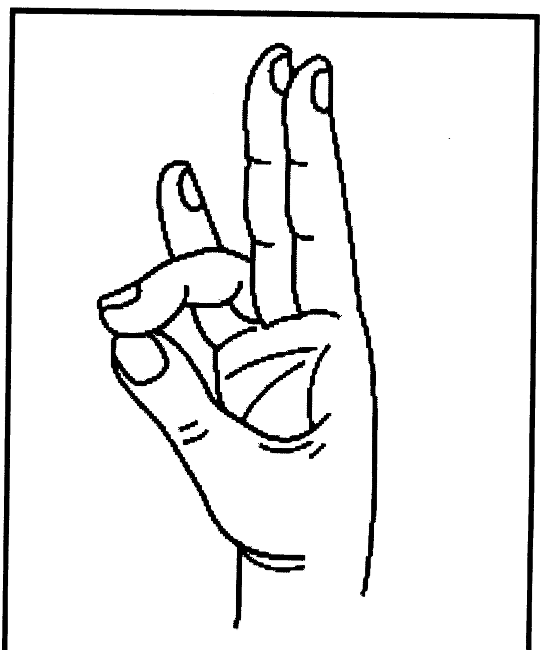

तत्त्व मुद्रा

सामान्यत: इस मुद्रा का प्रयोग स्नान आरंभ करने से पूर्व किया जाता है। इसके पीछे रहस्यपूर्ण तथ्य यह है कि शरीर पर पानी डालते हुए किसी प्रकार से शारीरिक तत्त्वों में असंतुलन की स्थिति बन सकती है जबकि तत्त्व मुद्रा से असंतुलन पैदा नहीं होता। स्पष्ट है कि तत्त्व मुद्रा का प्रयोजन स्नान काल में पंच तत्त्वों को संतुलित बनाये रखना है।

विधि

सर्वप्रथम स्नान योग्य स्थान पर योग्य आसन में बैठ जाएँ। तदनन्तर दोनों हाथों के अंगूठों के अग्रभागों को अनामिका अंगुलियों के अग्रभागों से संयुक्त करना तत्त्व मुद्रा है।

सुपरिणाम

चक्र– विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** विशुद्धि एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, आँख, गला, मुँह, स्वर यंत्र एवं ऊपरी मस्तिष्क।

पूजोपचार सम्बन्धी मुद्राएँ

हिन्दू आम्नाय में पूजा उपासना करते समय तेरह प्रकार की औपचारिक क्रियाएँ होती हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार हैं[11]–

1. गन्ध मुद्रा

मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ इन तीनों के अग्रभागों से मंत्रोच्चारण पूर्वक गन्ध अर्पित करना, गन्ध मुद्रा है।

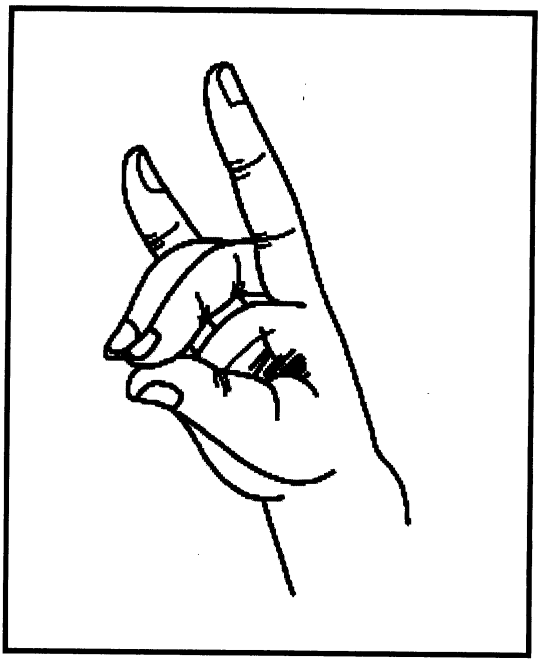

गन्ध मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं रक्त संचरण तंत्र।

2. पुष्प मुद्रा

अंगूठा और तर्जनी के अग्रभागों से पुष्प आदि ग्रहण कर उन्हें देवताओं के समक्ष अर्पित करना, पुष्प मुद्रा है।

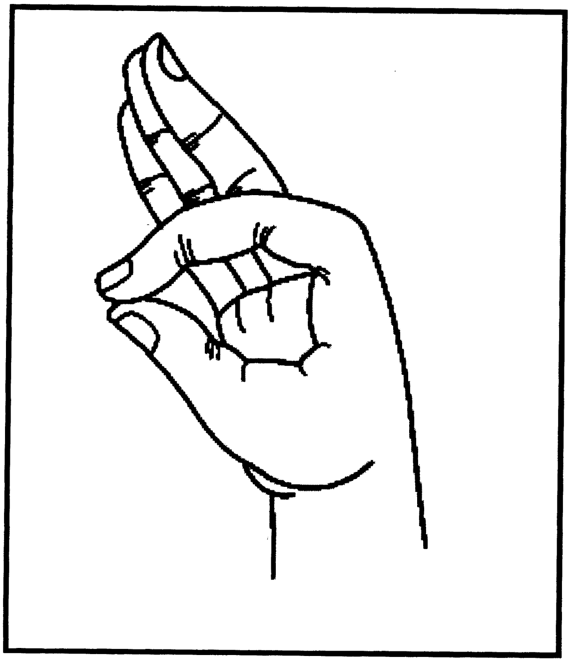

पुष्प मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र**– विशुद्धि एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि**– थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– आँख, नाक, कान, गला, मुँह, स्वरयंत्र एवं ऊपरी मस्तिष्क।

3. धूप मुद्रा

मध्यमा और अनामिका के मध्य पर्वों में धूप रखकर अंगूठे के अग्रभाग से निवेदित करना, धूप मुद्रा है।

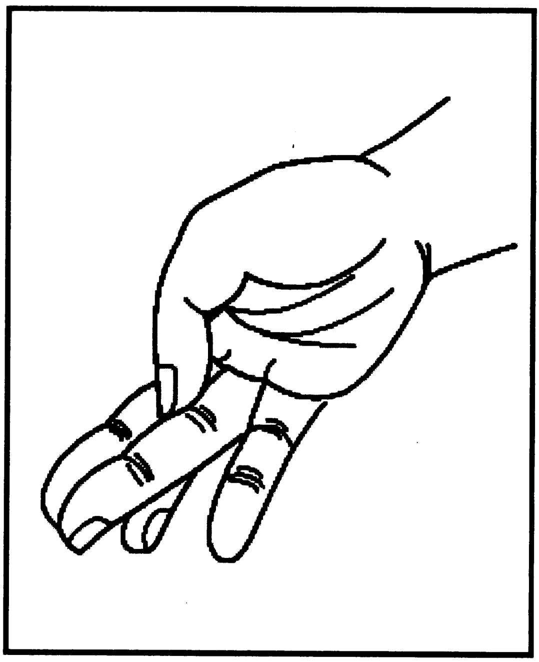

धूप मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं जल तत्त्व **केन्द्र**– शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि**– प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मल-मूत्र अंग एवं प्रजनन अंग।

4. दीप मुद्रा

मध्यमा अंगुली के अन्तिम पौर पर अंगूठे के अग्रभाग को स्पर्शित कर 'दीपं दर्शयामि' कहते हुए दीपक दिखाना, दीप मुद्रा है।

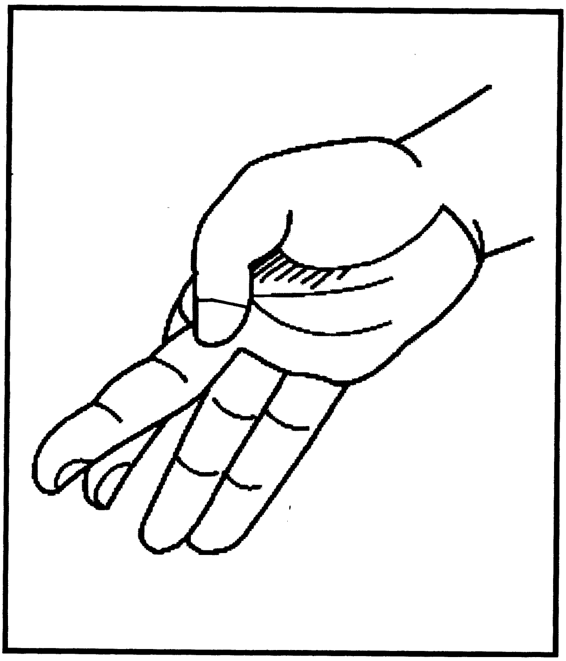

दीप मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– अनाहत एवं सहस्त्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** आनंद एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** थॉयमस एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

5. नैवेद्य मुद्रा

अर्पण योग्य सामग्री को तीन भागों में बाँट कर तत्त्व मुद्रा द्वारा मन्त्र का उच्चारण करते हुए मिष्ठान्न को निवेदित करना, नैवेद्य मुद्रा है।

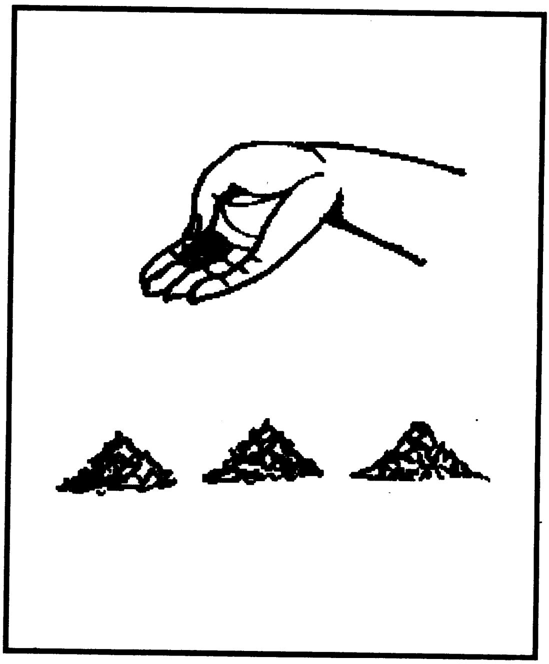

नैवेद्य मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र- मणिपुर, अनाहत एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व-** अग्नि, वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि-** एड्रीनल,पैन्क्रियाज, थायमस एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र-** तैजस, आनंद एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग-** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, मेरूदण्ड, गुर्दें।

6. आचमन मुद्रा

पूजन आदि के पहले शुद्धि हेतु हथेली पर जल लेकर पीना आचमन कहलाता है। यहाँ मन्त्र का उच्चारण करते हुए आचमनीय जल प्रदान करना, आचमन मुद्रा है।

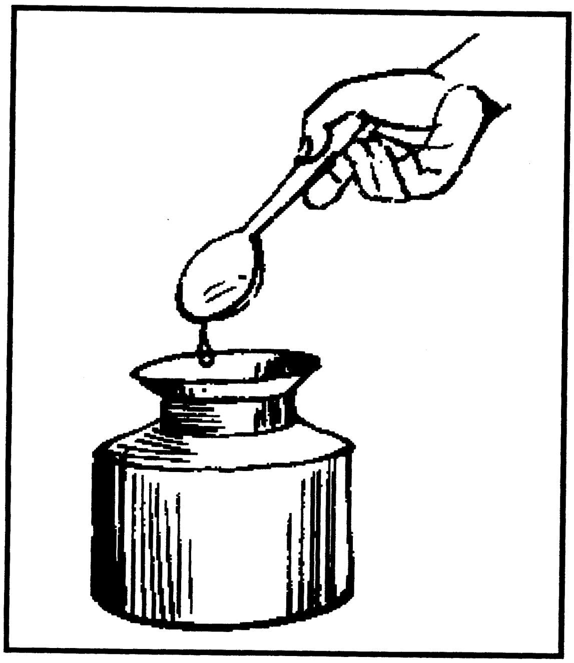

आचमन मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– विशुद्धि, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र**–विशुद्धि एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि**– थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

7. ताम्बूल मुद्रा

पूर्वदर्शित तत्त्वमुद्रा के द्वारा ताम्बूल समर्पित करना ताम्बूल मुद्रा कहा जाता है।

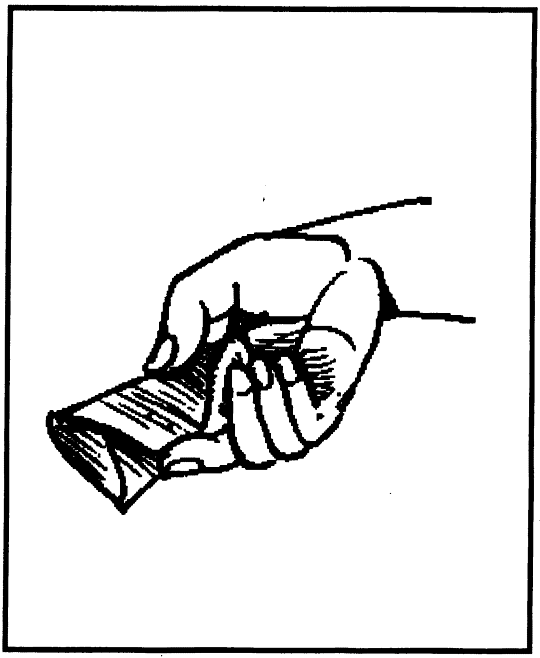

ताम्बूल मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– स्वाधिष्ठान, विशुद्धि एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** जल, वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **केन्द्र–** स्वास्थ्य, विशुद्धि एवं शक्ति केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, कान, नाक, गला, मुँह एवं स्वर यंत्र।

8. प्राण मुद्रा

अंगूठों के अग्रभाग को अनामिका और कनिष्ठिका के अग्रभागों से स्पर्शित करना, प्राण मुद्रा है।

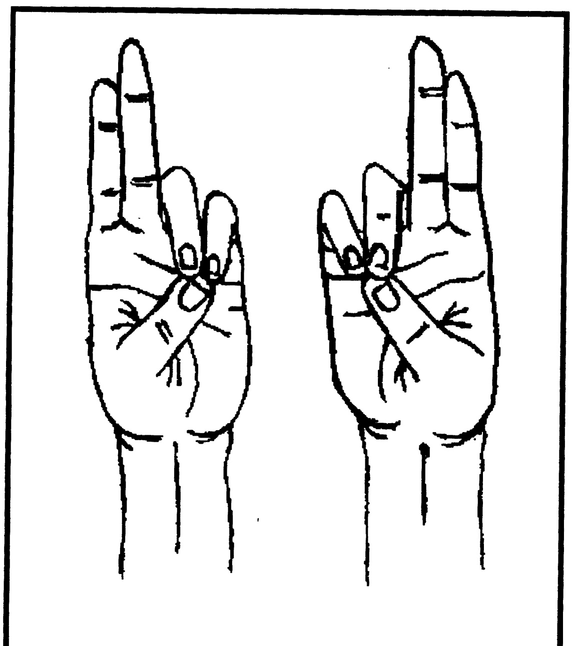

प्राण मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– आज्ञा, अनाहत एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व**– आकाश, वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **केन्द्र**– दर्शन, आनंद एवं शक्ति केन्द्र **ग्रन्थि**– पीयूष, थायमस एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, हृदय, फेफड़ें, रक्त संचार प्रणाली, मेरूदण्ड, गुर्दे।

9. अपान मुद्रा

अंगूठों के अग्रभाग को मध्यमा और अनामिका के अग्रभागों से स्पर्शित करना, अपान मुद्रा है।

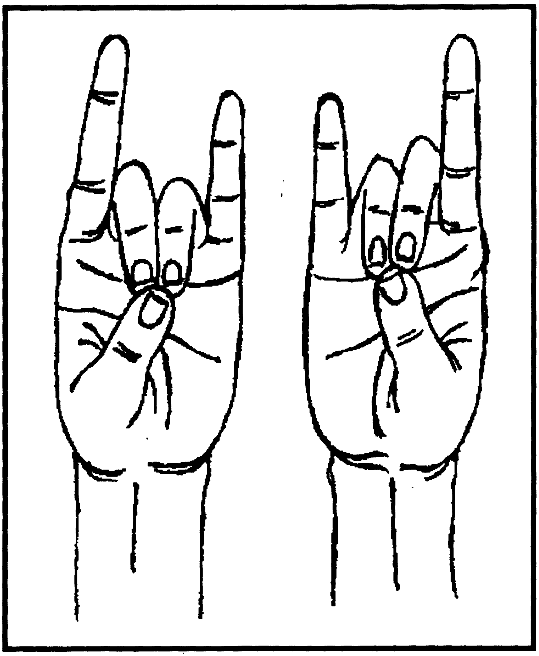

अपान मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि, जल एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** तैजस, स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, प्रजनन एवं थायमस **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग एवं गुर्दे।

10. व्यान मुद्रा

अंगूठें के अग्रभाग को मध्यमा के अग्र भाग से संयुक्त करें, फिर मध्यमा अंगुली के नख पर तर्जनी के अग्रभाग को रखें तथा शेष अंगुलियों को सीधी रखने पर व्यान मुद्रा बनती है।

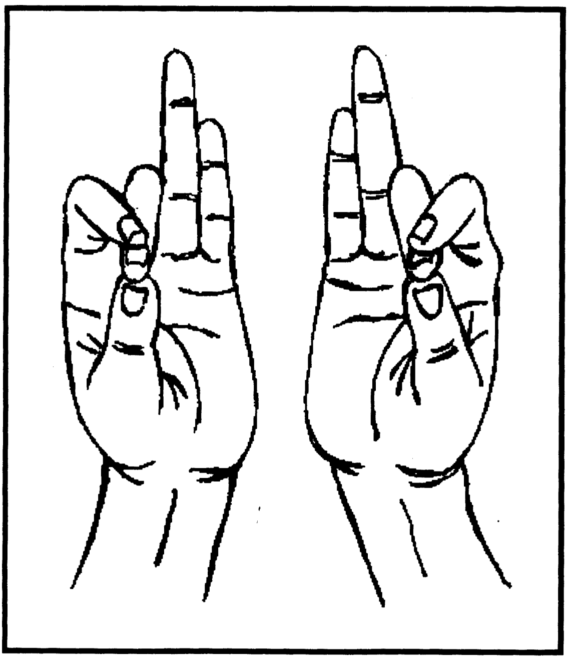

व्यान मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– सहस्रार, आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** ज्ञान, ज्योति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि–** पिनियल, पीयूष एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँख, स्नायु तंत्र, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग एवं गुर्दे।

11. उदान मुद्रा

अंगूठों के अग्रभाग को तर्जनी के अग्रभागों से संयुक्त करें, फिर तर्जनी के नख पर मध्यमा के अग्रभागों को रखें तथा शेष अंगुलियों को सीधा रखने पर उदान मुद्रा बनती है।

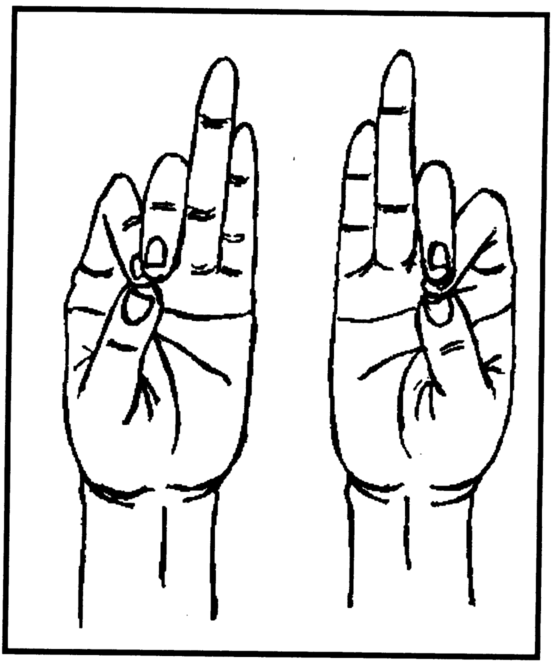

उदान मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– अग्नि, पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– थायरॉइड एवं पैराथायरॉइड **केन्द्र**– शक्ति वं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

12. समान मुद्रा

अंगूठों के अग्रभाग को तर्जनी आदि चारों अंगुलियों के अग्रभागों से मिलाना, समान मुद्रा है।

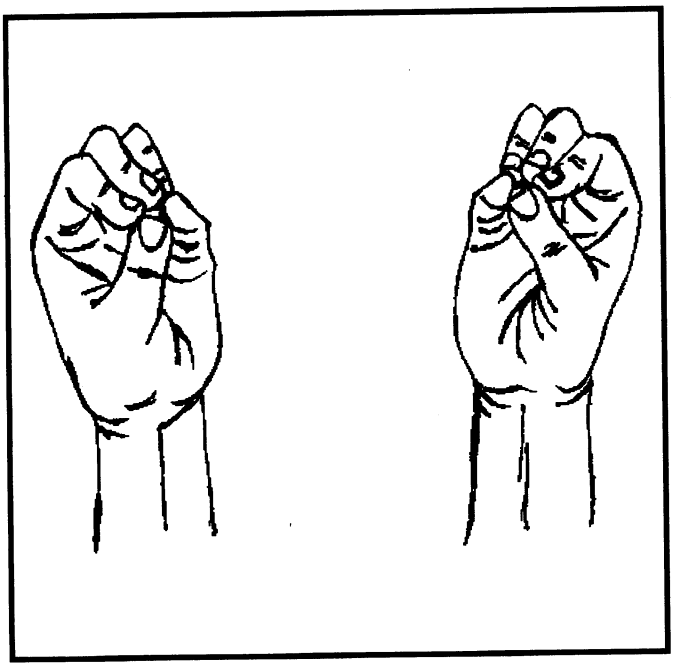

समान मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर, विशुद्धि एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** तैजस, विशुद्धि एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन संस्थान, स्वर यंत्र, कान, नाक, गला, मुँह, हृदय, फेफड़ें, रक्त संचार प्रणाली एवं भुजाएँ।

13. ग्रास मुद्रा

दायें हाथ की पाँचों अंगुलियों को ग्रास लेने की भाँति किंचित मोड़ना ग्रास मुद्रा है।

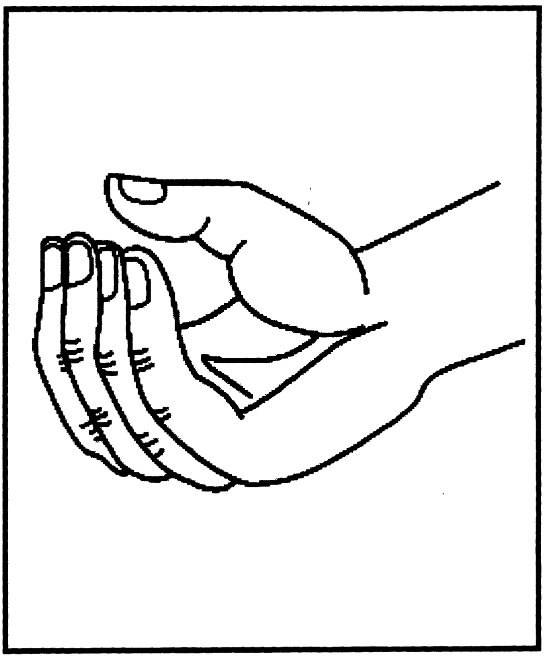

ग्रास मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं शक्ति केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग एवं गुर्दे।

ध्यानावेश प्रार्थना सम्बन्धी मुद्राएँ

हिन्दू आम्नाय में ध्यानावेश प्रार्थना की पाँच मुद्राएँ मानी गई हैं वे निम्न प्रकार है[12]–

1. विघ्नघ्नी मुद्रा

हाथों की दोनों मुट्ठियों को एक-दूसरे के अभिमुख करते हुए अंगूठों को ऊर्ध्व दिशा में फैलाना विघ्नघ्नी मुद्रा है।

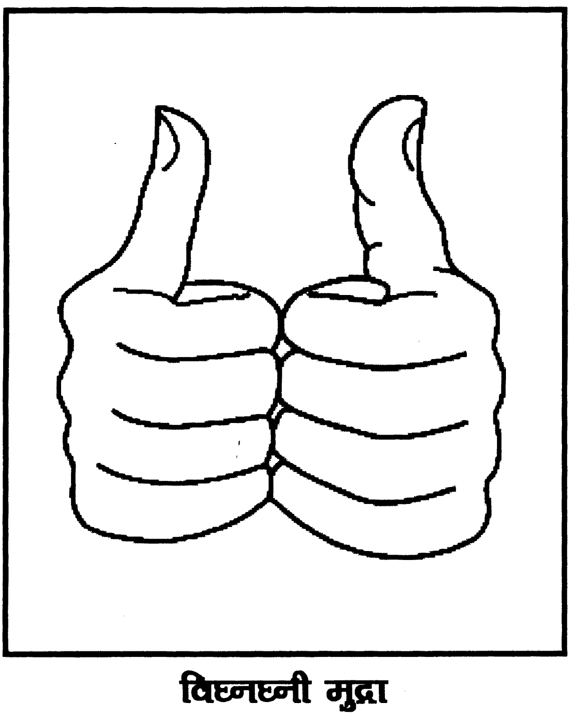

विघ्नघ्नी मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **केन्द्र–** ज्ञान एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, आँख, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

2. विस्मय मुद्रा

दायें हाथ को मजबूत मुट्ठी के रूप में बाँधकर तर्जनी के अग्रभाग से नाक का स्पर्श करना, विस्मय मुद्रा है।

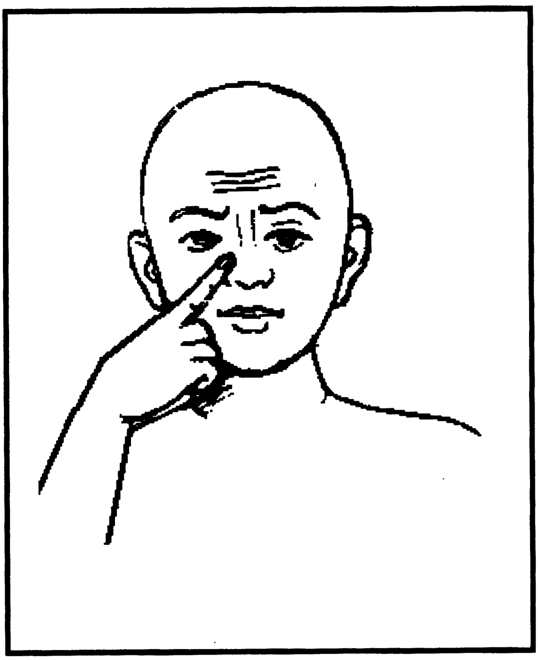

विस्मय मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– आज्ञा एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं पृथ्वी तत्त्व **केन्द्र–** ज्योति एवं शक्ति केन्द्र **ग्रन्थि–** पीयूष एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, मेरूदण्ड, गुर्दे एवं पाँव।

3. प्रार्थना मुद्रा

दोनों हथेलियों को नमस्कार मुद्रा की भाँति बनाकर हृदय के अग्रभाग पर स्थापित करना, प्रार्थना मुद्रा है।

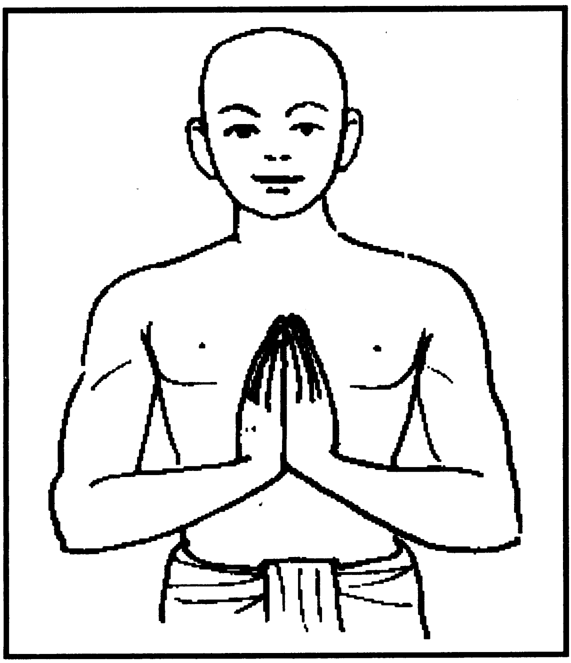

प्रार्थना मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र**– आनंद एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि**– थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**– हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, मस्तिष्क एवं स्नायुतंत्र।

4. अर्घ्य मुद्रा

दोनों हाथों को अंजलि रूप में बनाकर उसमें गंध-पुष्पादि से युक्त जल को ग्रहण करें। फिर उसे सूर्य देवता के सम्मुख छोड़ना अर्घ्य मुद्रा है।

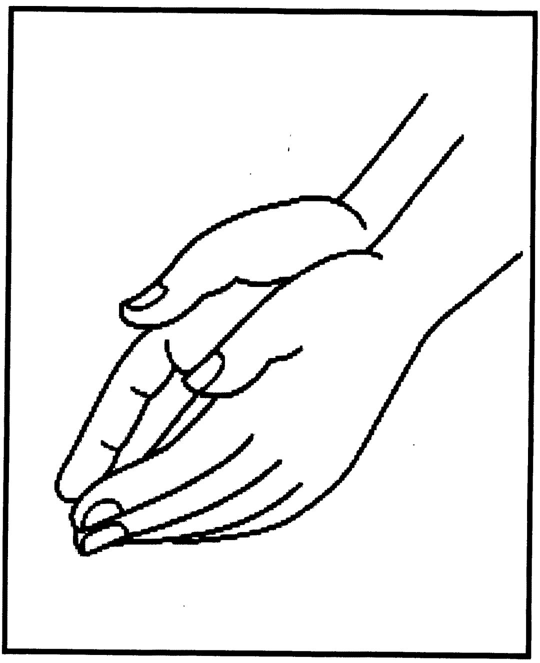

अर्घ्य मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मल-मूत्र अंग एवं प्रजनन अंग।

5. सूर्य प्रदर्शनी मुद्रा

दोनों हाथों को आमने-सामने कर बायीं तर्जनी को दायीं कनिष्ठिका से और दायीं तर्जनी को बायीं कनिष्ठिका से पकड़ें। इसी भाँति बायीं मध्यमा और अनामिका को दायें अंगूठे से तथा दायीं मध्यमा और अनामिका को बायें अंगूठे से बाँधकर सूर्य को देखना सूर्य प्रदर्शनी मुद्रा है।

इस मुद्रा का प्रयोग नेत्रों के आराम एवं उनकी ज्योति वृद्धि के लिए प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। प्राचीन ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर इसकी प्रशंसा की गयी है। इस मुद्रा के द्वारा सूर्य देखने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

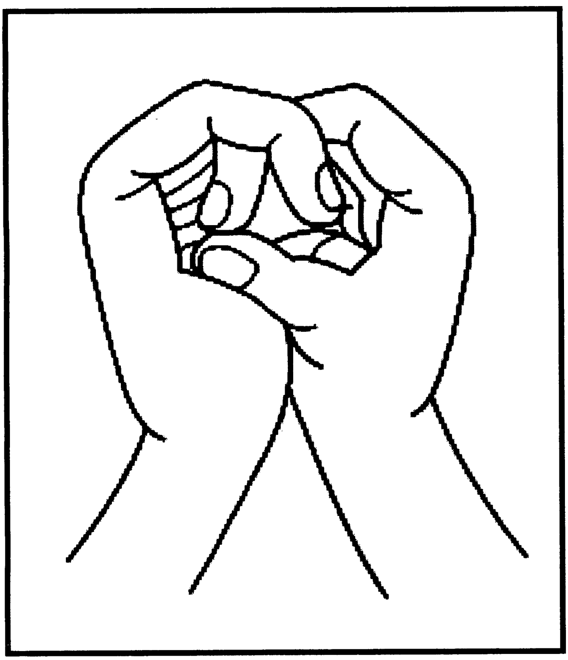

सूर्य प्रदर्शनी मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– अनाहत, विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** आनंद, विशुद्धि एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** थायमस, थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र, स्वर यंत्र, नाक, कान, गला मुँह, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

होम सम्बन्धी मुद्राएँ

होम क्रिया में मुद्राओं का विशेष प्रयोग होता है। यदि होम में मुद्राहीन आहूति दी जाती है तो देवता उसे ठीक उसी प्रकार से ग्रहण नहीं करते जिस प्रकार मन्त्रहीन आहूति ग्रहण नहीं की जाती, अतः होम काल में नौ मुद्राएँ मुख्य कही गई हैं–[13]

1. अवगुण्ठिनी मुद्रा

इसका वर्णन उपासना सम्बन्धी मुद्राओं में देखें।

2. सप्तजिह्वा मुद्रा

दोनों मणिबन्ध स्थानों को संयुक्त कर अंगुलियों को फैलाएँ, फिर दोनों कनिष्ठिकाओं से अंगूठों को स्पर्शित कर हथेलियों को सीधा करें। तदनन्तर दोनों मध्यमा अंगुलियों और कनिष्ठिकाओं को जोड़ देने पर सप्तजिह्वा मुद्रा बनती है।

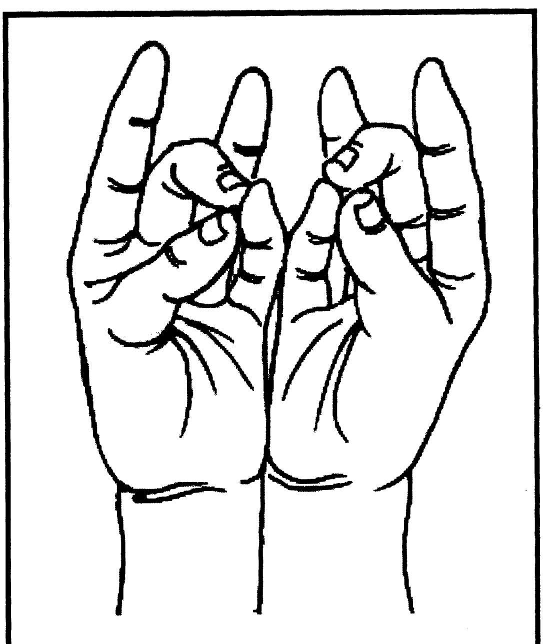

सप्तजिह्वा मुद्रा

3. ज्वालिनी मुद्रा

सप्तजिह्वा मुद्रा में अंगूठों से सम्पृक्त कनिष्ठिकाओं को पृथक कर देना, ज्वालिनी मुद्रा है।

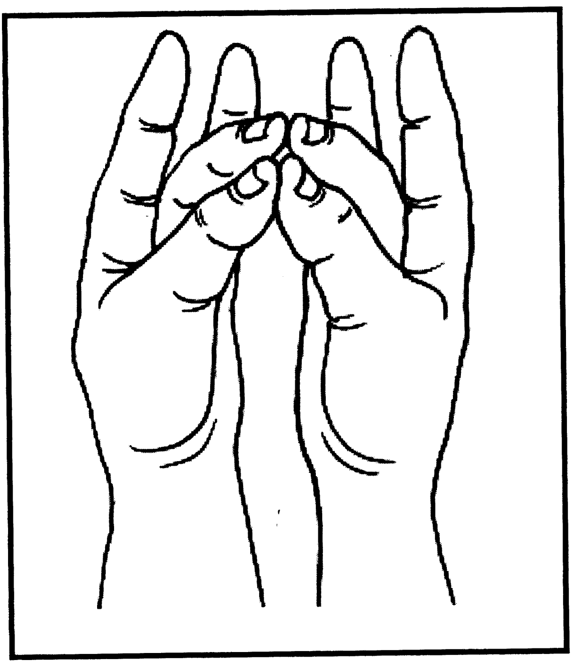

ज्वालिनी मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं रक्त संचार प्रणाली।

4. मृगी मुद्रा

अंगूठा, मध्यमा और अनामिका के अग्रभागों को परस्पर संयुक्त कर शेष अंगुलियों को ऊर्ध्व प्रसरित करने पर मृग मुद्रा बनती है।

शक्ति एवं पुष्टि कर्म से सम्बन्धित होम में इस मुद्रा का प्रयोग श्रेष्ठ फल देता है।

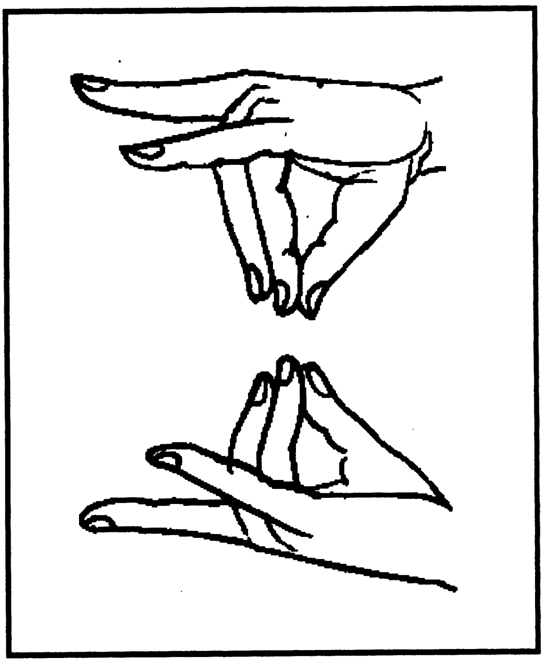

मृगी मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं दर्शन केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, निचला मस्तिष्क एवं आँखें।

5. हंसी मुद्रा

कनिष्ठिका को सभी अंगुलियों से अलग रखने पर हंसी मुद्रा बनती है। शान्ति एवं पुष्टि कर्म से सम्बन्धित होम कर्म में इस मुद्रा का प्रयोग उत्तम फलदायक माना गया है।

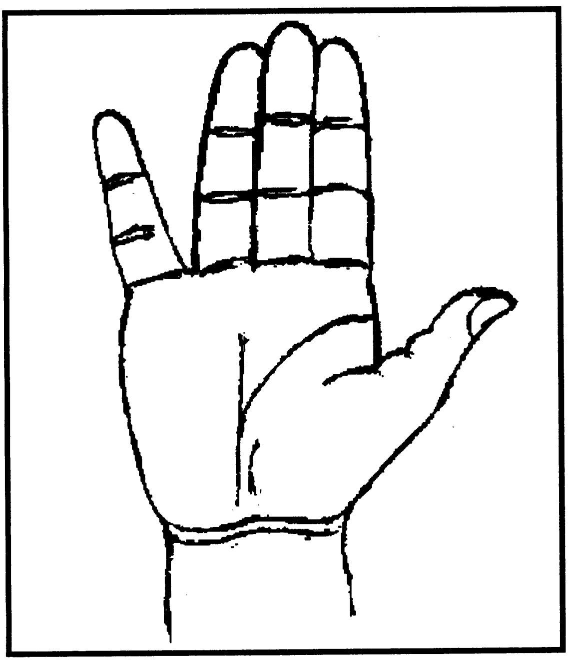

हंसी मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग एवं गुर्दे।

6. शूकरी मुद्रा

सभी अंगुलियों एवं अंगूठे को एकत्रित कर लेने पर शूकरी मुद्रा बनती है। इस मुद्रा का प्रयोग अभिचार कर्म हेतु किया जाता है।

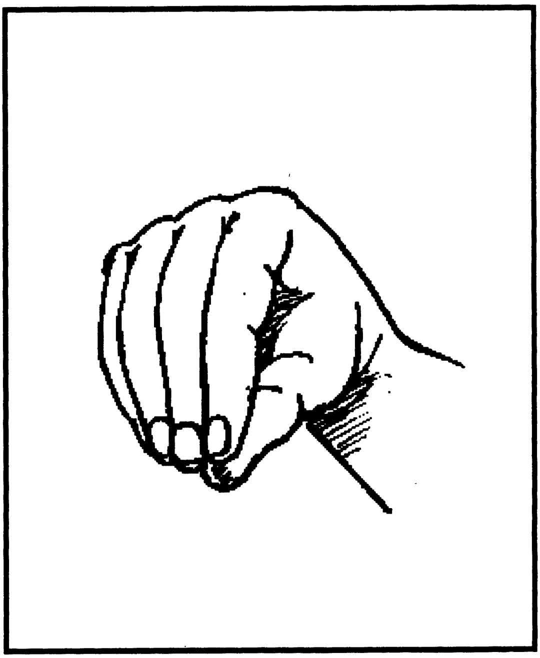

शूकरी मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–**जल एवं अग्नि तत्त्व **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल तथा पैन्क्रियाज **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र एवं आँतें।

7. आहुति मुद्रा

1. दाह, ज्वर, अभिघात आदि को दूर करने के लिए अनामिका और अंगूठे के अग्रभागों को संयुक्त कर आहुति देना चाहिए।
2. विद्वेष, उच्चाटन, मारण कर्म सम्बन्धी होम में भी उक्त मुद्रा द्वारा ही आहुति देना चाहिए।
3. विघ्न, बाधा दूर करने के लिए तर्जनी और मध्यमा को संयुक्त कर आहुति दें।
4. भूत आदि भय की शान्ति हेतु तर्जनी, मध्यमा और अंगूठे को संयुक्त कर आहुति दें।
5. मोहन, उच्चाटन, क्षोभण तथा आकर्षण आदि कार्यों में कनिष्ठिका, मध्यमा और अंगूठे को मिलाकर आहुति दें।
6. मोहन, वशीकरण एवं प्रीतिवर्द्धन हेतु कनिष्ठिका और प्रदेशिनी के योग से आहुति दें।
7. आकर्षण एवं दूर देशवासी को बुलाने के लिए, तर्जनी और अनामिका के योग से आहुति दें।

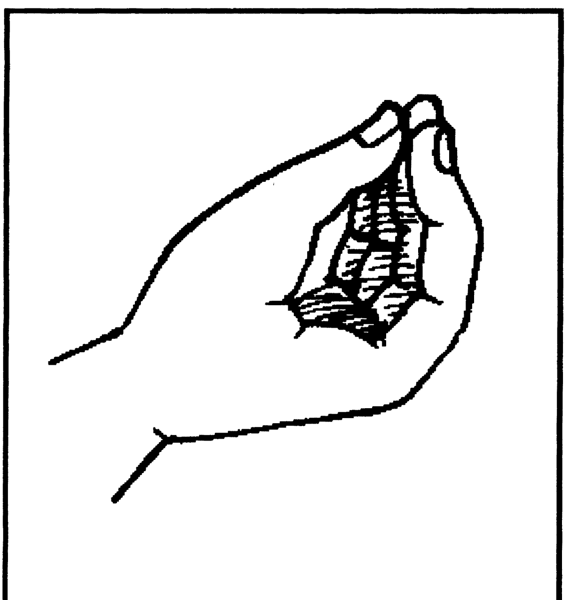

आहुति मुद्रा

8. आरोग्य-लाभ, स्नेह, मैत्री, पुष्टि, प्रभा आदि की प्राप्ति के लिए तर्जनी और अनामिका को संयुक्त कर आहुति देने से सफलता मिलती है। इस तरह भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की अपेक्षा आहुति मुद्रा भी अनेक होती हैं।

सुपरिणाम

चक्र– आज्ञा, मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** आकाश, पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** ज्योति, शक्ति एवं विशुद्धि केन्द्र **ग्रन्थि–** पीयूष, प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, कान, नाक, गला, मुँह एवं स्वर यंत्र।

8. आवशिष्टिका मुद्रा

अवशिष्ट का अर्थ है– बची हुई सामग्री या वस्तु। इस मुद्रा में सब प्रकार के होम में शेष रही हुई सामग्री को पहले किसी शुद्ध पात्र में एकत्रित कर, फिर उसे दोनों हाथों में गृहीत कर अग्नि में छोड़ते हैं। यही मुद्रा आवशिष्टिका मुद्रा कहलाती है।

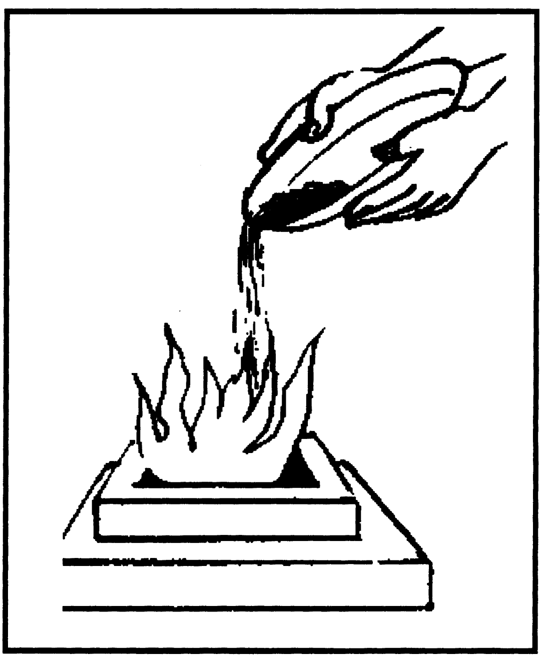

आवशिष्टिका मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– अनाहत, सहस्रार एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** वायु, आकाश एवं पृथ्वी तत्त्व **केन्द्र–** आनंद, ज्ञान एवं शक्ति केन्द्र **ग्रन्थि–** थायमस, पिनियल एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, ऊपरी मस्तिष्क, आँख, मेरुदण्ड, गुर्दे।

9. अस्त्र मुद्रा

फेंककर चलाये जाने वाला हथियार, जैसे तीर अस्त्र कहलाता है। यज्ञ–हवन आदि के वक्त अस्त्र मुद्रा का उपयोग आसुरी शक्तियों के निवारण एवं निम्न कोटि के देवी-देवताओं को भयभीत करने के उद्देश्य से किया जाता है।

'शुभ कार्यों में विघ्न आते हैं' ऐसा पूर्वाचार्यों का कथन हैं तथा 'मिथ्यात्वी देवता विघ्न संतोषी होते हैं' यह भी शास्त्रोक्त है। इस मुद्रा के द्वारा दृढ़ संकल्प पूर्वक अमंगल का परिहार किया जाता है।

यज्ञादि कार्यों के लिए उपयुक्त आसन में बैठ जाएँ। फिर दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा से बाएँ हाथ की हथेली पर शब्दयुक्त आघात करना अस्त्र मुद्रा है।

सरस्वती देवी सम्बन्धी मुद्राएँ

विद्यादायिनी माँ सरस्वती देवी की मुख्य 5 मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है। उनका परिचय इस प्रकार है[14]–

1. अक्षमाला– हाथ में माला गृहीत मुद्रा 2. वीणा मुद्रा– दोनों हाथों में वीणा धारित मुद्रा 3. व्याख्यान– व्याख्यान देती हुई मुद्रा 4. पुस्तक– एक हाथ में पुस्तक धारण की हुई मुद्रा और 5. वर– आशीर्वाद प्रदान मुद्रा।

1. अक्षमाला मुद्रा

दोनों अंगूठों और दोनों तर्जनियों के अग्रभाग को मिलायें फिर शेष अंगुलियों को परस्पर ग्रथित कर सीधा करने पर अक्षमाला मुद्रा बनती है।

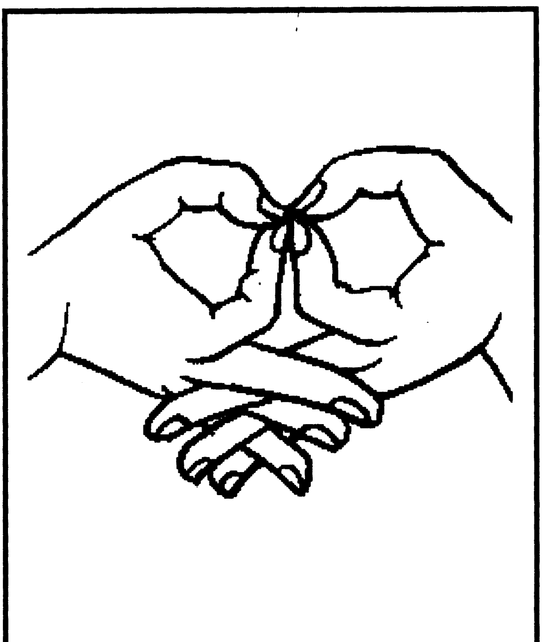

अक्षमाला मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** विशुद्धि एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

2. वीणा मुद्रा

वीणावादनं बद्ध हस्तौ, कृत्वा सञ्चालयेच्छिरः।
वीणा मुद्रेय माख्याता, सरस्वत्याः प्रियंकरी।।

दोनों हाथों के द्वारा जिस तरह वीणा बजाई जाती है उस स्थिति में हाथों को निर्मित कर सिर का संचालन करते रहना, वीणा मुद्रा है।

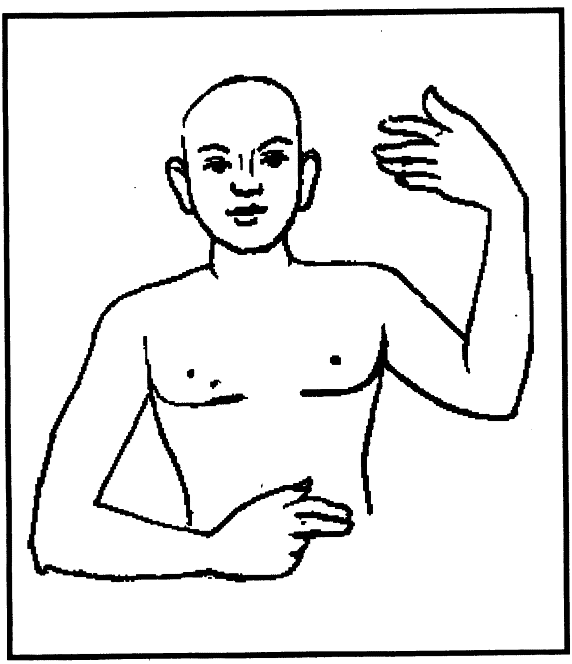

वीणा मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं रक्त संचार प्रणाली।

3. व्याख्यान मुद्रा

दक्षिणांगुष्ठतर्जन्या, अग्रलग्ने पराङ्मुखे ।
प्रसार्य संहितोत्ताना, ह्येषा व्याख्यान मुद्रिका ।।

दायीं तर्जनी और अंगूठे के अग्रभागों को संयुक्त कर शेष अंगुलियों को आपस में मिलाते हुए ऊपर की ओर उठाना, व्याख्यान मुद्रा है।

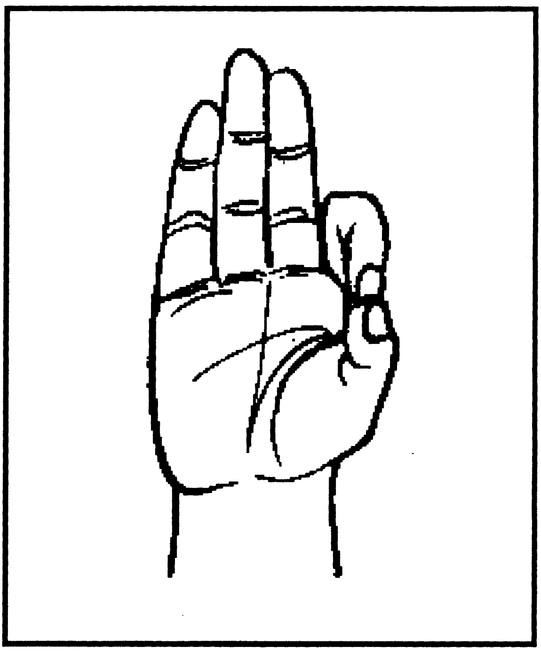

व्याख्यान मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

4. पुस्तक मुद्रा

वाममुष्टिं स्वाभिमुखीं कृत्वा पुस्तक मुद्रिका।

बायें हाथ को मुट्ठी रूप में बनाकर उसे स्वयं के सम्मुख रखना पुस्तक मुद्रा है।

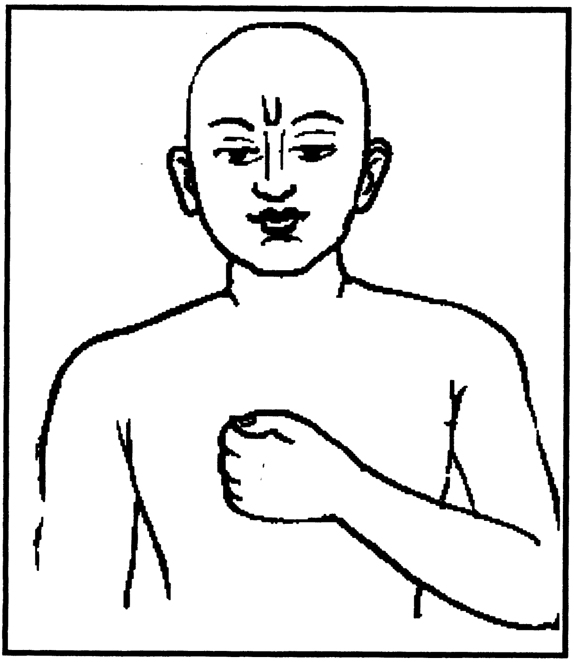

पुस्तक मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **केन्द्र–** ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, निचला मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

5. वर मुद्रा

अधः स्थितो दक्षहस्तः प्रसृतो वरमुद्रिका।

दायीं हथेली को अधोमुख करते हुए प्रसरित करना वर मुद्रा है।

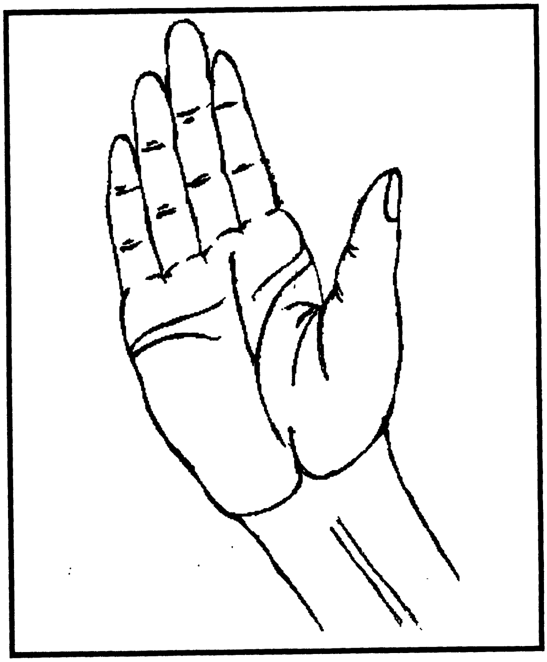

वर मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– आज्ञा एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** ज्योति एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** पीयूष एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** निचला मस्तिष्क, आँख, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं रक्त संचार तंत्र।

विविध मुद्राएँ

1. सर्वोन्मादिनी मुद्रा

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा, मध्यमा मध्यमेनुजे।
अनामिकेतु सरले, तदधस्तर्जनीद्वयं।।
दण्डकारी ततोङ्गुष्ठौ, मध्यमान स्वदेश गौ।
मुद्रैषोन्मादिनी नाम, क्लेदिनी सर्वयोषिताम्।।

दक्षिण हस्त कनिष्ठां, वामहस्त मध्यमया।
बध्वा वामहस्त कनिष्ठिां, दक्षहस्त मध्यमया।।
बध्वा तयोर्नखदेशयोः, अंगुष्ठौ निक्षिपेत्।।

दोनों हाथों को आमने-सामने कर मध्यमाओं के द्वारा कनिष्ठिकाओं को पकड़ें, अनामिकाओं को सीधा रखें, उनके बाह्य भाग में दोनों तर्जनियों को सीधा रखें तथा अंगूठों को दण्डाकारवत सीधा रखते हुए मध्यमाओं के अग्रभाग से जुड़े रहने पर सर्वोन्मादिनी मुद्रा बनती है।

2. महांकुशा मुद्रा

अस्यास्त्वनामिका युग्म, मधः कृत्वां कुशाकृतिः।
तर्जन्या वपितेनैव, क्रमेण विनियोजयेत्।।
इयं महांकुशा मुद्रा, सर्वकामार्थ साधिनी।।

दोनों अनामिकाओं को अंकुशाकार करके अधोमुख करना तथा दोनों तर्जनियों को अंकुशाकार करके सम्मिलित करना, महांकुशा मुद्रा है।

इस मुद्रा का प्रयोग कभी भी थोड़े से अभ्यास के बाद किया जा सकता है। यह सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाली मुद्रा के रूप में प्रचलित है।

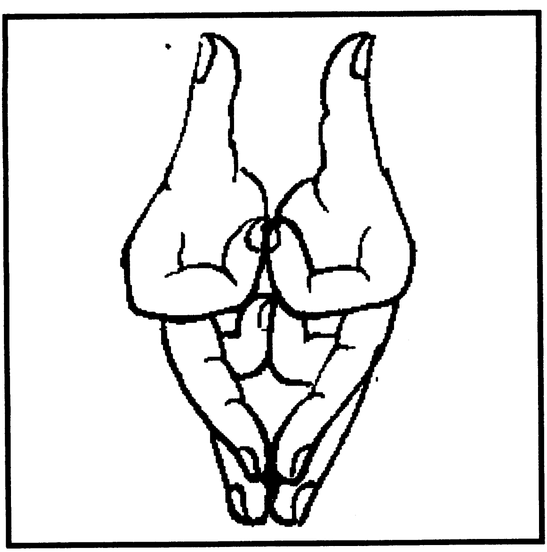

महाकुंभ मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

3. विद्राविणी मुद्रा

क्षोभ मुद्रा, लक्षणमुक्त्वोक्तम्।
एतस्या एव मुद्राया, मध्यमे सरलायदा।।
क्रियते परमेशानि, तदा विद्राविणीमता।।

दोनों कनिष्ठिकाओं को अंगूठों से आक्रमित करते हुए अनामिकाओं को हथेली की तरफ मोड़ना तथा शेष अंगुलियों को ऊर्ध्व दिशा में रखना विद्राविणी मुद्रा है।

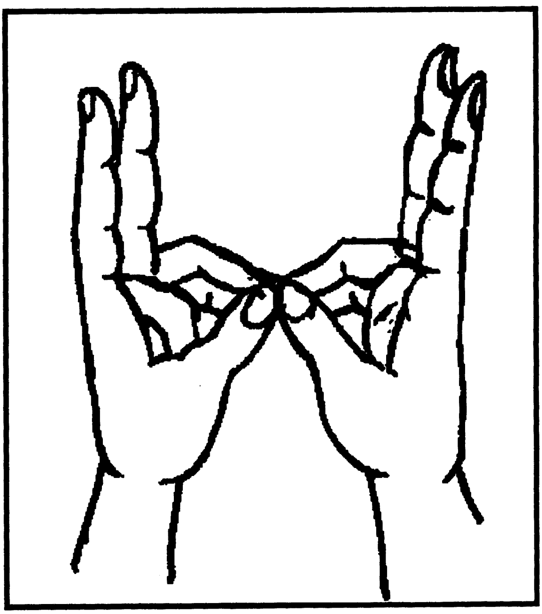

विद्राविणी मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष**

प्रभावित अंग– यकृत, तिल्ली, आँते, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं रक्त संचरण तंत्र।

4. सर्व विक्षोभ मुद्रा

मध्यमां मध्यमे कृत्वा, कनिष्ठांगुष्ठ रोधिते ।
तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा, मध्यमोपर्यनामिके ।।
क्षोभाभिधानामुद्रेयं, सर्वसंक्षोभकारिणी ।।

दायीं मध्यमा को बायीं मध्यमा से योजित करते हुए कनिष्ठिकाओं को अंगूठों से आक्रमित करें, फिर अनामिकाओं को मध्यमा के पृष्ठ भाग पर लगायें तथा तर्जनियों को सीधा रखने पर सर्व विक्षोभ मुद्रा बनती है।

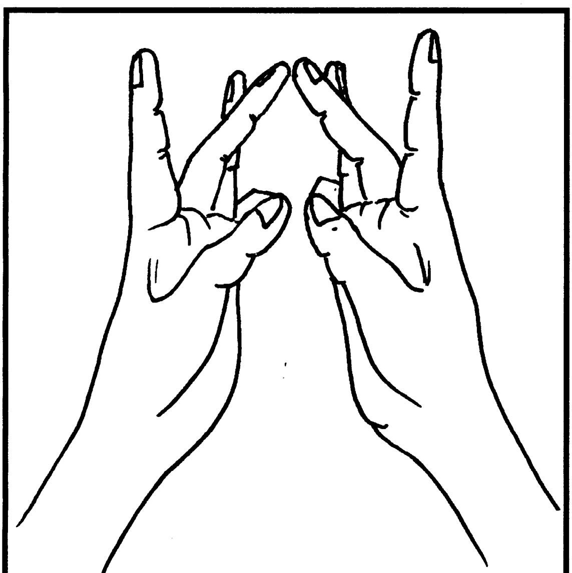

अंचित मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं शक्ति केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, मेरूदण्ड, गुर्दे।

5. सर्वाकर्षिणी मुद्रा

मध्यमातर्जनीभ्यांतु, कनिष्ठा नामिके समे।
अंकुशाकार रूपाभ्यां, मध्यमे परमेश्वरी।।
इय माकर्षिणी मुद्रा, त्रैलोक्याकर्षणे क्षमा।।

कनिष्ठिका, अनामिका, मध्यमा और तर्जनी को समान रूप से रखते हुए मध्यमा को अंकुशाकार बनाना, सर्वाकर्षिणी मुद्रा है।

त्रैलोक्य को आकर्षित करने वाली यह महत्त्वपूर्ण मुद्रा है। इस मुद्रा का प्रयोग स्वतंत्र रूप से एवं मन्त्रों के साथ भी किया जा सकता है। मन्त्र जाप के अवसर पर यह मुद्रा करने से मंत्र सिद्ध होता है तथा उसके बिना भी इसका प्रयोग आकर्षण एवं मोहन उत्पन्न करता है।

6. छोटिका मुद्रा

अंगुष्ठ तर्जनी स्फोटं छोटिका मुद्रिका मता।

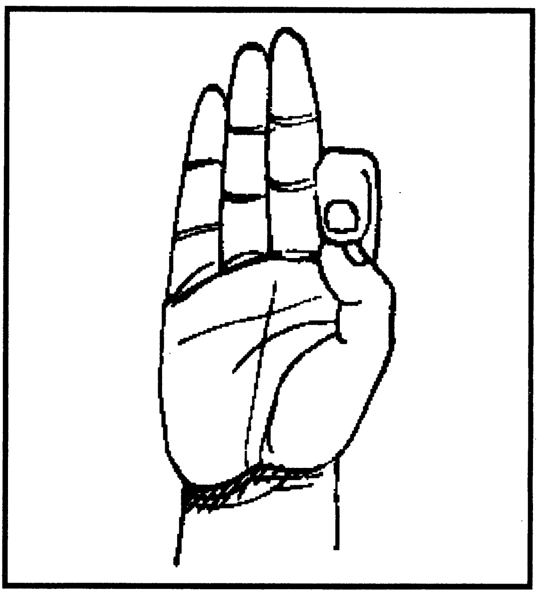

छोटिका मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष**

प्रभावित अंग– पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग एवं गुर्दे।

7. प्रबोध मुद्रा

ज्ञान मुद्रा संचालने, प्रबोध मुद्रा ।

ज्ञान मुद्रा में स्थिर होकर संचालन करना प्रबोध मुद्रा है। इस मुद्रा में पद्मासन में बैठकर बायें हाथ को बायें घुटने पर तथा दायें हाथ को हृदय के समीप रखते हैं।

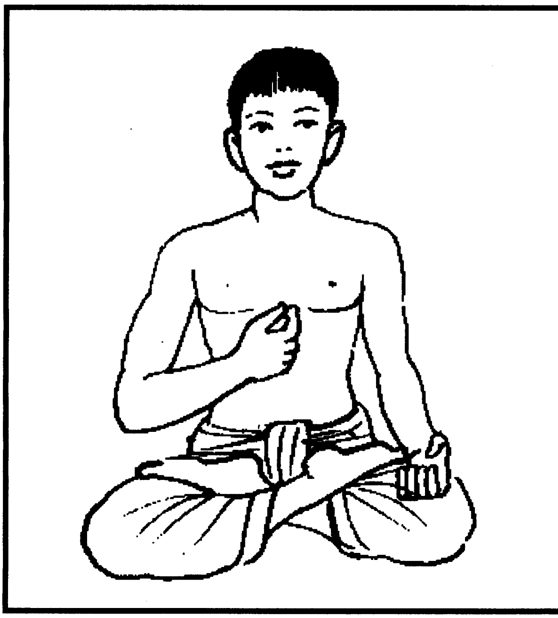

प्रबोध मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** तैजस, आनंद एवं ज्योति केन्द्र, **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, स्नायु तंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं निचला मस्तिष्क।

8. मुण्ड मुद्रा

बायें अंगूठे को मुट्ठी में दबाकर दायें हाथ की मध्यमा और तर्जनी को अंगूठे के अग्रभाग में लगायें तथा दूसरी मुट्ठी को लम्बित कर स्पर्श किये रखना मुण्ड मुद्रा है।

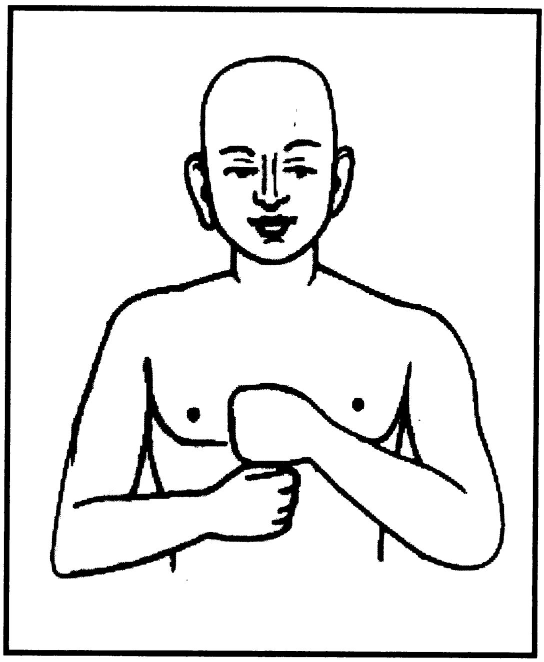

मुण्ड मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **केन्द्र–** ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

9. जप मुद्रा

माला को मध्यमा के मध्य पर्व पर रखकर अंगूठे के अग्रभाग से मणियों को चलाते रहना, जप मुद्रा हैं।

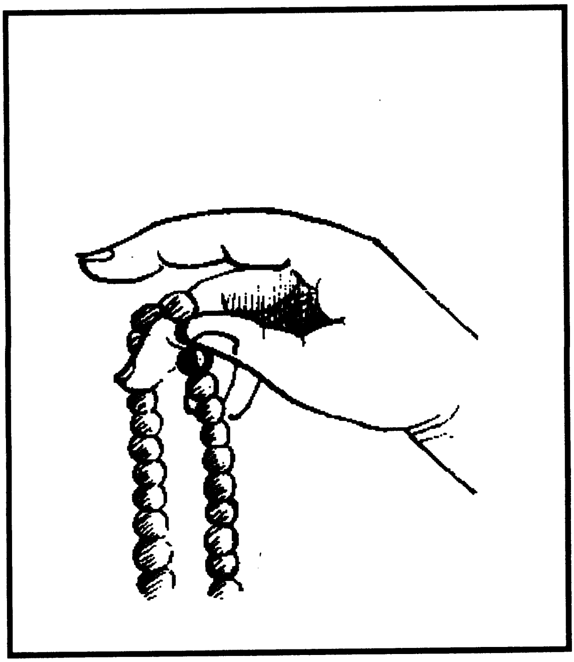

जप मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** विशुद्धि एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

10. पंचक मुद्रा

दोनों हाथों की अंगुलियों एवं अंगूठों को परस्पर मिलाकर ऊपर की ओर करना पंचक मुद्रा है।

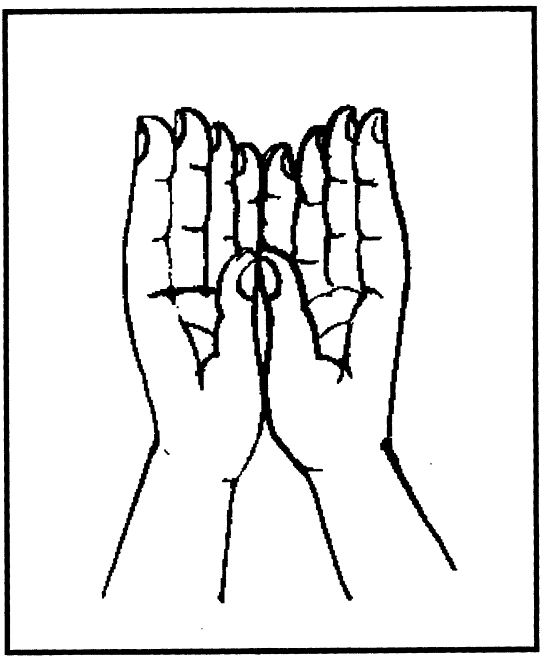

पंचक मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र— स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**— जल एवं वायु तत्त्व **केन्द्र**— स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि**— प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग**— मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं रक्त संचार प्रणाली।

11. पल्लव मुद्रा

दायीं हथेली को सामने की ओर करके अंगुलियों को पृथक-पृथक फैला देना, पल्लव मुद्रा है।

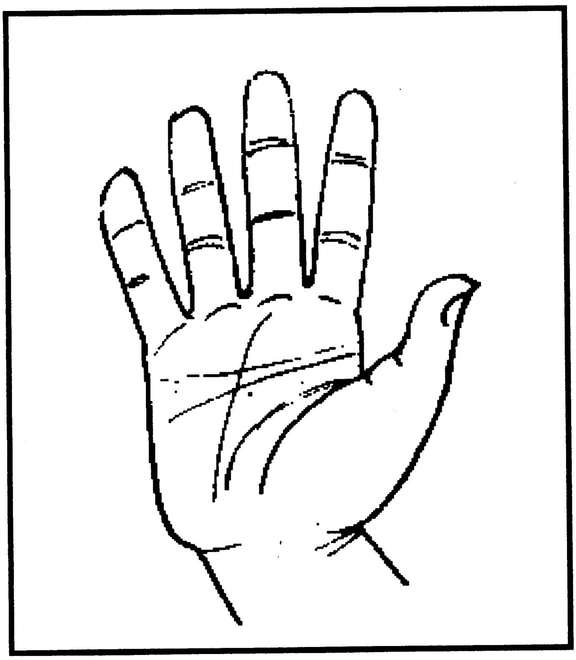

पल्लव मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– विशुद्धि सहस्रार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** विशुद्धि, ज्ञान एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड, पिनियल एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुँह, आँख, स्वरयंत्र, ऊपरी मस्तिष्क, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं रक्त संचार तंत्र।

12. प्रलम्ब मुद्रा

दोनों हाथों की सभी अंगुलियों को परस्पर मिलाकर दर्शाये चित्र के अनुसार आगे की ओर फैला देना, प्रलम्ब मुद्रा है।[15]

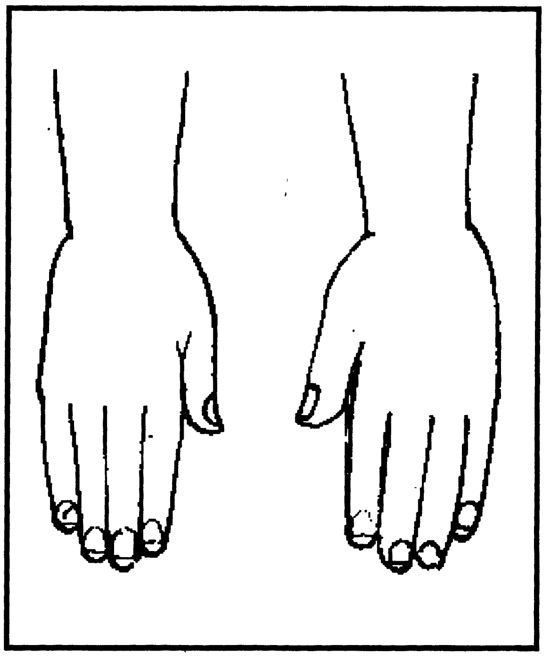

प्रलम्ब मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **केन्द्र–** ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, निचला मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

विष्णु के पूजन में प्रयुक्त होने वाली मुद्राएँ

विष्णु पूजन की 19 मुद्रायें कही गई हैं। इन मुद्राओं का प्रयोग विष्णु पूजन में किया जाता है। उनके नाम निम्नानुसार हैं– 1. शंख मुद्रा 2. चक्र मुद्रा 3. गदा मुद्रा 4. पद्म मुद्रा 5. वेणु मुद्रा 6. श्रीवत्स मुद्रा 7. कौस्तुभ मुद्रा 8. वनमाला मुद्रा 9. ज्ञान मुद्रा 10. बिल्व मुद्रा 11. गरुड़ मुद्रा 12. नारसिंही मुद्रा 13. वाराही मुद्रा 14. हयग्रैवी मुद्रा 15. धनु मुद्रा 16. वाण मुद्रा 17. परशु मुद्रा 18. त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा 19. काम मुद्रा।[16]

शारदातिलकतन्त्र की राघवभट्टीय टीका में उपर्युक्त प्रायः सभी मुद्राओं के नाम मिलते हैं लेकिन मुद्रा बनाने के प्रकारों में मतान्तर हैं अतः इनका नाम निर्देश ही औचित्यपूर्ण होगा।

शिव के पूजन में प्रयुक्त होने वाली मुद्राएँ

हिन्दू ग्रन्थों में भगवान शिव की 10 मुद्राएँ वर्णित हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं–

1. लिंग मुद्रा 2. योनि मुद्रा 3. त्रिशूल मुद्रा 4. अक्षमाला मुद्रा 5. वर मुद्रा 6. अभय मुद्रा 7. मृगी मुद्रा 8. खट्वांग मुद्रा 9. कापालिकी मुद्रा 10. डमरूक मुद्रा।[17]

ऊपर वर्णित मुद्राओं का उल्लेख भी 'तान्त्रिक मुद्रा-विज्ञान' के आधार पर किया है। शंकराचार्य विरचित प्रपंचसार-सारसंग्रह में कथित 54 मुद्राओं में उक्त 10 मुद्रा नामों का भी उल्लेख है, किन्तु प्रयोग विधि के सम्बन्ध में प्रायः भिन्नता है। इसलिए इन मुद्राओं का भी नाम निर्देश ही किया गया है।

भारतीय संस्कृति ने जीवन में व्यवहारिक कर्त्तव्य एवं दक्षता को जितनी प्रमुखता दी है उतना ही महत्त्व नित्य आराधना और नियमपालन को दिया है। दोनों ही क्रियाएँ एक दूसरे के समपूरक बनकर कार्य करती है। व्यवहारिक कर्त्तव्यों के प्रति सजगता आन्तरिक कषाय एवं मलिनता को दूर रखती है वही पूजा-उपासना में दृढ़ता एवं समर्पण सहज रूप में बाह्य विकास में सहयोगी बनता है। इस अध्याय में वर्णित नित्य उपयोगी पूजा-उपासना की मुद्राएँ बाह्य एवं आभ्यंतर विकास में सहयोगी बने यही इस अध्याय का सार है।

सन्दर्भ-सूची

1. *AMO पृ. 141*
2. *वही, पृ. 141*
3. *वही, पृ. 141*
4. *वही, पृ. 141*
5. *वही, पृ. 141*
6. *वही, पृ. 141*
7. *उद्धृत– तन्त्र साधना और साधना, पृ. 69*
8. *तान्त्रिक मुद्रा विज्ञान, आचार्य पं. राजेश दीक्षित, पृ. 121-122*
9. *वही, पृ. 127-134*
10. *वही, पृ. 147-149*
11. *वही, पृ. 140-146*
12. *वही, पृ. 150-152*
13. *वही, पृ. 162-167*
14. *वही, पृ. 66-69*
15. *वही, पृ. 208-218*
16. *वही, पृ. 17-38*
17. *वही, पृ. 39-49*

अध्याय-6

हिन्दू एवं बौद्ध परम्पराओं में प्रचलित मुद्राओं का स्वरूप एवं उपयोगिता

श्रमण संस्कृति एवं वैदिक संस्कृति यद्यपि भारतीय सभ्यता की दो अलग धाराएँ हैं परन्तु दोनों पर एक दूसरे का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। दोनों में कुछ बातों को लेकर मत वैभिन्य है तो कहीं-कहीं समर्थन भी। यदि बौद्ध एवं हिन्दू परम्परा में प्राप्त मुद्राओं के स्वरूप एवं प्रयोजन पर दृष्टिपात किया जाए तो कुछेक मुद्राएँ ऐसी है जिनका महत्त्व समान रूप से दोनों ही परम्पराओं में रहा हुआ है। ऐसी ही कुछ मुद्राओं का स्वरूप निम्नोक्त है।

1. अभिषेक मुद्रा

जलपूरित कलश या शंख आदि के द्वारा मूर्ति आदि को प्रक्षालित करना अभिषेक कहलाता है। हिन्दू परम्परानुसार जल छिड़काव करना अथवा मंगल के

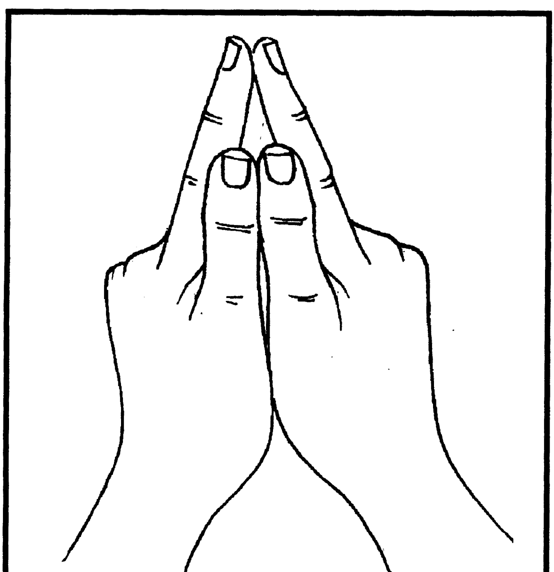

अभिषेक मुद्रा

लिए मंत्र पढ़कर कुश और दूब से जल छिड़कना अभिषेक है।[1] प्रस्तुत मुद्रा शंख के द्वारा अभिषेक करने की क्रिया का सूचन करती है। यह एक लंबी गर्दन वाले कलश का भी सूचन करती है जिसे कुछ परम्पराओं में अभिषेक हेतु सामान्यतया इत्र या सुगंधित जल आदि छिड़कने के लिए धारण किया जाता है।

इस मुद्रा को चीन में 'काउं-टिंग-यिं' और जापान में 'कंजो-इं' कहते हैं। यह मुद्रा हिन्दू एवं बौद्ध दोनों परम्पराओं में समान रूप से प्रचलित है।

विधि

दोनों हथेलियों को आमने-सामने रखकर (जैसे दर्पण में देखने पर प्रतिबिम्ब नजर आता है वैसे) मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को अंदर की ओर मोड़ें, तर्जनी को ऊर्ध्व दिशा में जोड़ें तथा अंगूठों को side से जोड़ते हुए तर्जनी के ऊपरी पोरों तथा मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठिका के बाह्य पोरों को Touch करवाने पर अभिषेक मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा को छाती तक ऊँचा धारण करते हैं।[2]

लाभ

चक्र– मूलाधार, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति, आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क।

2. अहायवरद मुद्रा

यह मुद्रा बौद्ध और हिन्दू दोनों परम्पराओं में समान है। इसके नाम से सूचित होता है कि यह वरद मुद्रा से संबंधित है। विद्वज्ञों के अनुसार यह मुद्रा आशीर्वाद देने, किसी को बुलाने अथवा आह्वान करने की सूचक है।

इसे अर्पण करने की सूचक भी माना जा सकता है क्योंकि यज्ञ, हवन आदि कार्यों में आहूति देते वक्त दर्शाये चित्र की भाँति ही हस्त मुद्रा होती है।

यह असंयुक्त मुद्रा एक हाथ से छाती के स्तर पर की जाती है और इसमें गति होती है।

विधि

दायीं हथेली को नीचे की ओर 45^0 पर रखें, फिर अंगुलियों को हथेली की

तरफ लाकर पुनः स्फूर्ति से नीचे की ओर ले जायें, इस तरह अंगुलियों का संचालन करते रहने पर वह अहायवरद मुद्रा कहलाती है।[3]

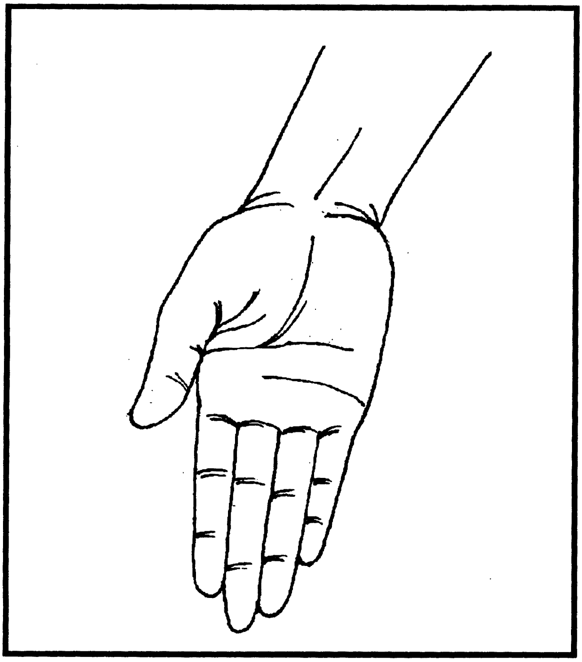

अहायवरद मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचनतंत्र, नाड़ीतंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मेरूदण्ड, गुर्दे, पांव।

3. अंजलि मुद्रा

अंजलि मुद्रा के विभिन्न प्रकारों में यह मुद्रा बौद्ध परम्परा में मुख्यतया वज्रायन उपासना में तथा हिन्दू परम्परा में भी प्रचलित है।

दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट अथवा किसी भी पदार्थ को देने की विधिवत प्रक्रिया अंजलि कहलाती है। यह मुद्रा अभिवादन या वंदन की सूचक है। मुद्रा स्वरूप के अनुसार यह किसी चित्र आदि को पकड़ने की मुद्रा

दर्शाती है। जैसे तांत्रिक परम्परा में अवलोकितेश्वर अमिताभ के चित्र को धारण करता है। यह संयुक्त मुद्रा निम्नानुसार है–

विधि

दोनों हाथों को मस्तक के आगे रखते हुए हथेलियों को ऊपर की ओर करें, फिर हथेलियों के एड़ी भाग को आपस में मिलायें तथा अंगुलियों को हल्का सा पृथक करते हुए उन्हें ऊपर की ओर फैलाने पर अंजलि मुद्रा बनती है।[4]

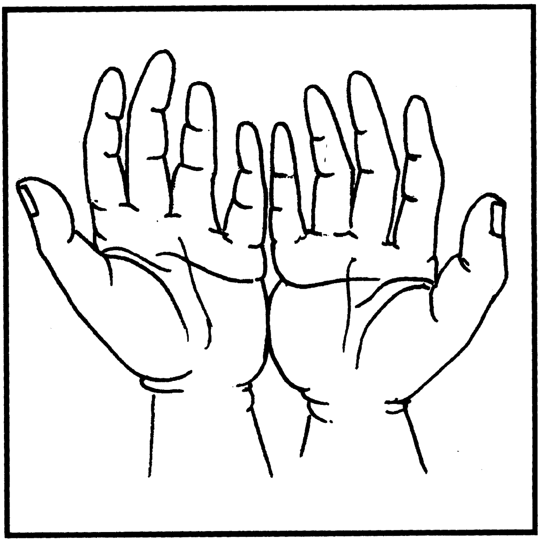

अंजलि मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार, अनाहत एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, वायु एवं अग्नि तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति, आनंद एवं तैजस केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायमस, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड गुर्दे, पैर, हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

4. अर्धचन्द्र मुद्रा

जिस मुद्रा में आधे चन्द्र जैसी आकृति दिखायी पड़ती हो उसे अर्धचन्द्र मुद्रा कहा जाता है।

यह मुद्रा हिन्दू एवं बौद्ध परम्परा में देवी-देवताओं के द्वारा धारण की जाती

है। यह मुद्रा आग के कटोरे को पकड़े हुए के भाव दर्शाती है।

विधि

बायें हाथ को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए अंगुलियों को हल्के से इस भाँति मोड़ें जो अर्धचन्द्र को सूचित करती हो तथा अंगूठे से अंगुलियों को 90^0 समकोण पर रखना, अर्धचन्द्र मुद्रा है।[5]

यह अंचित मुद्रा के समान प्रतीत होती है।

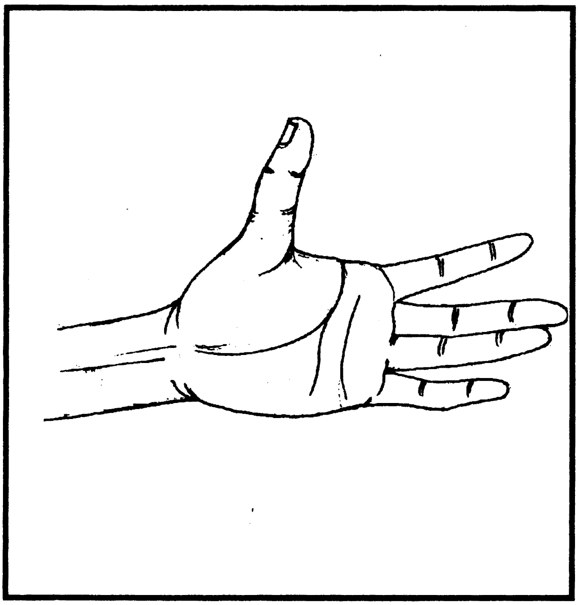

अर्द्धचन्द्र मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

5. अर्धाञ्जली मुद्रा

इस मुद्रा में अंजलि के प्रतीक रूप में एक ही हाथ का प्रयोग किया जाता है इसलिये इसे अर्धाञ्जली मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा बौद्धों की अपेक्षा हिन्दू परम्परा में अधिक प्रचलित है।

इस मुद्रा का उपयोग आशीर्वाद, मंगल कामना, अभिवादन अथवा पूजा आदि के लिए किया जाता है।

यह छाती के स्तर पर धारण की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को छाती के अग्रभाग में रखते हुए अंगुलियों को स्वाभाविक रूप से ऊपर की ओर उठाने पर अर्धाञ्जली मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा ईसाई पूजा पद्धति में पादरियों के द्वारा आशीर्वाद आदि देने के लिए धारण की गई मुद्रा के समान है।[6]

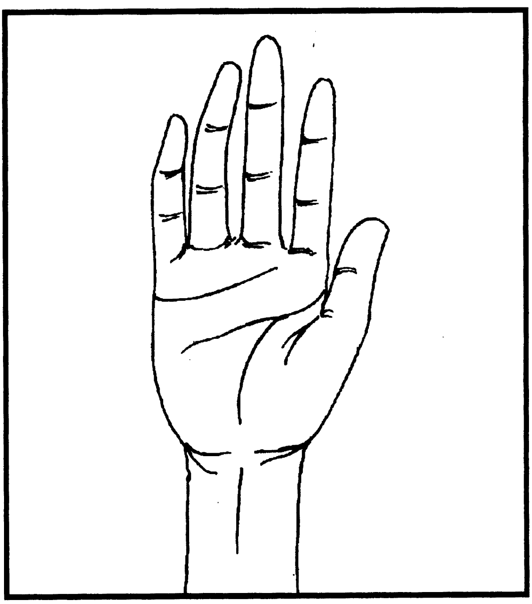

अर्धाञ्जली मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, हृदय, भुजाएं, फेफड़ें आदि।

6. बुद्धाश्रमण मुद्रा

इस मुद्रा नाम से ही सूचित होता है कि यह मुद्रा भगवान बुद्ध से सम्बन्धित है। यह मुद्रा बौद्ध परंपरा में अधिक प्रचलित है तथा हिन्दू परम्परा में बहुत कम देखने में आती है।

तिब्बत में इसका नाम 'म्यांग्-हडास्-फ्याग्-रज्ञ' मुद्रा है। यह एक अन्य प्रकार के अभिवादन या वंदन को अथवा तथागत की दृष्टि को दर्शाती है।

विधि

दायीं हथेली को मस्तक के स्तर पर धारण करते हुए ऊर्ध्वाभिमुख करें तथा कलाई पर से घुमाते हुए अंगुलियों को बाहर की तरफ करने पर बुद्धाश्रमण मुद्रा बनती है।[7]

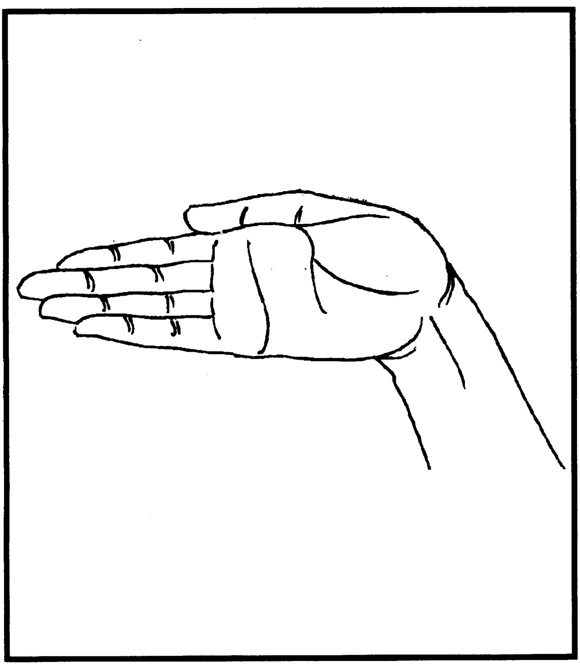

बुद्धाश्रमण मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष**

प्रभावित अंग– निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, एवं आँतें।

7. चपेटदान मुद्रा

यह मुद्रा बौद्ध परंपरा में अधिक प्रचलित है तथा हिन्दू परम्परा में कभी-कभार देखी जाती है।

इस मुद्रा चित्र को देखने से स्पष्ट होता है कि यह चेतावनी अथवा धमकी की सूचक है। इसे अभय मुद्रा के समान भी कहा जा सकता है।

विधि

दायीं हथेली को कंधे या सिर के स्तर पर थोड़ा Side में इस प्रकार रखें कि जैसे थप्पड़ पड़ने वाली हो।[8]

यह अधिक आक्रमणशीलता या उत्साह में की जाती है।

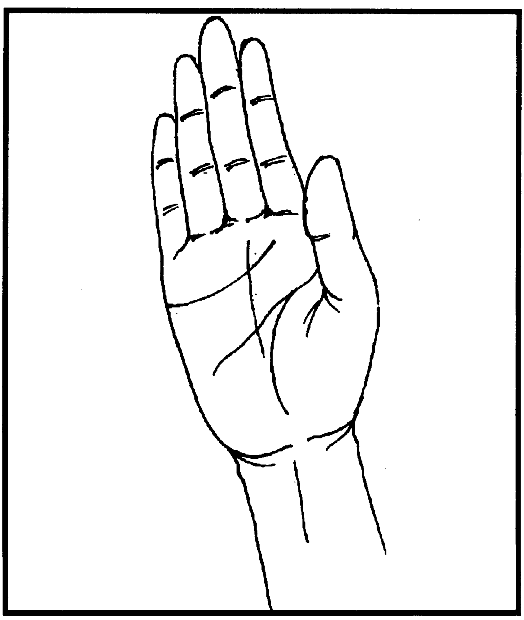

चपेटदान मुद्रा

लाभ

चक्र– विशुद्धि, अनाहत एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड, थायमस एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि,

आनंद एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**—कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, रक्त संचरण प्रणाली, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, मेरूदण्ड, गुर्दे एवं पाँव।

8. डमरू/डमरूहस्त मुद्रा

यह मुद्रा वज्रायना बौद्ध एवं हिन्दू परंपरा में एक जैसी है। इसे करण मुद्रा के समान माना गया है। डमरू हाथ में होने पर जो मुद्रा बनती है वह करण मुद्रा है।

विधि

दायीं हथेली को सामने की तरफ करके तर्जनी और कनिष्ठिका को ऊपर उठायें, अनामिका और मध्यमा को हथेली के भीतर मोड़ते हुए उनके अग्रभागों को अंगूठे के प्रथम पोर से स्पर्श करवायें तथा कनिष्ठिका और तर्जनी के मध्य जो अन्तर है उसमें डमरु को Fit करने पर डमरू मुद्रा बनती है।[9]

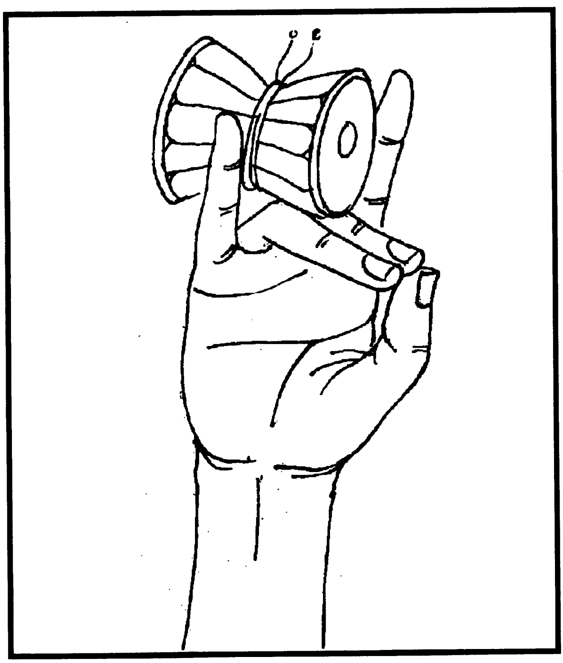

डमरूहस्त मुद्रा

लाभ

चक्र— मणिपुर, मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**— अग्नि, पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**— एड्रीनल, पैन्क्रियाज, प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र**—

तैजस, शक्ति एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, आँख एवं मस्तिष्क।

9. कर्त्तरीहस्त मुद्रा

यह मुद्रा हिन्दू एवं बौद्ध परम्परा में समान रूप से प्रचलित है। यह एक हाथ से की जाती है। इस मुद्रा को विरोध और मृत्यु की सूचक माना है।

मूर्ति सम्बन्धी उपकरणों को दिखाने के लिए भी इसका उपयोग होता है। इसकी विधि निम्न है-

विधि

दायीं हथेली को सामने की तरफ अभिमुख कर तर्जनी और मध्यमा को पृथक-पृथक रूप से ऊपर फैलायें, कनिष्ठिका को किंचित मोड़ें तथा अनामिका के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करवाने पर कर्तरीहस्त मुद्रा बनती है।[10]

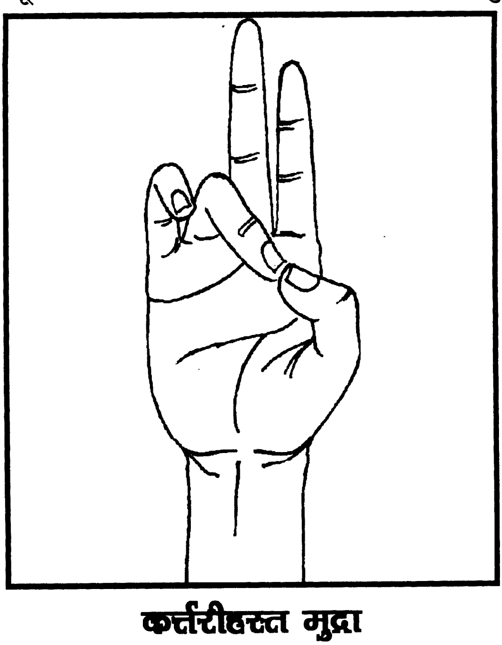

कर्त्तरीहस्त मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली, स्नायु तंत्र, आँख।

10. करन मुद्रा

हिन्दू एवं बौद्ध परम्परा में स्वीकृत यह मुद्रा भूत आदि दुष्ट आत्माओं को निष्कासित करने की सूचक है। करन शब्द अनेकार्थक है। यहाँ करन मुद्रा के द्वारा करने वाले के भाव दर्शाये जाते हैं।

यह मुद्रा एक हाथ से निम्न प्रकार होती है–

विधि

दायीं हथेली को सामने की तरफ अभिमुख कर तर्जनी और कनिष्ठिका को भूमि के समानान्तर सीधी रखें तथा मध्यमा और अनामिका को हथेली में मोड़कर अंगूठे को उनके ऊपर रखने से करन मुद्रा बनती है।[11]

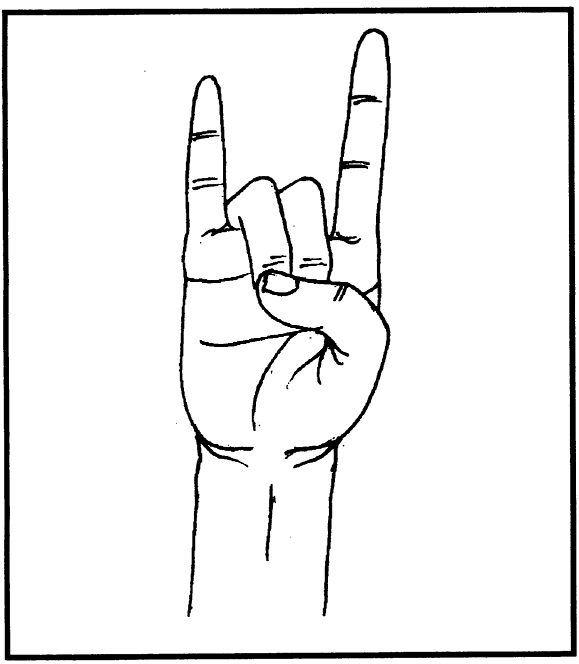

करन मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

11. कटक मुद्रा

कटक शब्द का एक अर्थ 'समूह' है।[12] इस मुद्रा में अंगुलियों को समूह रूप में एकत्रित किया जाता है अथवा अंगुलियाँ समूह रूप में संग्रहित हुई दिखती है इसलिए इसका नाम कटक मुद्रा है।

यह बौद्ध परम्परा की अपेक्षा हिन्दू परम्परा में अधिक प्रचलित है। यह मुद्रा सौन्दर्य परक है तथा देवियों के द्वारा पुष्प आदि पकड़ने के लिए की जाती है।

इसके द्विविध प्रकारान्तर निम्न हैं-

प्रथम प्रकार

दायीं या बायीं हथेली को मध्य भाग में रखें, फिर अंगुलियों को हथेली की तरफ इस भाँति मोड़ें कि तर्जनी का अग्रभाग अंगूठे के अग्रभाग का स्पर्श कर सकें, उस स्थिति में प्रथम कटक मुद्रा बनती है।[13]

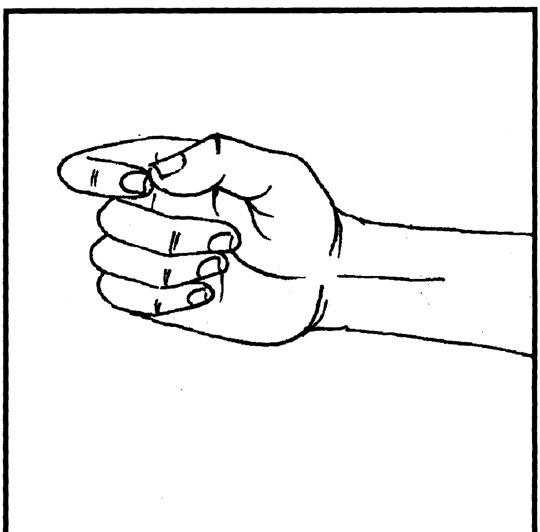

कटक मुद्रा-1

लाभ

चक्र– अनाहत एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र, मस्तिष्क, आँख।

द्वितीय प्रकार

दूसरे प्रकार में अंगुलियाँ हथेली की तरफ इस भाँति मुड़ती है कि उनका अग्रभाग अंगूठे को स्पर्श किया हुआ रहता है। इस स्थिति में वह कटक मुद्रा कहलाती है।[14]

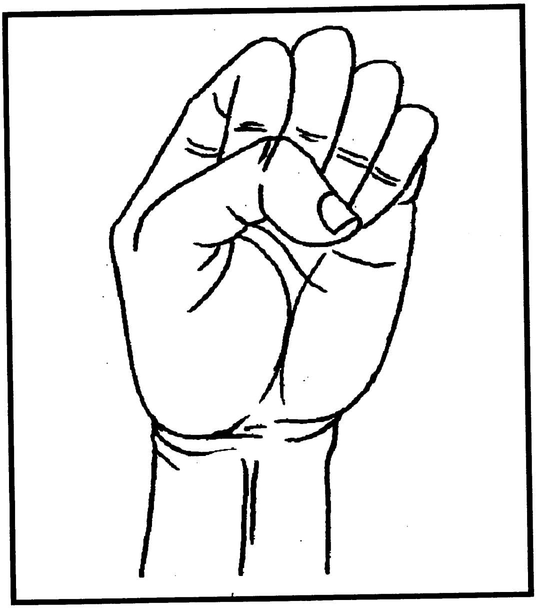

कटक मुद्रा-2

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व**– आकाश एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि**– पीयूष एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– दर्शन एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

12. मयूर मुद्रा

मयूर अर्थात मोर। यह भारत का राष्ट्रीय पक्षी माना जाता है। संस्कृत में इसका नाम भुजंगभुक् है क्योंकि यह सर्पों को निगल जाता है। यह अपनी सुन्दरता के लिए एवं नृत्य के लिए प्रसिद्ध है।

प्रस्तुत मुद्रा में मयूर सदृश मुखाकृति का आभास होता है अतः इसका नाम मयूर मुद्रा है।

यह हिन्दू एवं बौद्ध परम्परा में समान रूप से धारण की जाती है। यह मुद्रा शाश्वत प्रेम की प्रतीक है।

विधि

दायीं हथेली को बाहर की तरफ करते हुए एवं अंगूठा और अनामिका के अग्रभागों को आगे की तरफ करते हुए स्पर्श करवायें, तर्जनी और मध्यमा को हल्की सी पृथक करते हुए उर्ध्व दिशा में फैलायें तथा कनिष्ठिका को किंचित झुकाने पर मयूर मुद्रा बनती है।[15]

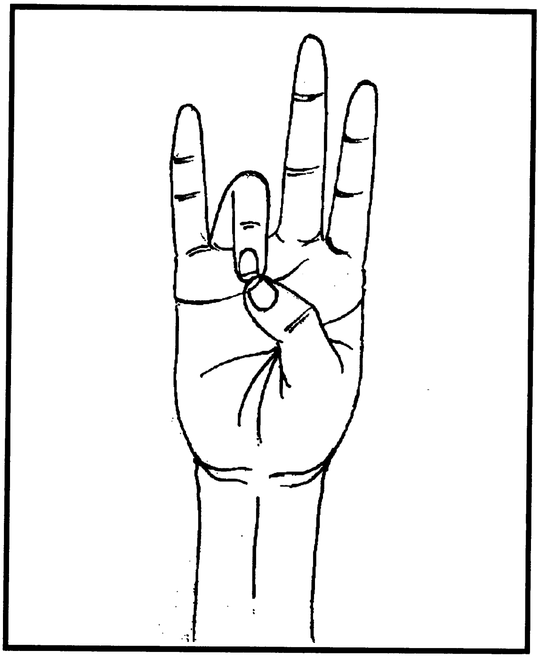

मयूर मुद्रा

लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** वायु एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

13. नमस्कार मुद्रा

झुककर अभिवादन करना, प्रणाम करना नमस्कार कहलाता है। तिब्बत इस मुद्रा को 'फ्याग-हत्शल, फ्याग रग्य' मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा की भिन्न-भिन्न कई स्थितियाँ है। जिनमें निम्न दो मुद्राएँ हिन्दू एवं बौद्ध परम्परा में समान रूप से स्वीकार्य है। इनमें भी प्रथम नमस्कार मुद्रा हिन्दू परम्परा में तथा द्वितीय नमस्कार मुद्रा बौद्ध परंपरा में अधिक प्रचलित है।

प्रथम प्रकार

यह मुद्रा श्रद्धा और अभिवादन की सूचक है।

दोनों हथेलियों को ललाट के आगे मिलाकर अंगुलियों को इस तरह ऊपर उठायें कि अंगुलियों के अग्रभाग एक-दूसरे से स्पर्शित एवं हल्के से झुके हुए रह सकें।[16]

यह नमस्कार मुद्रा का प्रथम प्रकार है।

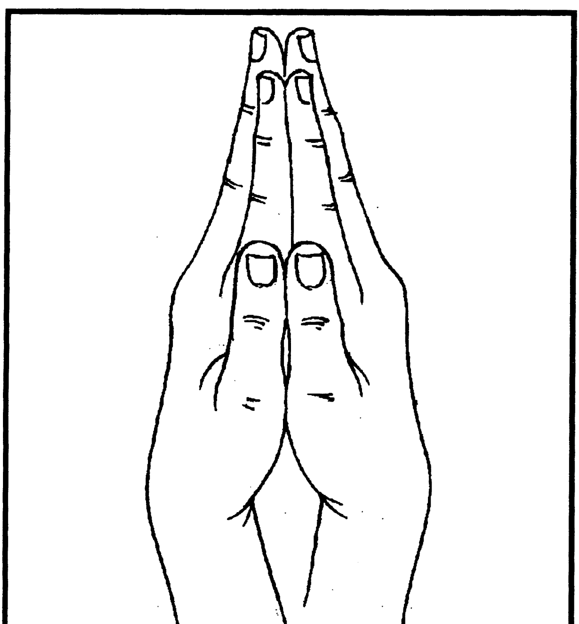

नमस्कार मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आंते, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली आदि।

द्वितीय प्रकार

यह मुद्रा श्रद्धा, अभिवादन अथवा किसी इच्छा पूर्ति के बाद धन्यवाद देने की सूचक है। यह मुद्रा जापानी और चीनी बौद्ध परंपरा में भी धारण की जाती है। इस मुद्रा के द्वारा अवलोकितेश्वर का चतुर्भुजा रूप दिखाया जाता है जो अपने हाथ में इच्छापूरक रत्न (चिंतामणी) को धारण करता है।

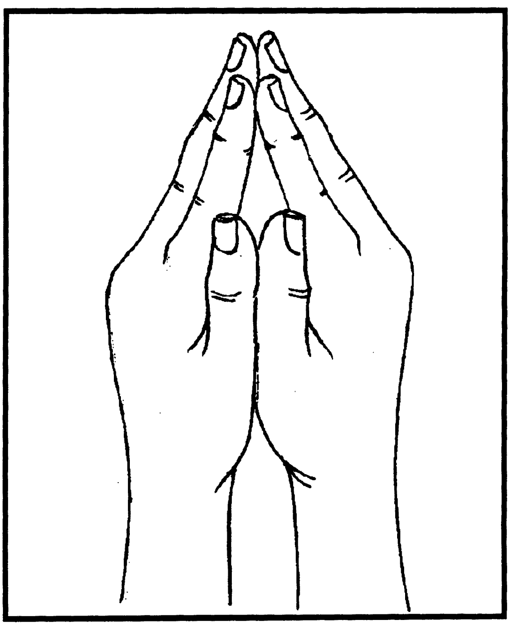

नमस्कार मुद्रा-2

विधि

दोनों हथेलियों को मध्य भाग में समीपकर अंगुलियों को इस भाँति ऊपर उठायें कि सभी के अग्रभाग परस्पर योजित एवं हल्के से झुके हुए रहे तथा

हथेलियों के मध्य किसी वस्तु को रखा जा सके उतना पोलापन (रिक्त) रहें, तब नमस्कार मुद्रा का दूसरा प्रकार बनता है।[17]

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

14. नेत्र मुद्रा

हिन्दू एवं बौद्ध परम्परा में समान रूप से प्रचलित यह मुद्रा नेत्र युगल की सूचक है। यह मुद्रा आँखों के सामने धारण की जाती है। इस मुद्रा को द्विविध रूपों में किया जाता है जिसकी विधि निम्न है–

प्रथम प्रकार

प्रथम प्रकार में एक नेत्र दर्शाया जाता है।

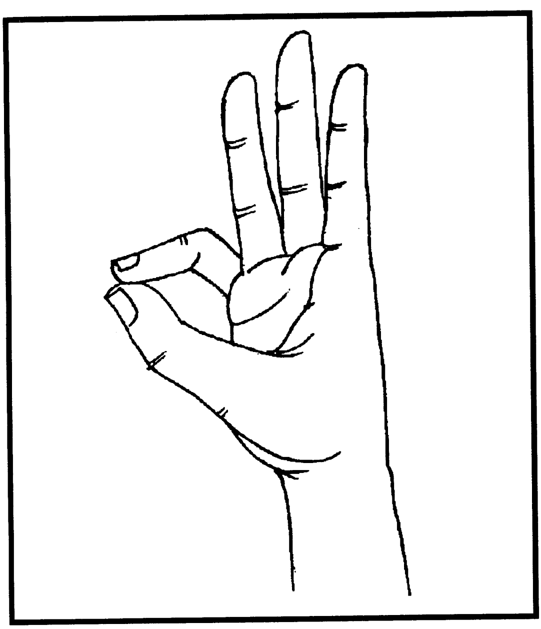

नेत्र मुद्रा-1

दायीं हथेली को आँखों के सामने रखते हुए अंगूठा और कनिष्ठिका के अग्रभाग को इस तरह मिलायें कि बीच में गोला बन सके तथा शेष अंगुलियों को ऊपर दिशा में फैलाने पर नेत्र मुद्रा बनती है।[18]

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली।

द्वितीय प्रकार

दूसरे प्रकार में दोनों नेत्र दर्शाये जाते हैं।

इस मुद्रा में दोनों हथेलियों को आँखों के सामने रखें, फिर अंगूठा और कनिष्ठिका के अग्रभागों को बीच में गोला बनाते हुए मिलायें, शेष अंगुलियों को ऊर्ध्व दिशा में फैलायें तथा दोनों हाथों से बनी नेत्राकृति को जोड़ देने पर द्वितीय नेत्र मुद्रा रचती है।[19]

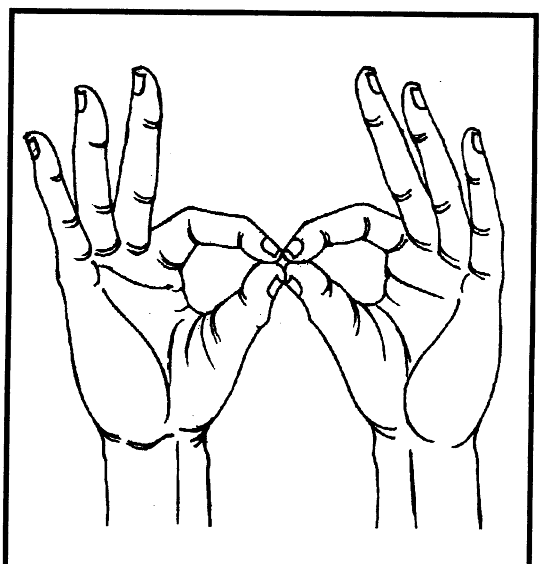

नेत्र मुद्रा-2

लाभ

चक्र– सहस्रार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, आँख, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

15. पद्म हस्त मुद्रा

यह मुद्रा हिन्दू एवं बौद्ध उभय परम्पराओं में समान है। इस मुद्रा में कमल को हाथ में ग्रहण किया हुआ दिखाते हैं अत: इसका नाम पद्म हस्त मुद्रा है।

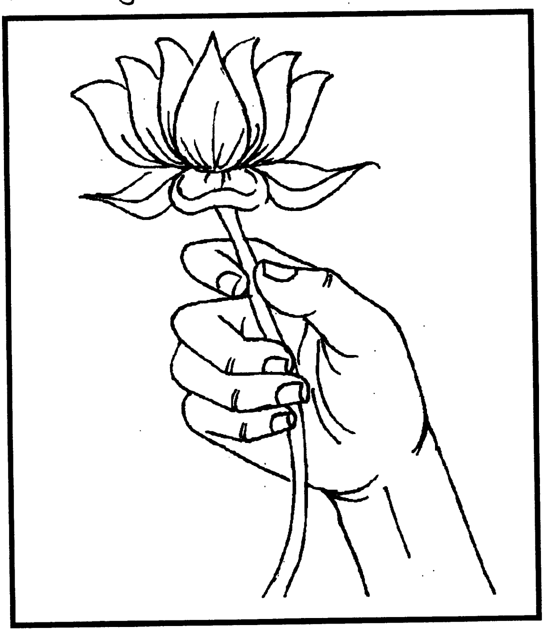

पद्म हस्त मुद्रा

विधि

डंठल सहित कमल को दिखाने के लिए हाथ की जैसी आकृति बन सकती है उसी रूप में अंगुलियों आदि को आकार देना पद्म हस्त मुद्रा है।[20]

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली।

16. सूची मुद्रा

यह मुद्रा हिन्दू एवं बौद्ध परंपरा में देवी-देवताओं के सम्बन्ध में धारण की जाती है। हिन्दू परम्परा में यह अधिक प्रचलित है। यह गजदन्त, उल्लंघन या अंतरिक्ष की सूचक है। सूची का अर्थ है सुई। इस मुद्रा चित्र में सुई जैसी आकृति का दर्शन होता है अतः सूची नाम सार्थक कहा जा सकता है।

प्रथम विधि

बायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख कर तर्जनी को नीचे की तरफ सीधा रखें, मध्यमा और अनामिका को हथेली में मोड़ें, कनिष्ठिका को हथेली के अंदर तक मोड़ें अर्थात अधिक मोड़ें तथा अंगूठा मध्यमा को स्पर्श करता हुआ रहने पर सूची मुद्रा बनती है।[21]

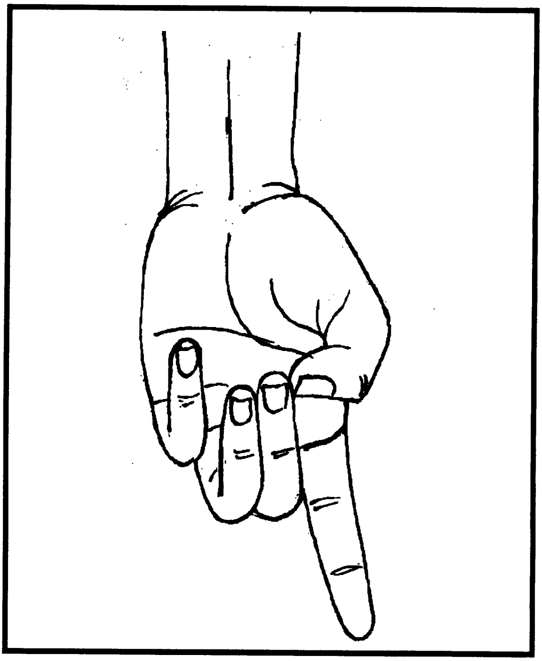

सूची मुद्रा-1

लाभ

चक्र– सहस्रार एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, आँख, मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर।

सूची मुद्रा के तीन प्रकारान्तर और भी हैं उनमें दूसरा प्रकार भी हिन्दू और बौद्ध परम्परा में प्रचलित है।

द्वितीय विधि

सभी अंगुलियों को खींचते हुए उनके अग्रभागों का परस्पर में स्पर्श करवाना द्वितीय सूची मुद्रा है।[22]

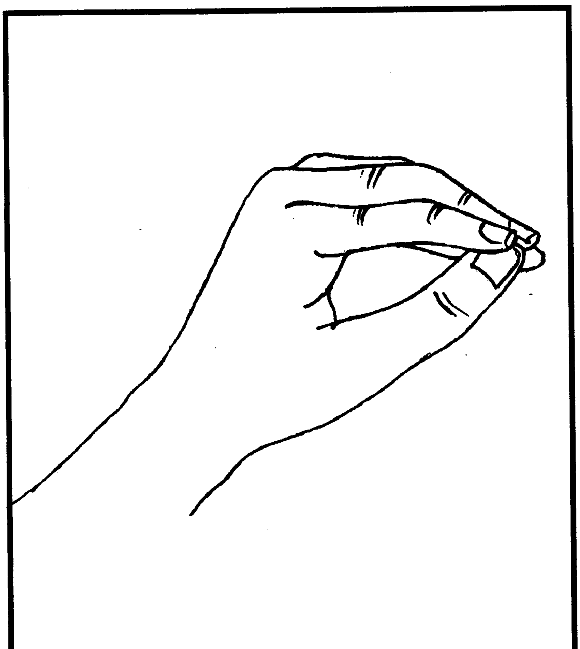

सूची मुद्रा-2

लाभ

चक्र– अनाहत, मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद, तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्तसंचार प्रणाली, नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क।

तृतीय विधि

सूची मुद्रा का तीसरा प्रकार नाटक आदि में दिखाया जाता है। यह मुद्रा धमकी, आश्चर्य एवं कुम्हार चक्र की सूचक है।

इस मुद्रा में बायीं हथेली को सामने की तरफ करके तर्जनी अंगुली और अंगूठे को उर्ध्व प्रसरित तथा शेष अंगुलियों को हथेली में मोड़ते हैं।[23]

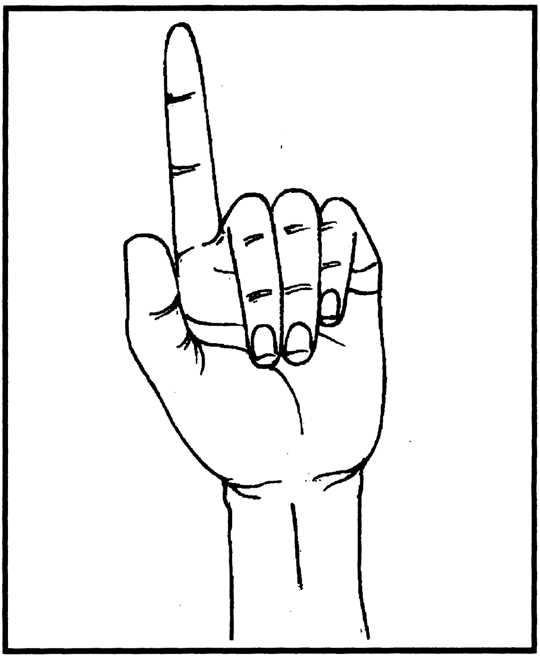

सूची मुद्रा-3

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** जल, अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचार प्रणाली।

चतुर्थ विधि

सूची मुद्रा का अन्तिम प्रकार जापानी बौद्ध परम्परा से सम्बन्धित है। इस मुद्रा में दोनों हथेलियों को सटाकर अंगूठा, तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को बाहर की तरफ अन्तर्ग्रथित तथा मध्यमाओं को ऊर्ध्व मुखरित कर आपस में दबाव डालते हुए रखते हैं।[24]

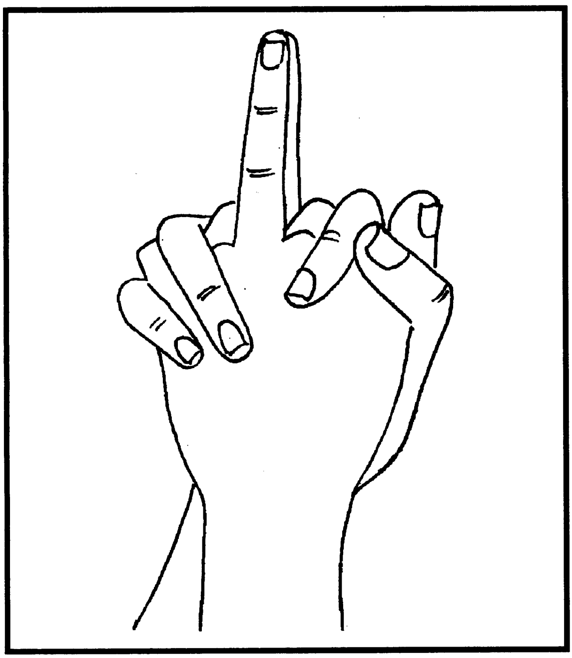

सूची मुद्रा-4

लाभ

चक्र— आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**— आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**— पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र**— दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**— मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

17. लोलहस्त मुद्रा

लोल शब्द हिलता-डोलता, चंचल, परिवर्तनशील आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। इस मुद्रा में हिलते हुए हाथ को दर्शाया जाता है इसलिए इस मुद्रा का नाम लोलहस्त है।

यह मुद्रा हिन्दू और बौद्ध दोनों परम्पराओं में समान रूप से मिलती है। यह मुद्रा उन देवी-देवताओं के लिए धारण की जाती है जिनका कोई चिह्न नहीं है और जो निम्न स्तर के हैं।

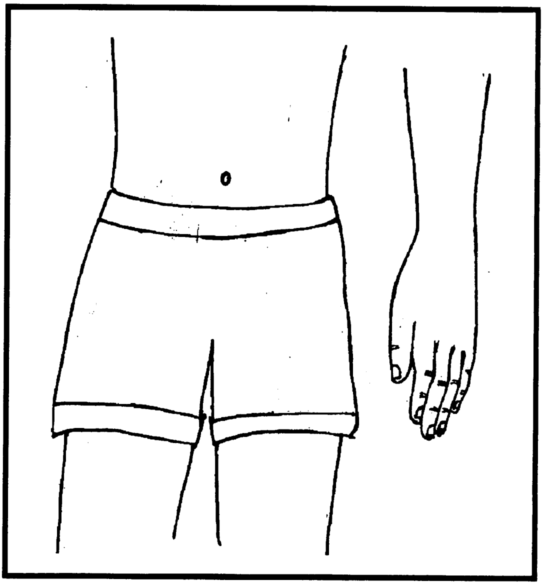

लोलहस्त मुद्रा

विधि

दायें हाथ को जंघा के पार्श्व भाग में नीचे की ओर लटकाते हुए हथेली एवं अंगुलियों को खुल्ला छोड़ देना लोलहस्त मुद्रा है।[25]

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र।

18. सांजलि मुद्रा

सांजलि अर्थात अंजलि के साथ। जिस मुद्रा में अंजलि के साथ कुछ धारण किया जाता है अथवा अंजलि के रिक्त स्थान में कोई वस्तु रखी जाती है उस तरह की हस्त मुद्रा को सांजलि मुद्रा कहते हैं।

यह मुद्रा हिन्दू एवं बौद्ध दोनों में प्रयुक्त होती है तथा अंजलि मुद्रा से सम्बन्धित है।

इसमें दोनों हाथों में प्रतिबिंब की भाँति मुद्रा बनती है।

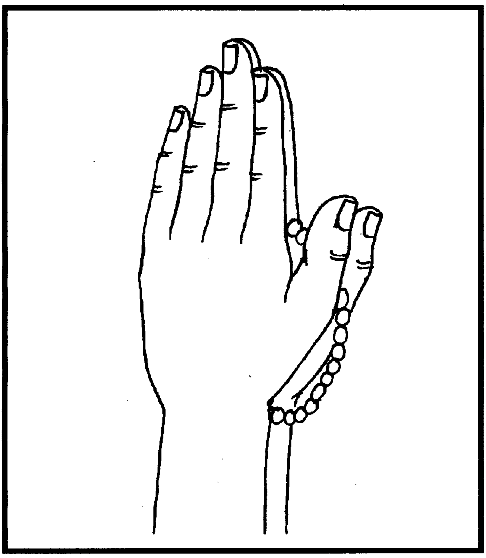

सांजलि मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को जोड़कर अंगुलियों को ऊर्ध्व दिशा में फैलायें एवं हल्की सी झुकायें, फिर हथेलियों के मध्य पोले भाग में उपहार या किसी वस्तु को रखें, फिर अंगुलियों के अग्रभाग को ठुड्डी के स्तर पर टिकाने से सांजलि मुद्रा बनती है।

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, ऊपरी मस्तिष्क, आँख।

19. स्वकुचग्रह मुद्रा

कुच का अर्थ है– स्तन, हृदय, अनार आदि।[27] यहाँ हृदय अर्थ अभीष्ट है। तदनुसार स्वयं के हृदय के आगे हाथ रखकर जो मुद्रा बनायी जाती है उसे स्वकुचग्रह मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा में दायें हाथ को दिल के ऊपर रखा जाता है अत: इस मुद्रा का स्वकुचग्रह नाम सार्थक है।

यह मुद्रा हिन्दू और बौद्ध दोनों परम्पराओं में प्रचलित है।

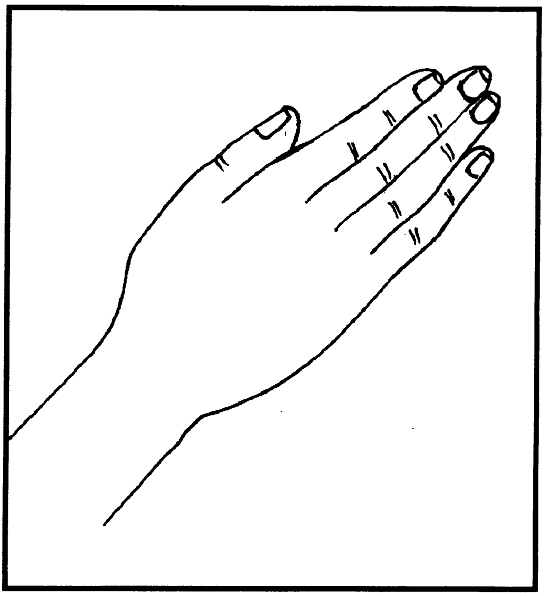

स्वकुचग्रह मुद्रा

विधि

दायीं हथेली को मध्य भाग की तरफ दिल के ऊपर रखना स्वकुचग्रह मुद्रा है।[28]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** वायु एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें नाक, कान, गला, मुंह एवं स्वर यंत्र।

20. स्वस्तिक मुद्रा

हिन्दू और बौद्ध परम्परा में स्वस्तिक मुद्रा के तीन प्रकारान्तर देवताओं के द्वारा अथवा उनके लिए धारण किये जाते हैं। सभी प्रकार सूर्य या नग्स् के सूचक हैं। सामान्य विधि इस प्रकार है-

प्रथम प्रकार

स्वस्तिक मुद्रा के प्रथम प्रकार में दोनों हाथ सम्मिलित होकर अंगुलियाँ लगभग 30^0 पर एक-दूसरे से परस्पर मिली हुई रहती हैं।[29]

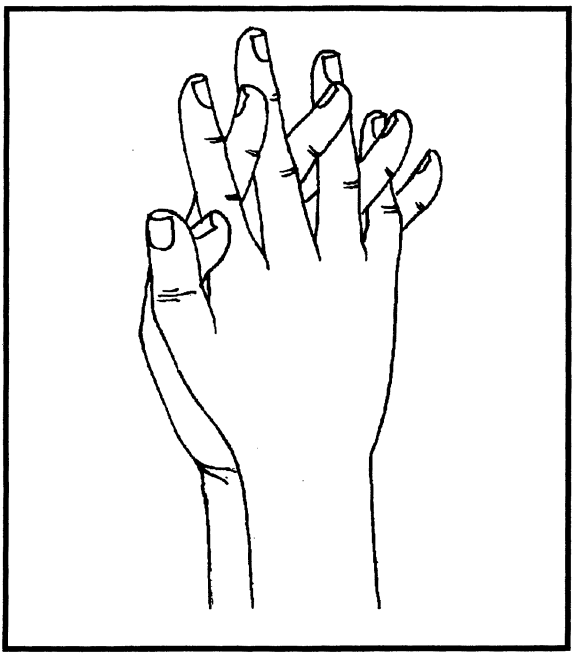

स्वस्तिक मुद्रा-1

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, आज्ञा एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** जल, आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, दर्शन एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र।

द्वितीय प्रकार

स्वस्तिक मुद्रा के दूसरे प्रकार में हथेली एवं अंगुलियाँ मध्यभाग की तरफ फैली हुई तथा दोनों हाथ कलाई पर Cross करते हुए रहते हैं।[30]

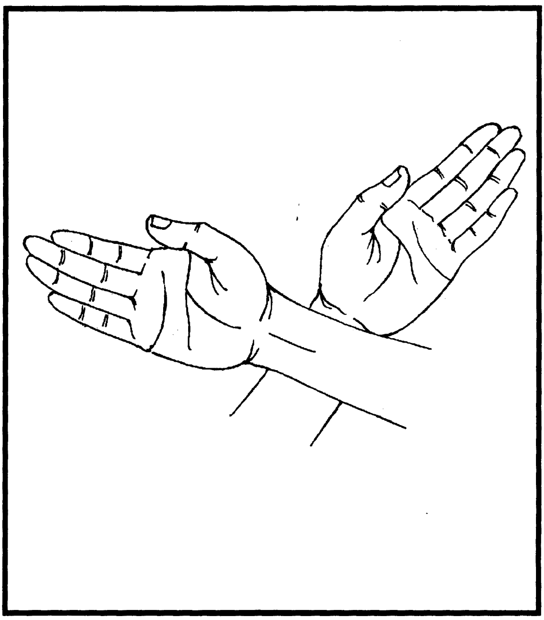

स्वस्तिक मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

तृतीय प्रकार

स्वस्तिक मुद्रा के तीसरे प्रकार में दायीं हथेली एवं अंगुलियाँ मध्यभाग की तरफ रहती है तथा बायीं हथेली ऊर्ध्वाभिमुख, अंगुलियाँ अर्ध चन्द्र के समान

हल्की सी मुड़ी हुई और अंगूठा अंगुलियों से 90^0 पर हल्का सा मुड़ा हुआ रहता है।[31]

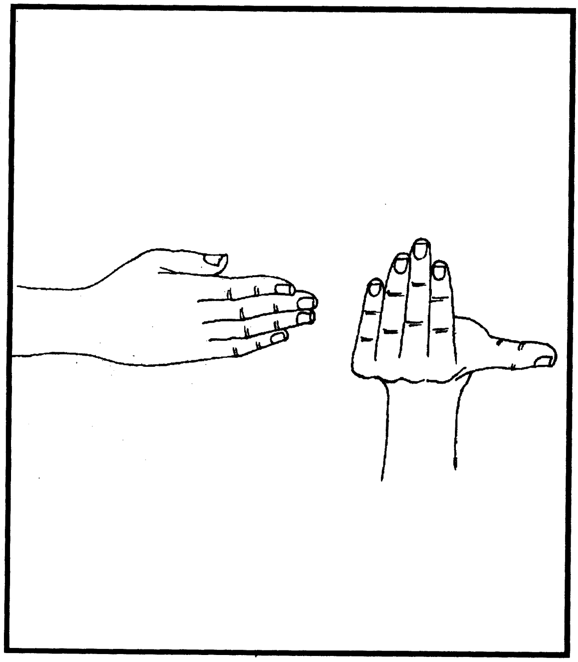

स्वस्तिक मुद्रा-3

लाभ

चक्र– विशुद्धि, अनाहत एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व**– वायु एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि**– थायरॉइड, पेराथायरॉइड, थायमस एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– विशुद्धि, आनंद एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

21 तर्जनी मुद्रा

अंगूठे की समीपवर्ती अंगुली तर्जनी कहलाती है। मुद्रा योग की परम्परा में तर्जनी मुद्रा के तीन प्रकार प्राप्त होते हैं उनमें से एक बौद्ध परम्परा में एवं दो

प्रकार हिन्दू और बौद्ध उभय परम्पराओं में प्रचलित हैं। दोनों मुद्राओं का सामान्य वर्णन निम्न है–

प्रथम प्रकार

तर्जनी मुद्रा के अनेक नाम हैं। भारत में इसे तर्जनी, तर्जनी पाष, पाषतर्जनी मुद्रा, जापान में साइ-फुकु-शो-म-इन मुद्रा और तिब्बत में ख्रो-बोहि-स्डिग्स्-म्डजुब-फ्याग रम्या मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा चेतावनी, धमकी एवं बुराईयों के निवारण की सूचक है।

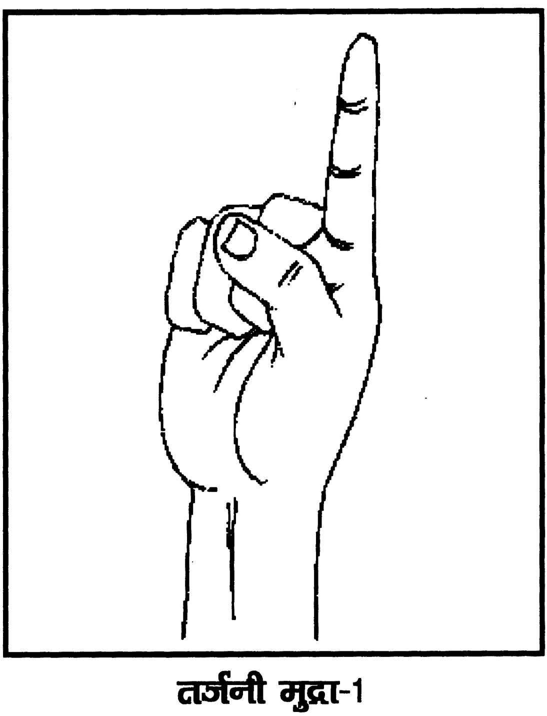

तर्जनी मुद्रा-1

विधि

बायीं हथेली को स्वयं की तरफ करते हुए हल्की सी मध्यभाग की तरफ घुमायें, तर्जनी को सीधी रखें, शेष अंगुलियों को हथेली में मोड़ें तथा अंगूठे का प्रथम पोर तर्जनी के द्वितीय पोर को स्पर्श करता हुआ रहने पर तर्जनी मुद्रा का प्रथम प्रकार बनता है।[32]

लोक व्यवहार में तर्जनी अंगुली का उपयोग किसी को दर्शाने या सूचित करने के लिए किया जाता है। निम्न मुद्रा चित्र में कथित भाव बिल्कुल स्पष्ट हो रहे हैं।

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, यकृत, तिल्ली, आँतें पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान।

द्वितीय प्रकार

तर्जनी मुद्रा के दूसरे प्रकार में बायीं हथेली आगे की तरफ, तर्जनी अंगुली भूमि से समानान्तर सीधी फैली हुई, तीनों अंगुलियाँ हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठे का प्रथम पोर तर्जनी के द्वितीय पोर को स्पर्श किया हुआ रहता है।

यह मुद्रा कंधों के नीचे धारण की जाती है।

इन दोनों प्रकारों में थोड़ा सा ही अन्तर है।

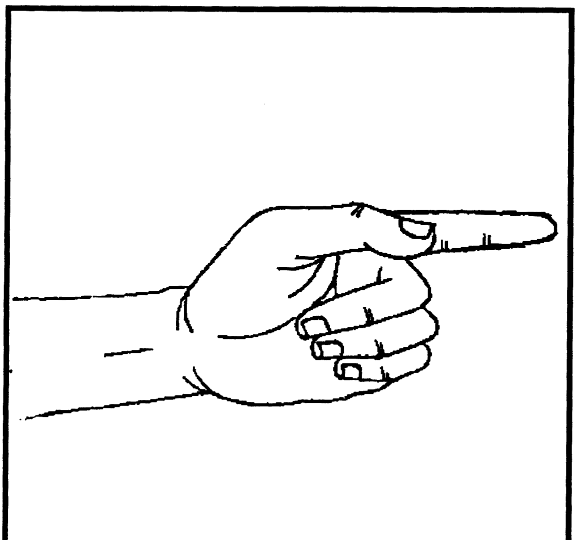

तर्जनी मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, पाचन तंत्र एवं नाड़ी तंत्र।

22. त्रिपिटक मुद्रा

भगवान बुद्ध के उपदेशों का बड़ा संग्रह जो उनके निर्वाण के उपरान्त उनके शिष्यों और अनुयायियों के द्वारा समय-समय पर किया गया। जिसे बौद्ध लोग अपना प्रधान धर्मग्रन्थ मानते हैं, वह त्रिपिटक कहलाता है।

यह ग्रन्थ तीन भागों में है- 1. सूत्र पिटक 2. विनय पिटक और 3. अभिधर्म पिटक।

इस मुद्रा के द्वारा त्रिपिटक जैसे महान् ग्रन्थों को जीवन में धारण करने का संदेश दिया जाता है।

हिन्दू और बौद्ध परम्परा में त्रिपिटक मुद्रा के दो प्रकार प्रसिद्ध हैं।

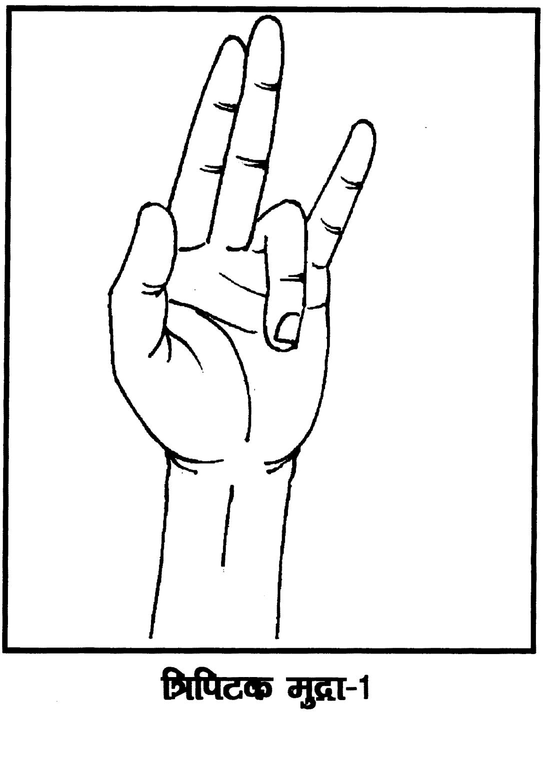

त्रिपिटक मुद्रा-1

प्रथम प्रकार

बायें हाथ को कंधे की सीध में आगे की ओर बढ़ाते हुए हथेली को ऊर्ध्वमुख करें। फिर अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका को ऊपर दिशा में उठायें तथा अनामिका को हथेली तरफ मोड़ने पर प्रथम त्रिपिटक मुद्रा बनती है।

उक्त मुद्रा भगवान विष्णु एवं भगवान शिव के द्वारा विभिन्न अस्त्रों को धारण करते समय की जाती है।[35]

लाभ

चक्र– सहस्रार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व**– आकाश एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि**– पिनियल एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– ज्योति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– ऊपरी मस्तिष्क, आँख, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

द्वितीय प्रकार

इस मुद्रा का दूसरा नाम त्रिपताका मुद्रा है।

प्रस्तुत मुद्रा में तीन अंगुलियाँ सीधी रहती है जो तीन पिटकों का सूचन करती है। यह मुद्रा कटि सम नृत्य में परमश्व के द्वारा की जाती है।

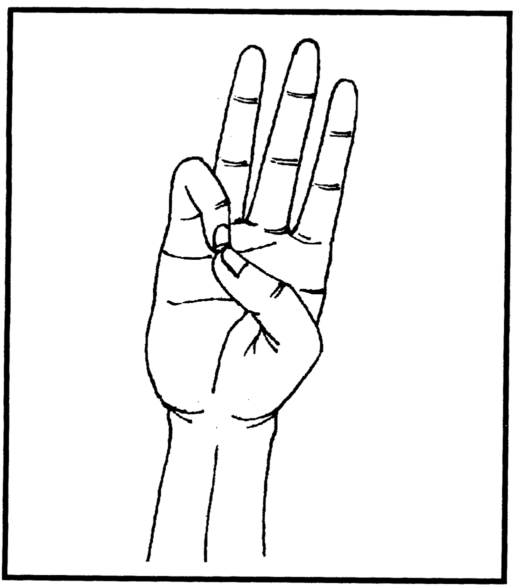

त्रिपिटक मुद्रा-2

विधि

दायीं हथेली को सामने की तरफ करते हुए, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को ऊपर उठायें तथा अंगूठा और कनिष्ठिका के अग्रभागों को मिलाने पर द्वितीय त्रिपिटक मुद्रा बनती है।[36]

लाभ

चक्र– अनाहत एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र, स्वर तंत्र, नाक, कान, गला, मुंह।

23. उरूसंस्थित मुद्रा

उरू अर्थात जांघ। इस मुद्रा में जांघ को सम स्थिति में रखा जाता है अत: इसका नाम उरूसंस्थित मुद्रा है।

यह असंयुक्त मुद्रा मुख्य रूप से हिन्दू परम्परा में प्रचलित है।

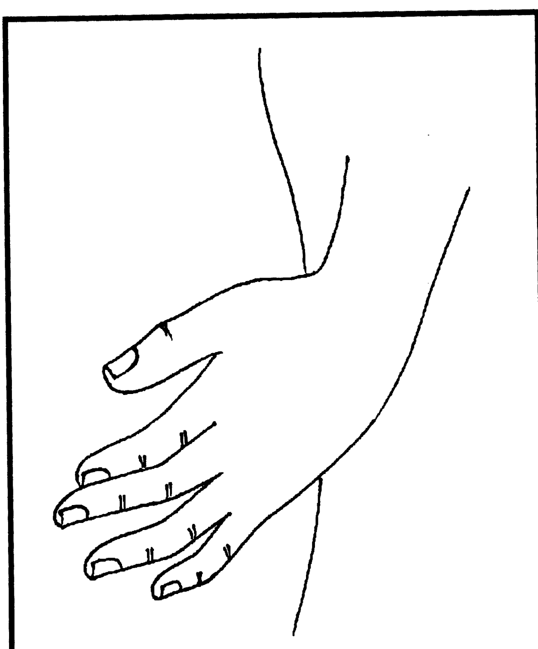

उरूसंस्थित मुद्रा

विधि

बायें हाथ को पिंडली अर्थात जंघा पर आरामदायक स्थिति में रखना उरूसंस्थित मुद्रा है।[37]

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल, अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन , एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य केन्द्र, तैजस केन्द्र एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाक, कान, गला, मुंह एवं स्वर यंत्र।

24. उत्तराबोधि मुद्रा

शब्द स्वरूप के अनुसार यह मुद्रा भगवान बुद्ध के बोधि प्राप्ति के बाद के जीवन को दर्शाती है।

मुद्रा स्वरूप के अनुसार यह मुद्रा मोक्ष अथवा निपुणता की सूचक हैं

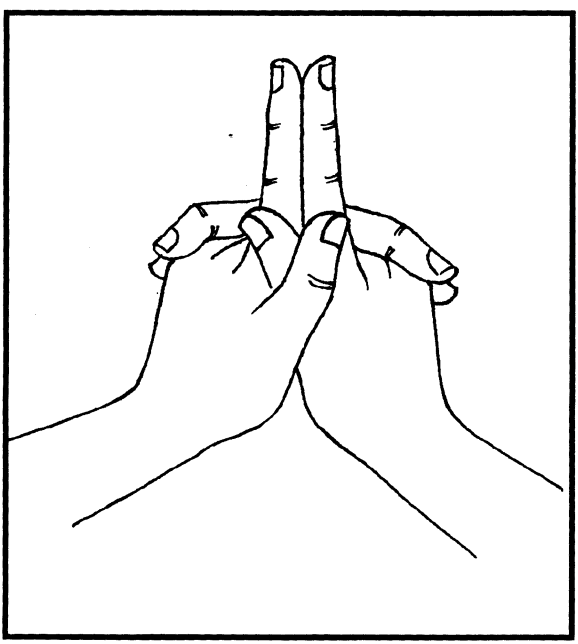

उत्तराबोधि मुद्रा

विधि

इस मुद्रा में दोनों हथेलियों को आमने-सामने कर तर्जनीयों को एक-दूसरे से स्पर्शित करते हुए सीधा रखें तथा शेष अंगुलियों एवं अंगूठों को बाहर की तरफ अन्तर्ग्रथित करने पर उत्तराबोधि मुद्रा बनती है।[38]

लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुंह, स्वर यंत्र, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क।

25. वंदन मुद्रा

यह मुद्रा हिन्दू एवं बौद्ध उभय परम्पराओं में प्रचलित है। इस मुद्रा को अमूल्य वस्तु एवं सद्विचारों से युक्त होने की सूचक माना गया है।

इस मुद्रा का चित्र इस तरह का दिखाई देता है कि वह किसी भी वस्तु को धारण कर सकती है।

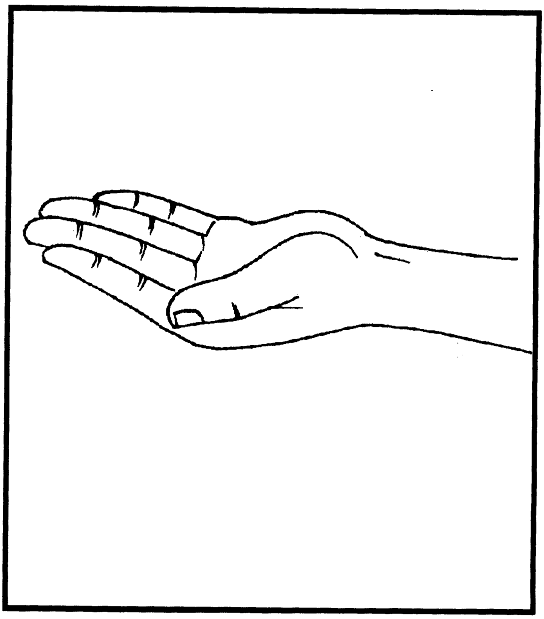

वंदन मुद्रा

विधि

इस मुद्रा में बायीं हथेली ऊर्ध्वाभिमुख, अंगुलियाँ एवं अंगूठा फैला हुआ, हल्का सा मुड़ा हुआ और मध्यभाग से दूर रहता है।[39]

लाभ

चक्र— मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**— अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**— एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र**— तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**— यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ीतंत्र, पाचन तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं।

26. वरद मुद्रा

शब्द रचना के अनुसार वरद का अर्थ है वर देने वाला, अभीष्टदाता, कल्याणकर आदि। यह मुद्रा वर देने एवं किसी मन्नत के पूर्ण होने की सूचक है।

भारत में इस मुद्रा को दान मुद्रा, प्रसाद मुद्रा, वर मुद्रा और चीन में शिह्-यान्-यिन् मुद्रा, जापान में सोगन्-इन् मुद्रा कहते हैं।

यह मुद्रा हिन्दू और बौद्ध परम्परा में समान रूप से उग्र देवी-देवताओं के द्वारा अपने अनुयायियों के लिए धारण की जाती है।

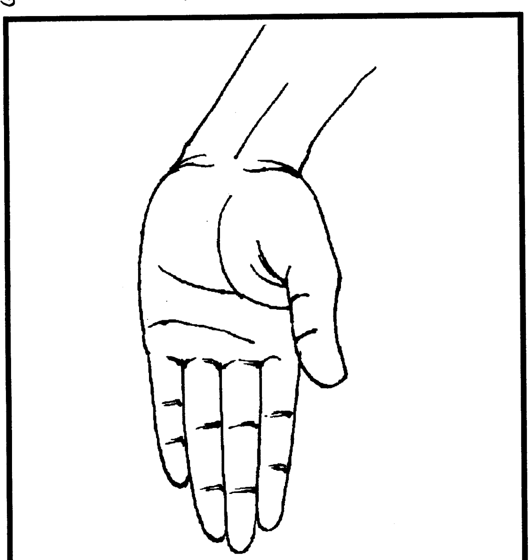

वरद मुद्रा

विधि

बायीं हथेली को आगे की तरफ करते हुए अंगुलियों एवं अंगूठे को नीचे की ओर प्रसरित करना वरद मुद्रा है।[40]

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र।

27. कूर्म मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा हिन्दू एवं बौद्ध दोनों परम्पराओं में भक्त और धर्म गुरूओं के द्वारा धारण की जाती है।

यह जिन्दगी के श्वासों के नियंत्रण की सूचक है।

यह मुद्रा एक हाथ से की जाती है और कटक मुद्रा के समान है।

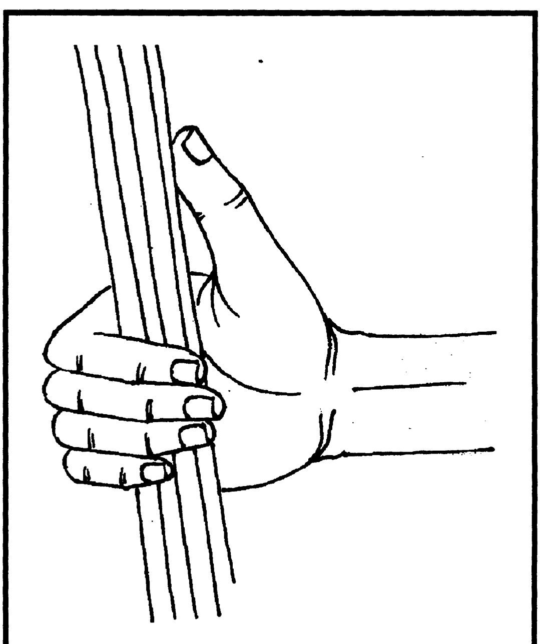

कूर्म मुद्रा

विधि

दायीं हथेली में फूल की डंडियों को पकड़े हुए रखना कूर्म मुद्रा है।[41]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

हिन्दू एवं बौद्ध दोनों ही परम्पराओं का मुख्य ध्येय आन्तरिक शुद्ध अवस्था की प्राप्ति है। दोनों में ही देवी-देवताओं एवं महापुरुषों को आदर्श मानकर उनकी पूजा की जाती है। पूजोपचार में उपयोगी इन मुद्राओं का स्वरूप वर्णन उच्च आदर्शों को हमारे आचरण में लाने हेतु सहयोगी बने तथा हमें आदर्श स्वरूप तक पहुचाएँ इसी में इन मुद्राओं के साधना की सार्थकता है।

सन्दर्भ-सूची

1. *हिन्दी शब्द सागर, भा.1, पृ. 279*
2. *(क) EDS पृ. 111*
   (ख) MJS पृ. 1
3. *MJS पृ. 4*
4. *(क) AKG पृ. 20*
   (ख) GDE पृ. 140
5. *(क) ERG II पृ. 25*
   (ख) MJS पृ. 10
   (ग) RSG पृ. 63
6. *MJS पृ. 11*
7. *(क) AKG पृ. 20*
   (ख) BCO पृ. 20
   (ग) RSG पृ. 3
8. *BBh पृ. 189*
9. *MGS पृ. 35*

10. (क) *ERG II* पृ. 25
    (ख) *MJS* पृ. 69
    (ग) *RSG* पृ. 3
11. (क) *AKG* पृ. 20
    (ख) *BBh* पृ. 193
    (ग) *BCO* पृ. 154
    (घ) *MJS* पृ. 68
12. हिन्दी शब्द सागर, भा. 2, पृ. 746
13. (क) *HKS* पृ. 272
    (ख) *RSG* पृ. 3
    (ग) *TJR* पृ. 14
14. *TJR* पृ. 15
15. (क) *ACG* पृ. 29
    (ख) *MJS* पृ. 92
16. *MJS* पृ. 98
17. (क) *AKG* पृ. 22
    (ख) *BCO* पृ. 14
    (ग) *BBh* पृ. 214
    (घ) *ERJ* पृ. 7
    (च) *GDE* पृ. 393
    (छ) *RSJ* पृ. 3
18. *MJS* पृ. 102
19. *MJS* पृ. 102
20. *MJS* पृ. 105
21. (क) *A. C. G. Plate XIII-A*
    (ख) *BBh* पृ. 197

(ग) *HKS* पृ. 271
(घ) *MJS* पृ. 135
(ङ) *RSJ* पृ. 3
(च) *TGR* पृ. 14

22. *BBh* पृ. 197
23. (क) *ACG* पृ. 32
    (ख) *KVA* पृ. 135
24. (क) *GDE* पृ. 69
    (ख) *LCS* पृ. 86
25. *MJS* पृ. 82
26. *MJS* पृ. 123
27. बृहद् हिन्दी कोशं, पृ. 292
28. *MJS* पृ. 139
29. *MJS* पृ. 139
30. *MJS* पृ. 139
31. *TGR* पृ. 260
32. (क) *AKG* पृ. 22
    (ख) *ERJ II* पृ. 22
    (ग) *HKS* पृ. 271
    (घ) *MJS* पृ. 142
    (ङ) *ASG* पृ. 3
    (च) *TGR* पृ. 15
33. *BCO* पृ. 218
34. हिन्दी शब्द सागर, भा. 4, पृ. 2160
35. *MJS* पृ. 145
36. *BBh* पृ. 147
37. *MJS* पृ. 149

38. (क) *AKG* पृ. 22

(ख) *ERJ* पृ. 9

(ग) *GDE* पृ. 310

(घ) *RSG* पृ. 4

39. *PBA* पृ. 492

40. (क) *AKG* पृ. 22

(ख) *BCO* पृ. 218

(ग) *BBH* पृ. 198

(घ) *ERJ* पृ. 6

(ङ) *HKS* पृ. 271

(च) *RSG* पृ. 4

(छ) *TGR* पृ. 14

41. (क) *HZI* पृ. 319

(ख) *MJS* पृ. 771

●

अध्याय-7

उपसंहार

भौतिक एवं आध्यात्मिक चिकित्सा में उपयोगी मुद्राएँ

प्राणिक हीलिंग विशेषज्ञ के.के.जायसवाल एवं एक्युप्रेशर चिकित्सज्ञ शरद कुमार जायसवाल, वाराणसी के अनुसार कौनसा रोग किस मुद्रा से ठीक हो सकता है? इससे सम्बन्धित हिन्दू नाट्य मुद्राओं का एक चार्ट प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देना जरूरी है कि रोगों से छुटकारा पाने हेतु जिन मुद्राओं का सूचन कर रहे हैं वे मुद्राएँ उन रोगों की चिकित्सा में मुख्य सहयोगी हैं किन्तु मनुष्यों की शारीरिक एवं मानसिक प्रकृति भिन्न-भिन्न होने से कई बार अन्य मुद्राओं का प्रयोग करना भी आवश्यक हो जाता है अतः मुद्रा विशेषज्ञों से जानकारी प्राप्त करने के पश्चात ही मुद्राओं से उपचार करना चाहिए।

- किसी भी मुद्रा को निरन्तर कुछ दिनों तक करने पर उसका प्रभाव पड़ता है।
- मुद्रा का प्रयोग सही विधि एवं विश्वास पूर्वक करना अनिवार्य है।
- नित्य आराधना या विशिष्ट साधना के दौरान यदि सम्यक विधि से मुद्रा का प्रयोग किया जाए तो भावधारा निर्मल होने से वे शीघ्र लाभकारी होती हैं।

शारीरिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

अनिद्रा– गजहस्त मुद्रा, हंस मुद्रा, मुकुल मुद्रा, सप्तजिह्वा मुद्रा, नमस्कार मुद्रा-2 ।

आफरा– धेनु मुद्रा-2, हरिण मुद्रा, कूर्पर मुद्रा, निद्रातहस्त मुद्रा, सुमुख मुद्रा।

आलस्य– गदा मुद्रा, कटिग मुद्रा, उमरूक मुद्रा, प्रलम्ब मुद्रा, अभिषेक मुद्रा, पद्महस्त मुद्रा।

आँखों के रोग– गजहस्त मुद्रा, कपित्थ मुद्रा, मुकुल मुद्रा, पद्म मुद्रा, सम्पुट मुद्रा, सिंहक्रान्त मुद्रा, नेत्र मुद्रा।

आँतों के रोग (अल्सर, आँतों में सूजन, आंतों में रूकावट, नाभि खिसकना, आँतों में गांठ (Tumour), हर्निया, एपेन्डिक्स, टाइफाइड, दस्त, कब्ज आदि)- हंस मुद्रा, धेनु मुद्रा

आमाशय सम्बन्धी विकार (गैस, अल्सर, पेट में गांठ, पेट में कीड़े, भूख कम-ज्यादा लगना आदि)– कटिग मुद्रा, निद्रातहस्त मुद्रा, सप्तजिह्वा मुद्रा।

अण्डाशय (Testes) (हस्त दोष, स्वप्न दोष, वीर्य विकार आदि)– हंस मुद्रा, दंड मुद्रा, कट्यावलम्बित मुद्रा।

अपच– अंचित मुद्रा, हरिण मुद्रा, योनि मुद्रा, मृग मुद्रा-1, लिंग मुद्रा, स्वकुचग्रह मुद्रा।

अपस्मार मिरगी (Epilepsy Fits)– हंस मुद्रा, हरिण मुद्रा, विष्वक्सेन मुद्रा, डमरूक मुद्रा, मत्स्य मुद्रा।

अकड़न (कपकपी)– गजहस्त मुद्रा, कूर्पर मुद्रा-1, त्रिशूल मुद्रा, ग्रथित मुद्रा।

अस्थितंत्र सम्बन्धी रोग– गदा मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, अभिषेक मुद्रा, करन मुद्रा।

उल्टी– गदा मुद्रा, हरिण मुद्रा, कटिग मुद्रा, कर्पूर मुद्रा-1, बुद्धाश्रमण मुद्रा।

उच्च रक्तचाप (High B.P.)– कटिग मुद्रा, सुमुख मुद्रा, विस्तृत मुद्रा, कूर्म मुद्रा, स्वकुचग्रह मुद्रा।

ऊर्जा की कमी– दंड मुद्रा, गजहस्त मुद्रा, चिन् मुद्रा, कश्यप मुद्रा, निद्रातहस्त मुद्रा, पद्म मुद्रा, विष्वक्सेन मुद्रा।

एसिडीटी– आवाहन मुद्रा, कश्यप मुद्रा, कूर्म मुद्रा, अर्धाञ्जली मुद्रा, करन मुद्रा।

एलर्जी– अर्चित मुद्रा, हरिण मुद्रा, कपित्थ मुद्रा, मुकुल मुद्रा, पद्म मुद्रा, व्याख्यान मुद्रा, वनमाला मुद्रा, नमस्कार मुद्रा।

एपेन्डिक्स– चतुरहस्त मुद्रा, मृग मुद्रा-1, विस्तृत मुद्रा, अर्धाञ्जली मुद्रा, वंदना मुद्रा।

एनिमिया (पांडुरोग)– कट्यावलम्बित मुद्रा, लिंग मुद्रा, शकट मुद्रा, मत्स्य मुद्रा, लोलहस्त मुद्रा।

कब्ज (Constipation)– गदा मुद्रा, प्रवर्तित मुद्रा, योनि मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, ग्रथित मुद्रा, सांजलि मुद्रा।

कफ– गदा मुद्रा, हस्त मुद्रा, विस्तृत मुद्रा, अभिषेक मुद्रा।

कमजोरी– पुष्पपुट मुद्रा, चर्म मुद्रा, ग्रथित मुद्रा, पद्महस्त मुद्रा, वरद मुद्रा।

कमर की तकलीफें (कमर दर्द, कमर के क्षेत्र में जकड़न, सायटिका, मनके का स्थानच्युत होना)– वज्रपताका मुद्रा, कापालि मुद्रा, शकट मुद्रा, पद्महस्त मुद्रा।

कान की समस्याएँ (कर्णनाद, कान में दर्द, बहरापन, कम सुनना, कान में पीड़ा आदि)– हंस मुद्रा, कपित्थ मुद्रा, मृग मुद्रा-1, अस्त्र मुद्रा।

कीडनी (गुर्दे) सम्बन्धी समस्याएँ (कीडनी में सूजन, कीडनी का काम न करना, कीडनी में पथरी, हाइड्रोनेफ्रोसिस, कीडनी का सिकुड़ना अथवा बढ़ना)– चतुर मुद्रा– 1, हंस मुद्रा, अवगुण्ठनी मुद्रा, कट्यावलम्बित मुद्रा, गदा मुद्रा।

कुष्ट रोग– अर्चित मुद्रा, गदा मुद्रा, अस्त्र मुद्रा, सुमुख मुद्रा, बुद्धाश्रमण मुद्रा।

कैन्सर– चतुरहस्त मुद्रा, योनि मुद्रा, वाराह मुद्रा, बुद्धाश्रमण मुद्रा, नमस्कार मुद्रा।

कोमा– हंस मुद्रा, वनमाला मुद्रा, इक्षुचाप मुद्रा, मत्स्य मुद्रा, मुद्गर मुद्रा।

कोलेस्ट्राल बढ़ना– मुकुल मुद्रा, व्याख्यान मुद्रा, गदा मुद्रा, वितत मुद्रा, व्यापकांजलि मुद्रा।

खाँसी– परशु मुद्रा, चर्म मुद्रा, कापाली मुद्रा, शकट मुद्रा, चपेटदान मुद्रा, स्वकुचग्रह मुद्रा।

खुजली– धेनु मुद्रा-1, लिंग मुद्रा, विस्तृत मुद्रा, स्वस्तिक मुद्रा-1, कूर्म मुद्रा।

गाउट (वात रोग)– व्याख्यान मुद्रा, गदा मुद्रा, व्यापकांजलि मुद्रा, ग्रथित मुद्रा।

गठिया– धेनु मुद्रा-2, सन्मुखोन्मुख मुद्रा, चपेटदान मुद्रा, लोलहस्त मुद्रा, स्वकुचग्रह मुद्रा।

गर्दन की समस्याएँ (Cervical Spondilities)– कटि मुद्रा, कापाली मुद्रा, पंचमुख मुद्रा, तर्जनी मुद्रा, उत्तराबोधि मुद्रा।

गले की समस्याएँ (गले में दर्द, गला खराब होना, टाँन्सिल)– द्विमुख मुद्रा, सिंहक्रान्त मुद्रा, चपेटदान मुद्रा, लोलहस्त मुद्रा, स्वस्तिक मुद्रा-1।

गर्भाशय सम्बन्धी समस्याएँ (प्रजनन समस्या, बांझपन, मासिक स्राव की अनियमितता, पेडु में दर्द, सूजन, गर्भाशय में गांठ (Tumour) ल्युकेरिया (प्रदर रोग) गर्भपात आदि)– गदा मुद्रा, कटि मुद्रा, षण्मुख मुद्रा, स्वस्तिक मुद्रा-3।

घबराहट– दुर्गा मुद्रा, सिंहक्रान्त मुद्रा, तर्जनी मुद्रा।

घुटनों की समस्या– गदा मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, काम मुद्रा।

चक्कर आना– अंचित मुद्रा, धेनु मुद्रा, पद्म मुद्रा, पताका मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, सूची मुद्रा-2,

चर्म रोग– धेनु मुद्रा-1, पुस्तक मुद्रा, अवगुण्ठनी मुद्रा, योनि मुद्रा, ग्रथित मुद्रा, करन मुद्रा, सांजलि मुद्रा।

छाती में दर्द– पुष्पाञ्जली मुद्रा, व्याख्यान मुद्रा, गदा मुद्रा, वनमाला मुद्रा, अभय मुद्रा, चपेटदान मुद्रा, कर्त्तरीहस्त मुद्रा, वंदना मुद्रा।

जड़ बुद्धि– डमरूक मुद्रा, पताका मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, ग्रथित मुद्रा।

जबड़े में दर्द– दुर्गा मुद्रा, सन्मुखोन्मुख मुद्रा, उत्तराबोधि मुद्रा।

जलोहर– कटि मुद्रा, पताका मुद्रा, उरूसंस्थित मुद्रा।

टी.बी (Tuber culosis) श्रीवत्स मुद्रा, वितत मुद्रा, व्यापकांजलि मुद्रा, अभिषेक मुद्रा, अर्धाञ्जली मुद्रा, नमस्कार मुद्रा, वंदना मुद्रा।

टॉन्सिलाइटिस– द्विमुख मुद्रा, अभय मुद्रा, लोलहस्त मुद्रा, तर्जनी मुद्रा।

टाइफाइड– प्रवर्तितहस्त मुद्रा, पुष्पाञ्जली मुद्रा, अवगुण्ठनी मुद्रा, विघ्न मुद्रा, धेनु मुद्रा-1, सांजलि मुद्रा।

डायबीटिस– धेनु मुद्रा-2, सर्पकार मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, अर्धाञ्जजली मुद्रा, उरूसंस्थित मुद्रा।

डायरिया (उल्टी-दस्त लगना)– चिन् मुद्रा, सप्तजिह्वा मुद्रा, वाराह मुद्रा, डमरूहस्त मुद्रा।

डीहाइड्रेशन (पानी की कमी)– दंड मुद्रा, धेनु मुद्रा, काम मुद्रा, त्रिमुख मुद्रा, अर्धचन्द्र मुद्रा, उरूसंस्थित मुद्रा।

तुतलाना– धेनु मुद्रा-2, मुष्टिक मुद्रा, सिंहक्रान्त मुद्रा, मयूर मुद्रा।

थकान– सर्पकार मुद्रा, दुर्गा मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, कूर्म मुद्रा।

थायरॉइड– कापाली मुद्रा, मयूर मुद्रा।

दाद (Ring worms)– प्रवर्तितहस्त मुद्रा, पुष्पाञ्जली मुद्रा, धेनु मुद्रा-2 ।

दाँतों की समस्याएँ (दातों में दर्द, दाँतों में पीब आना आदि)– द्विमुख मुद्रा ।

दुर्बलता– प्रवर्तित हस्त मुद्रा, गणपति मुद्रा, चतुर्मुख मुद्रा, मुद्गर मुद्रा, अहायवरद मुद्रा, पद्महस्त मुद्रा।

न्युमोनिया– धेनु मुद्रा-2, अर्चित मुद्रा, चिन् मुद्रा, सर्पकार मुद्रा, सिंहकर्ण मुद्रा, ज्वालिनी मुद्रा, यमपाश मुद्रा।

नकसीर– धेनु मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, वनमाला मुद्रा, सम्पुट मुद्रा, कर्त्तरीहस्त मुद्रा, सूची मुद्रा-2।

नाड़ी शुद्धि– सकलीकृति मुद्रा, इक्षुचाप मुद्रा, त्रिमुख मुद्रा, अहायवरद मुद्रा।

नाक बंद हो जाना– धेनु मुद्रा, गालिनी मुद्रा, पंचमुख मुद्रा, मुष्टिक मुद्रा, कटक मुद्रा, नेत्र मुद्रा-1 ।

निम्न रक्तचाप– अधोमुख मुद्रा, प्रलम्ब मुद्रा, अहायवरद मुद्रा, सूची मुद्रा-2 ।

नशीले पदार्थों का सेवन– सिंहकर्ण मुद्रा, ज्वालिनी मुद्रा, दुर्गा मुद्रा, अर्धचन्द्र मुद्रा।

नपुंसकता– धेनु मुद्रा-1, सिंहकर्ण मुद्रा, अवगुण्ठनी मुद्रा, ज्वालिनी मुद्रा, उरूसंस्थित मुद्रा।

पक्षाघात– गजहस्त मुद्रा, विघ्न मुद्रा, विष्वक्सेन मुद्रा, त्रिपिटक मुद्रा-1 ।

पाचन समस्या– ज्वालिनी मुद्रा, अधोमुखी मुद्रा, वराहक मुद्रा।

पित्ताशय सम्बन्धी समस्याएँ (पथरी, पित्ताशय क्षेत्र में दर्द, पित्ताशय की नली में गांठ (Billary Tumour) पीलिया आदि)– आवाहन मुद्रा, बिल्व मुद्रा।

पोलियो– अर्चित मुद्रा, चन्द्रकला मुद्रा, काम मुद्रा, वाराह मुद्रा, धेनु मुद्रा, कटक मुद्रा।

पेट में कृमि जन्तु होना– आवाहन मुद्रा, प्रलम्ब मुद्रा, कूर्म मुद्रा, डमरूहस्त मुद्रा।

प्लीहा सम्बन्धी समस्याएँ (प्लीहा का बढ़ना) ठंड के साथ बुखार, थकान, सुस्ती, कमजोरी, चिंता एवं शक की बीमारी)– ज्वालिनी मुद्रा, अधोमुखी मुद्रा, वराहक मुद्रा।

पाईल्स (मस्सा)– दंड मुद्रा, बिल्व मुद्रा, कापाली मुद्रा, अर्धचन्द्र मुद्रा, त्रिपिटक मुद्रा-1 ।

पार्किनसन्स रोग– चिन् मुद्रा, तत्त्व मुद्रा।

पित्त विकार– अंचित मुद्रा, हरिण मुद्रा, सर्पकार मुद्रा।

पाँव की समस्याएँ (पैरों में दर्द, ऐंठन, हाथ-पैर का पतला पड़ना (Muscleloss), सुन्नपन आदि)– चन्द्रकला मुद्रा, धेनु मुद्रा-1 ।

पीठ की समस्याएँ (रीढ़ की हड्डी में तकलीफ (Spine Problem), झुकी हुई पीठ आदि)– चन्द्रकला मुद्रा, डमरूक मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, चतुर्मुख मुद्रा, वरद मुद्रा।

फेफड़ों की समस्याएँ (ब्रांककाइटिस, अस्थमा, न्युमोनिया, फेफड़ों में फोड़ा या पस (Abscess), फेफड़ों में टी.बी.)– चिन् मुद्रा, हरिण मुद्रा, अंचित मुद्रा, सिंहकर्ण मुद्रा, वज्रपताका मुद्रा, गणपति मुद्रा, कर्त्तरीहस्त मुद्रा।

फोड़े-फुन्सी– आवाहन् मुद्रा, चन्द्रकला मुद्रा, विघ्न मुद्रा, वाराह मुद्रा, कूर्म मुद्रा।

बवासीर– चतुर मुद्रा-1, अर्चित मुद्रा, चन्द्रकला मुद्रा, वज्रपताका मुद्रा, डमरूहस्त मुद्रा, कटक मुद्रा।

बांझपन– चतुर मुद्रा, वन्दना मुद्रा, काम मुद्रा, षण्मुख मुद्रा, त्रिपिटक मुद्रा।

बालों की समस्याएँ (बाल झड़ना, बालों का सफेद होना, बालों का रूखापन आदि)– चतुरहस्त मुद्रा, बिल्व मुद्रा, वराहक मुद्रा।

बिस्तर गीला करना (नींद में पेशाब करना)– बिल्व मुद्रा, दुर्गा मुद्रा, लिंग मुद्रा, मयूर मुद्रा।

ब्लडप्रेशर– चतुर मुद्रा, इक्षुचाप मुद्रा, प्रलम्ब मुद्रा।

मस्क्युलर डीस्ट्रोफी (स्नायुतंत्र की बढ़ती निष्क्रियता)– तत्त्व मुद्रा, वन्दना मुद्रा, परशु मुद्रा, अभय मुद्रा, सन्मुखोन्मुख मुद्रा।

मस्तिष्क सम्बन्धी समस्याएँ (मस्तिष्क कैन्सर, सिरदर्द, कोमा, ब्रेन ट्यूमर आदि)– चतुरहस्त मुद्रा, चिन् मुद्रा, गालिनी मुद्रा, कटक मुद्रा।

मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याएँ (मासिक अनियमितता, अधिक मासिक स्राव आदि)– दंड मुद्रा, विस्मय मुद्रा, अर्धचन्द्र मुद्रा।

माइग्रेन (आधाशीशी)– आवाहन मुद्रा, चतुरहस्त मुद्रा, धेनु मुद्रा, तत्त्व मुद्रा, विस्मय वितर्क मुद्रा, सकलीकृति मुद्रा।

मूत्राशय सम्बन्धी समस्याएँ (मूत्र त्याग में अवरोध, मूत्र मार्ग में संक्रमण (Infection), मूत्राशय में पथरी या गांठ, मूत्राशय का बाहर लटकना (Urinary Bladder Prolapse)– दंड मुद्रा, धेन मुद्रा, षण्मुख मुद्रा, मयूर मुद्रा, त्रिपिटक मुद्रा-1, कूर्म मुद्रा।

यकृत (Liver) **की अस्वस्थता, यकृत में संक्रमण** (Hepatitis), **यकृत का बढ़ना (Hepatomegaly), यकृत में सूजन, यकृत में पित्त, उल्टी, मिचली, यकृत में गाँठ आदि**– चन्द्रकला मुद्रा, हरिणमुद्रा, अंचित मुद्रा, आवाहन मुद्रा, चन्द्रकला मुद्रा, चतुर मुद्रा।

रक्त विकार (रक्त कैन्सर, रक्त में आवश्यक तत्त्वों की कमी आदि)– गदा मुद्रा, चतुरहस्त मुद्रा, विस्मय मुद्रा-1, चक्र मुद्रा।

लकवा– दंड मुद्रा, वन्दना मुद्रा, चतुर्मुख मुद्रा, अर्धचन्द्र मुद्रा।

वायु विकार– हरिण मुद्रा, चिन् मुद्रा, अर्चित मुद्रा, मुकुल मुद्रा।

वजन बढ़ना– अर्चित मुद्रा, चतुर मुद्रा-1, दंड मुद्रा, वितत मुद्रा, डमरूहस्त मुद्रा, सांजलि मुद्रा।

स्नायुतंत्र की समस्याएँ (स्नायु तंत्र में रूकावट, स्नायुतंत्र में खिंचाव)– तत्त्व मुद्रा, मालिनी मुद्रा, मुष्टिक मुद्रा, सिंहक्रान्त मुद्रा।

सर्दी– विस्मय वितर्क मुद्रा, वनमाला मुद्रा, सम्पुट मुद्रा, चपेटदान मुद्रा।

सायनस– सकलीकृति मुद्रा, परशु मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, बुद्धाश्रमण मुद्रा।

सिर दर्द– गणपति मुद्रा, विष्वक्सेन मुद्रा, अभय मुद्रा, मत्स्य मुद्रा, कर्त्तरीहस्त मुद्रा।

स्मरण शक्ति की समस्या– सप्तजिह्वा मुद्रा, अस्त्र मुद्रा, पंचमुख मुद्रा, अर्धचन्द्र मुद्रा, नेत्र मुद्रा।

श्वास तंत्र सम्बन्धी समस्याएँ (श्वास फुलना, बैचेनी, घबराहट, दमा, श्वास लेने में तकलीफ आदि)— अंचित मुद्रा, अर्चित मुद्रा, विस्मय वितर्क मुद्रा, चक्र मुद्रा, काम मुद्रा, व्यापकांजलि मुद्रा।

स्वर यंत्र की समस्याएँ (आवाज का दबना, मोटा होना, हकलाना आदि)— मुष्टिक मुद्रा, सिंहक्रान्त मुद्रा, तर्जनी मुद्रा।

हृदय सम्बन्धी रोग— अंचित मुद्रा, अभय मुद्रा, कापाली मुद्रा, कटक मुद्रा।

हिचकी— परशु मुद्रा, चर्म मुद्रा, शकट मुद्रा, मयूर मुद्रा।

2. मानसिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

• क्रोध, पागलपन, अनियंत्रण, अहंकार, अकेलापन आदि—

अर्चित मुद्रा, चन्द्रकला मुद्रा, चतुर मुद्रा-1, गदा मुद्रा, कटिग मुद्रा, कूर्पर मुद्रा-1, प्रवर्तित हस्त मुद्रा, पुष्पपुट मुद्रा, वज्रपताका मुद्रा, अवगुण्ठनी मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, डमरूक मुद्रा, वितत मुद्रा, चतुर्मुखम् मुद्रा, प्रलम्ब मुद्रा, मुद्गर मुद्रा, अभिषेक मुद्रा, डमरूहस्त मुद्रा, करन मुद्रा, पद्महस्त मुद्रा, वरद मुद्रा।

• नशे की लत, भावात्मक अस्थिरता (Over confidence), भय, लालसा, अविश्वास—

दंड मुद्रा, धेनु मुद्रा, कटि मुद्रा, कट्यावलम्बित मुद्रा, पताका मुद्रा, पुष्पाञ्जली मुद्रा, सिंहकर्ण मुद्रा, वन्दना मुद्रा, विस्मय मद्रा-1, दुर्गा मुद्रा, बिल्व मुद्रा, लिंग मुद्रा, धेनु मुद्रा1, विस्तृत मुद्रा, षण्मुखम् मुद्रा, शकटम् मुद्रा, मत्स्य मुद्रा, अर्धचन्द्र मुद्रा, अर्धान्जली मुद्रा, लोलहस्त मुद्रा, स्वस्तिक मुद्रा-1, कूर्म मुद्रा।

• एकाग्रता की कमी, अविश्वास, अखुशहाल, लालच, स्वाभिमान की कमी—

अंचित मुद्रा, आवाहन मुद्रा, चन्द्रकला मुद्रा, चतुरहस्त मुद्रा, हरिण मुद्रा, कश्यप मुद्रा, निद्रातहस्त मुद्रा, सर्पकार मुद्रा, योनि मुद्रा, चक्र मुद्रा, ज्वालिनी मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, लिंग मुद्रा, अस्त्र मुद्रा, सुमुख मुद्रा, त्रिमुखम् मुद्रा,

अधोमुखम् मुद्रा, कूर्म मुद्रा, अहायवरद मुद्रा, बुद्धाश्रमण मुद्रा, नमस्कार मुद्रा-1।

• गाली देना, चिल्लाना, बेहोशी, अनुत्साह, निष्ठुरता, आत्म-सम्मान की कमी, प्रेम स्नेह की कमी–

अंचित मुद्रा, अर्चित मुद्रा, चिन् मुद्रा, गदा मुद्रा, कपित्थ मुद्रा, मुकुल मुद्रा, पद्म मुद्रा, व्याख्यान मुद्रा, मुदा मुद्रा, काम मुद्रा, अभय मुद्रा, कापाली मुद्रा, व्यापकांजलि मुद्रा, यमपाश मुद्रा, ग्रथित मुद्रा, कर्त्तरीहस्त मुद्रा, नेत्र मुद्रा-1, त्रिपिटिक मुद्रा-2, वंदना मुद्रा।

• व्यवहार में अकुशलता, भावनाओं में रूकावट, आन्तरिक चिन्ता, अनुशासन हीनता, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, अहंकार, भाषा सम्बन्धी समस्या–

तत्त्व मुद्रा, विस्मयवितर्क मुद्रा, गालिनी मुद्रा, परशु मुद्रा, द्विमुख मुद्रा, सन्मुखोन्मुख मुद्रा, मुष्टिक मुद्रा, वराह मुद्रा, सिंहक्रान्त मुद्रा, चपेटदान मुद्रा, मयूर मुद्रा, स्वकुचग्रह मुद्रा, स्वस्तिक मुद्रा-3, तर्जनी मुद्रा-2, उरूसंस्थित मुद्रा।

• उन्मत्तता, मृत्युभय, निराशा, आनंद की कमी, अनुत्साह–

चतुरहस्त मुद्रा, गजहस्त मुद्रा, हस्तस्वस्तिक मुद्रा, विघ्नमुद्रा, विष्वक्सेन मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, अंजलि मुद्रा, कटक मुद्रा-1, सूची मुद्रा-1, सांजलि मुद्रा।

आध्यात्मिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

• क्रोध, मान, माया, लोभ, वाचालता, ईर्ष्या, प्रमाद–

अर्चित मुद्रा, चन्द्रकला मुद्रा, चतुर मुद्रा-1, दण्ड मुद्रा, गदा मुद्रा, कटिग मुद्रा, कूर्पर मुद्रा-1, प्रवर्तित हस्त मुद्रा, पुष्पपुट मुद्रा, वज्रपताका मुद्रा, अवगुण्ठनी मुद्रा, पुस्तक मद्रा, डमरूक मुद्रा, वितत मुद्रा, चतुर्मुखम् मुद्रा, प्रलम्ब मुद्रा, मुद्गर मुद्रा, अभिषेक मुद्रा, डमरूहस्त मुद्रा, पद्महस्त मुद्रा, वरद मुद्रा।

सप्त व्यसन, चंचलता, तृष्णा, कामुकता, अभिमान–

धेनु मुद्रा, कटि मुद्रा, कट्यावलम्बित मुद्रा, पताका मुद्रा, पुष्पाञ्जलि मुद्रा, सिंहकर्ण मुद्रा, वन्दना मुद्रा, विस्मय मुद्रा-1, दुर्गा मुद्रा, बिल्व मुद्रा, लिंग मुद्रा, धेनु मुद्रा-1, विस्तृत मुद्रा, षण्मुखम् मुद्रा, शकटम् मुद्रा, मत्स्य मुद्रा, अर्धचन्द्र मुद्रा, लोलहस्त मुद्रा, स्वस्तिक मुद्रा-1, कूर्म मुद्रा।

- **क्रोध, आत्मबल की कमी, एकाग्रता की कमी, शंकालु वृत्ति–**

अंचित मुद्रा, आवाहन मुद्रा, चन्द्रकला मुद्रा, चतुरहस्त मुद्रा, हस्तस्वस्तिक मुद्रा, कश्यप मुद्रा, निद्रातहस्त मुद्रा, सर्पकार मुद्रा, योनि मुद्रा, चक्र मुद्रा, ज्वालिनी मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, लिंग मुद्रा, अस्त्र मुद्रा, सुमुख मुद्रा, त्रिमुखम् मुद्रा, अधोमुखम् मुद्रा, कूर्म मुद्रा, अहायवरद मुद्रा, अर्धान्जली मुद्रा, बुद्धाश्रमण मुद्रा, करन मुद्रा, नमस्कार मुद्रा-1।

- **वाणी पर अनियंत्रण, असंवेदनशीलता, करूणाहीन, हिंसक भावना–**

अंचित मुद्रा, अर्चित मुद्रा, चिन् मुद्रा, गदा मुद्रा, हरिण मुद्रा, कपित्थ मुद्रा, मुकुल मुद्रा, पद्म मुद्रा, व्याख्यान मुद्रा, गदा मुद्रा, काम मुद्रा, अभय मुद्रा, कापाली मुद्रा, व्यापकांजलि मुद्रा, यमपाश मुद्रा, ग्रथित मुद्रा, कर्त्तरीहस्त मुद्रा, नेत्र मुद्रा-1, त्रिपिटिक मुद्रा-2, वंदन मुद्रा।

- **अध्यात्म अरूचि, आत्मानुशासन की कमी, मान कषाय–**

तत्त्व मुद्रा, विस्मयवितर्क मुद्रा, मालिनी मुद्रा, परशु मुद्रा, द्विमुख मुद्रा, सन्मुखोन्मुख मुद्रा, मुष्टिक मुद्रा, वाराह मुद्रा, सिंहक्रान्त मुद्रा, चपेटदान मुद्रा, मयूर मुद्रा, स्वकुचग्रह मुद्रा, स्वस्तिक मुद्रा-3, तर्जनी मुद्रा-2, उरूसंस्थित मुद्रा।

- **मृत्युभय, स्वरमणता की कमी, परनिन्दा, आत्म प्रशंसा, निन्दनीय कार्यों में उत्साह–**

चतुरहस्त मुद्रा, गजहस्त मुद्रा, विघ्न मुद्रा, विष्वक्सेन मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, अंजलि मुद्रा, कटक मुद्रा-1, सूची मुद्रा-1, सांजलि मुद्रा।

मनुष्य की प्रत्येक क्रिया का लक्ष्य सुख, शान्ति एवं समाधि की प्राप्ति है। शास्त्रों में 'पहला सुख निरोगी काया' माना गया है। क्योंकि दैहिक अस्वस्थता समस्त क्रियाओं में अस्थिरता को बढ़ा देती है। इसी प्रकार मानसिक अशान्ति एवं भावात्मक असमाधि भी जीव के प्रगति मार्ग में बाधक बनती है। धर्म प्रवर्त्तकों ने आचार व्यवस्था का गुंफन करने से पूर्व इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि कोई भी क्रिया साधक के सर्वांगीण विकास में सहयोगी बने। हर मुद्रा शरीर के किसी न किसी अंग प्रत्यंग को प्रभावित करती है एवं तत्सम्बन्धी रोगों का निदान करती है। उपरोक्त वर्णन से हिन्दू परम्परा में प्रचलित मुद्राओं की उपयोगिता साधना एवं चिकित्सा दोनों ही क्षेत्रों में प्रमाणित हो जाती है।

●

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
1.	कुलार्णव तन्त्र	संपा. डॉ. सुधाकर मालवीय	चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी	2006
2.	प्रपंचसार सार संग्रह	गीर्वाणेन्द्र सरस्वती	श्रीरंगम्	1980
3.	मुद्राज् इन् बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू प्रेक्टिसेस् एन आइकॉनोग्राफिक कन्सीडरेशन	एफ. डब्ल्यू ब्युन्स	डी.के. प्रिन्टवर्ल्ड, नई दिल्ली	2005
4.	तान्त्रिक मुद्रा विज्ञान	पं. राजेश दीक्षित	दीप पब्लिकेशन, आगरा	
5.	देवी भागवत	संपा. श्रीराम शर्मा आचार्य	संस्कृति संस्थान, बरेली	
6.	शारदातिलक तन्त्रम्	संपा. आर्थर एवलोन	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	
7.	Shakta and Shakti	Avalon	Arthur (Sir John Wood roffe), New York	1978
8.	The Ramayana of Goswami Tulisdas	Bahadur S.P.	Bombay	1972
9.	The Development of Hindu Iconography	Banerje . Titendranath N	Calcutta	1956
10.	Iconography of Buddhish and Brahmanical Sculptures in the Dacca Museum,	Bhattasali	N.K. Daccda	1929

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
11.	A Dictionary of Buddhist and Hindu Iconography Illustrated objects, Devices, Concepts, Rites and Related Terms	Bunce Fredrick W	New Delhi	1999
12.	An Encyclopaedia of Hindu Dieties, Pemigocts Godlings Demons and Heroes : With Special Focus on Iconographic Attributes	Bunce Fredrick W.	New Delhi	1999
13.	The Mirror of Gesture	Coomarswamy, Ananda Kentish	Delhi	1997
14.	A classical Dictionary of Hindu Mythology	Dowson John	London	1928 1979
15.	Iconography of Hindus, Buddhishs and Jains	Gupte Ramesh S.	Bombay	1972
16.	Science of Symbols : Deeper view of Indian Dieties	Indu Inderjit	New Delhi	1977

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
17.	The Book of Hindu TImagery : he Gods and their symbols	Jansen Eva Rudy	Diever	1993
18.	Mudra Vigyan : A way of life	Keshav Dev	Delhi	1996
19.	Iconographic Dictionary of the Indian Religions	Liebert G.	Leyden	1976
20.	Nityakarma, Pujaprakash	Mishra Rambavan A and Mishra Lalbihasri	Gorakhpur	
21.	Tantra Arts	Mookerjee		1967
22.	Ritual Art of India	Mookerjee Ajit	London	1985
23.	The Tantric way Art Science Ritual	Mookerjee Ajit	London	1996
24.	Elements of Hindu Iconography	Rao T.A. Gopinath	Madras	1914 -16
25.	Tantra, Hedonism in Indian culture	Saran Prem	New Delh	1998
26.	South Indian Images of Gods and Godesses	Sastri, H.Krishna	New Delhi	1986
27.	A Dictionary of Hinduism	Stutley M. J.	London	1977

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
28.	Artistic form and Yoga in the Sacred Images of India	Zimmer H.	Princeton	1984
29.	The Art of Indian Asia, 2 vols	Zimmer H., ed. by J. Campbell	New York	1955
30.	Iconographic Parallelism in India and Nepal	Sharma B.N.	Hyedrabad	1975
31.	The Art of India	Sivarmmurti C.	New York	1977

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00

22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

●

विधि संशोधिका का अणु परिचय

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

नाम	:	नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	:	विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	:	श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	:	वैशाख सुदी छट्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	:	सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	:	प्रवर्त्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	:	संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	:	जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	:	तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	:	राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	:	सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	:	श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।

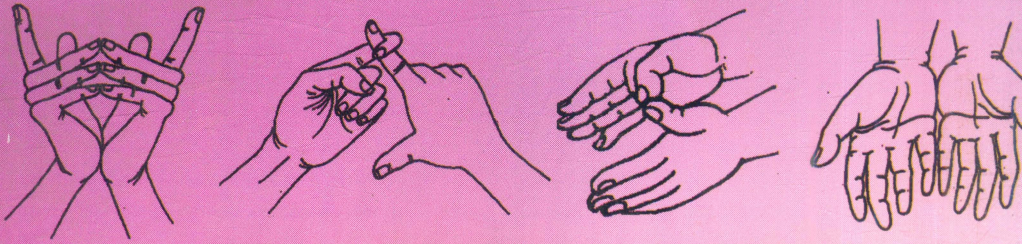

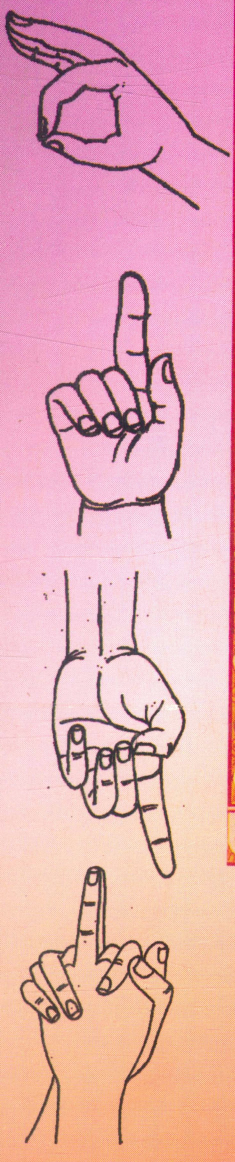

सज्जन साधना के दिव्य चरण

- चक्र जागरण एवं ग्रन्थि संतुलन में मुद्रा प्रयोग कैसे लाभकारी?
- हिन्दू साहित्य में मुद्राओं की चर्चा कहाँ-कहाँ?
- गायत्री जाप एवं सन्ध्या कर्म में प्रयुक्त मुद्राओं का स्थान?
- जानिए पूजोपासना में प्रचलित मुद्राओं की प्रयोग विधि?
- भाव जगत का उत्कर्ष मुद्रा प्रयोग से कैसे करें?

SMG

SAJJANMANI GRANTHMALA

Website : www.jainsajjanmani.com,E-mail : vidhiprabha@gmail.com

ISBN 978-81-910801-6-2 (XVIII)